

BOOK-POST

भारत सरकार सेवार्थ

ON INDIA GOVERNMENT SER



To.

URGENT PUBLICITY MATERIAL

1525 63020 03003 037 PS82
PRINCIPAL
BANASTHALIA VIDYAPEETH
COLLEGE OF EDUCATION
BANASTHALI
TONK-304002
RAJASTHAN

अगर पाने वाला न मिले तो कृपया इस पते पर लौटा दे .

if undelivered please return to :—

विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय सूचना और प्रसारण मंत्रा

D.A.V.P. Min of Information & Broadcasting

'बी' ब्लाक, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली ।

'B' Block Kasturba Gandhi Marg. NEW DELIHI-110001

॥ श्रीः ॥

बूंदी राज्य के उद्धारक श्रीमान् महा राव राजा

उम्मेद सिंह जी साहब बहादुर ।



जन्म संवत् १७८६, मृत्यु संवत् १८६१.

भूमिका ।

भूः पादौ यस्य नाभिर्वियदसुरनिलश्चंद्रसूर्यौ च नेत्रे
कर्णा वाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वासोऽयमब्धिः ।
अन्तस्थं यस्य विश्वं सुरनरखगगोभोगिगन्धर्वदैत्यै-
श्चित्रं रंरम्यते तं त्रिभुवनवपुषं विष्णुमीशं नमामि ॥ १ ॥

इतिहास प्राचीनों के अनुभव का खजाना है। व्यक्ति का, समाज का और देश का चरित्र संगठन करने के लिये इतिहास ही एक पथ दर्शक है। लाखों, करोडों का अटूट खजाना नष्ट भ्रष्ट होकर राजा से रंक होसकताहै किन्तु अनुभव की धरोहर यदि लिपिबद्ध करलीजाय तो वह अटल, अविचल और वर्द्धमान सम्पत्ति है। बस इसी उद्देश्यसे इतिहास ग्रंथों की सृष्टि हुई है। मैं इसमें कहांतक कृतार्थ हुआ हूं–सो कह नहीं सकता परंतु जब मैं सुलेखक नहीं, विद्वान नहीं और बुद्धिमान् नहीं और इसी तरह इतिहास लेखन की सामग्री भी पूर्णतया उपलब्ध नहीं तब कहना चाहिये कि मेरा यह कार्य अपूर्ण होगा–अनुचित साहस कहलावैगा। हाँ! एक वात अवश्य है। यदि मैं इस उद्योगमें सफल न होसकूं तो न सही किन्तु मुझे भरोसा है कि मेरे बाद कोई महाशय बूंदी के इतिहास लिखने का यदि उद्योग करैंगे तो उन्हें इस पोथी से वहुत सामग्री मिलजायगी। यदि मुझे इतनी भी सफलता प्राप्त होजायगी तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा।

जब यह "उम्मेदसिंह चरित्र" पाठकों के सामने है तब इस पोथी में क्याहै–सो दिखलाने की आवश्यकता नहीं और भूमिका में पुस्तक का आशय लिखदेनेकी प्रायः चाल भी नहीं है। हाँ! इस जगह इतना अवश्य लिखदेना चाहिये कि इसमें विक्रमीय संवत् १७५२ से १८७८ तक के १२६ वर्षों का इतिहास है। उस समय मुसलमानी बादशाहत का सर्वनाश होकर क्यों-कर देशभर में अराजकता फैल गई थी, क्यों कर "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावत चरितार्थ होती थी और क्योंकर भारतवर्ष के उस प्रारब्ध परि-वर्तन के जमाने में राजपूताने के क्षत्रिय नरेशों ने आपुस के द्वेष से, दुर्व्यसनों से और इसी प्रकार के अनेक कारणों से आपुस में लडकर, अपने भाइयों का नाश करके देश के नाश करने का उद्योग किया। परमेश्वर की कृपा से उस

समय तक इनकी शक्ति का नाश नहीं हुआ था । यदि ये सब एक होजाते, यदि मरहटे वीर भी इनके साथी होजाते और इस तरह की संयुक्त शक्ति से काम लिया जाता तो हिन्दुओं का पुराण प्रसिद्ध जमाना फिर भी एक वार आने की आशा होसकती थी । परंतु इस संसार नाटक के सूत्रधार को यह बात इष्ट नहीं थी । वह जानता था कि हिन्दू इस कार्य के अयोग्य हैं । बस इसलिये उसने देश के दुर्भाग्यरूपी प्रलयपयोधरों का विनाश करके सचमुच ही सौभाग्य दिवाकर का उदय किया । यदि उसका अनुग्रह न होता तो न मालूम भारतवर्ष की आज दिन क्या दुर्दशा होती । किन्तु उसे अनेक शताब्दियों के असह्य संकट के अनंतर इस देश को फिर सुख के दिन दिखलाना था इसलिये इस धर्म भूमि का शासन एक ऐसी जाति को दिया गया जो संसार में अपने सुन्याय के लिये विख्यात है । जो लोग उस समय के इतिहास पर दृष्टि दिये विना भारतवर्ष के ब्रिटिश साम्राज्य पर दोष लगाते हैं वे इस पुस्तक को पढकर न्याय दृष्टि से उस जमाने की वर्तमान समय से तुलना करैं तब उन्हें भली भाँति विदित होजायगा कि उस युग की अपेक्षा अंग्रेजों का शासन हमारे लिये कितना सुखकर है ! सर्वशक्तिमान् करुणा वरुणालय इस शासनको इस देश में चिरस्थायी करै और इससे राजा प्रजा का कल्याण हो । भगवान् करै श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्जका कल्याण हो और उनके सुराज्यमें राजा प्रजा सुखी रहैं ।

"उम्मेदसिंह चरित्र" यद्यपि बूंदी राज्य के उद्धारक, हाडाक्षत्रियों के कुलकमल दिवाकर महाराव राजा उम्मेदसिंहजी का चरित्र है किन्तु केवल इसीसे मालूम होजायगा कि मेरी इस उक्ति में कहांतक सत्यता है । इनके पिता महाराव राजा बुधसिंहजी के बल विक्रम से जब इस राज्य की वृद्धि हुई तो असाधारण और उनके हाथ से यदि राज्य निकल गया तो यहां तक कि एक जगह बैठकर दुःख के दिन बिताने के लिये गांठकी एक झोंपडी भी न रही । उसी खोये हुए राज्य को घोर कष्ट उठाकर, वर्षों के अविश्रान्त परिश्रम से, समरभूमि में तलवार के हाथ दिखाने से, तीन चार युद्धों के अनन्तर इन्होंने प्राप्त किया । राज्य पाकर इन्हों ने उसे बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित कर इसके भीतरी कांटों को निकाला । राज्य निष्कटंक होजाने के बाद पहले पुत्र को और उनका देहान्त होजाने पर पौत्रको राज्य देकर आप अलग होगये । अलग होकर भारत वर्ष के समस्त तीर्थों की अनेक बार यात्रा की ।

इस समय भी बूंदी की रक्षा का अटल व्रत इनके हृदय में बनारहा और इसका इन्होंने आजीवन निर्वाह किया । अवकाश पाकर इन्होंने इस नव प्राप्त राज्य को ऐसे सांचे में ढाल दिया जो अवतक प्रत्येक कार्य में देखाजाताहै–जिसका पालन किया जाताहै । और इनके पूर्वजों के बनाये कितने ही विशाल भवनों के सिवाय बूंदी राज्य में जो कुछ आजतक दिखलाई देता है केवल इन्हींकी बदौलत । बस ऐसे ही राजर्षि का इस पोथी में चरित्र–प्रातःस्मरणीय चरित्र है । इनके सद्गुणों के कारण यही श्री जी साहब कहलाते हैं ।

इसमें केवल महाराव राव राजा श्रीउम्मेदसिंहजी का ही चरित्र हो–सो नहीं । यह चारखंडों में विभक्त है । प्रथम खंड में चौहान क्षत्रियों की हाडा शाखा के–बूंदी राज्यके संक्षिप्त इतिहास का दिग्दर्शन, दूसरे में चरित्र नायक के पिता महाराव राजा श्रीबुधसिंहजी का संक्षेप से जीवनचरित्र, तीसरे में उम्मेदसिंहजी की राज्य प्राप्ति से लेकर इनके वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने तक का हाल और चौथे में उनके राज्य त्याग करने के अनंतर उनका शेषजीवन वृत्त और साथ ही महाराव राजा श्रीअजितसिंहजी तथा महाराव राजा श्रीविष्णुसिंहजी का चरित्र । केवल इतना ही क्यों–इसमें उस समय की और २ अनेक सामयिक घटनाओं का भी उल्लेख कियागयाहै । इस ग्रंथ के लिखते समय मेरा बिचार यह था कि इसमें महाराव राजा श्रीउम्मेदसिंहजी का चरित्र विस्तार से और आरंभ से लेकर महाराव राजा विष्णुसिंहजी तक का हाल संक्षेपसे लिखाजाय । ऐसा करने के अनंतर महाराव राजा रामसिंहजी साहब बहादुर जी. सी. एस्. आई. सी, आई. ई. का चरित्र लिखकर बूंदी का इतिहास समाप्त कियाजाय । इस उद्देश्य से यह पोथी लिखी गई और राजर्षि रामसिंहजी का चरित्र लेखन अभीतक होनहार की गोद में है । किन्तु अब मेरा विचार बदलगया । इस पुस्तक के प्रथमखंड में इस राज्य का संक्षिप्त इतिहास लिखकर मेरा संतोष नहीं हुआ । इस कारण मैंने राव राजा रत्नसिंहजी, राव राजा शत्रुशल्यजी, राव राजा भावसिंहजी और राव राजा अनिरुद्ध सिंहजी का विस्तारसे चरित्र लिखकर "पराक्रमी हाडाराव" के नाम से पोथी तैयार की है । और संकल्प यह है कि ठेठ से अबतक का इतिहास ही तैयार करलियाजाय । इस कामना में सफलता होगी वा नहीं–सो भगवान जानै किन्तु " पराक्रमी हाडाराव " के

प्रकाशित होने से इन दोनों पुस्तकों को मिलाकर पढने में राव राजा रत्नसिंहजी से लेकर महा राव राजा विष्णुसिंहजी तक का पूरा हाल मिलजायगा।

प्रथम खंड को संक्षिप्त–परम संक्षिप्त करने से उसमें कितनी ही त्रुटियां रहगई। यों समालोचकों की दृष्टि से न मालूम इस पोथीमें कितनी त्रुटियां रहीं होगी सो राम जानैं परंतु पृष्ठ १३ में राव सूर्यमलजी का तीरसे शेर मारना चित्तोडमें लिखागयाहै किन्तु उन्होंने मारा अपनी ससुराल में था। पृष्ठ २० में राव राजा रत्नसिंहजी का मारा जाना लिखागयाहै किन्तु यह मारे नहीं गये मृत्यु से परलोक वासी हुए थे। पृष्ठ २२ में राव राजा शत्रुशल्यजी का तलवार से काम आना लिखागया है किन्तु यह तलवार से नहीं गोली लगने से वीर गति को प्राप्त हुए थे। पृष्ठ ५७ में बूढलुहारी पर जयपुर की नानक पंथी सेना की चढाई लिख दीगई किन्तु जयपुर में सेना दादू पंथियों की है। पृष्ठ २०५ में श्री जी साहब के पौत्र रामसिंहजी लिखेगये हैं किन्तु उनके यह परपोते थे। और पृष्ठ २२१ में विष्णुसिंहजी का शिरपर माला फेरना छपगया किन्तु माला नहीं यह भाला फेरा करते थे। इसतरह की त्रुटियोंके सिवाय मेरे ही दृष्टि दोप से एक बडी भारी गलती छपगई। वह यह कि पृष्ठ ४८ से पृष्ठ ९५ तक के ३५ पृष्ठोंमें संवत् १८०१ से संवत् १८०७ तक की घटनाओं का उल्लेख है परंतु वहां भूल से १८०० के बदले १९०० मुद्रित होगया। इनके अतिरिक्त छापे की भूल से भैंसरोड़ गढका भैसरोड़गढ,उपकारकी जगह उपारक, मंथराके बदले मंथर, होलकर का होलका–इत्यादि छपगया सो जुदा।

इस पुस्तक में कई जगह उदयपुर, कोटा, जयपुर और जोधपुर के उस समय के नरेशोंपर, इन्द्रगढके महाराजा देवसिंहजीपर, राजनीति निपुण जालिम सिंहजी पर और ऐसे ही औरों पर कटाक्ष करना पडा है परंतु यह कटाक्ष वास्तव में कटाक्ष नहीं। न्याय दृष्टि से किया गयाहै। इसका कारण मैं ऊपर लिखचुकाहूं। मैं फिर भी मानताहूं कि यदि उस समय के नरेश आपसमें लडमरने की जगह, अपने भाइयों का,नातेदारों का और जाति भाइयों का विनाश करने के बदले मिलकर चलते तो भारतवर्ष की ऐसी दुर्दशा न होती। परंतु उन लोगों ने अपनी राजनीति का–अपनी शक्ति का उपयोग उस व्यक्ति पर किया जिसका राज्य छूटगया था, घर वार छूट गया था और जिसे विपत्ति सागरमें पडकर जंगल में झडबेरीके फलों पर कालक्षेप करना पडा था। टाड साहब से बढकर इसकी गवाही क्या हो ? नहीं तो मेरी उन नरेशों पर परम

पूज्य बुद्धि है। मैंने उनकी प्रशंसा के समय प्रशंसा और निन्दा के समय निन्दा की है। इसपर भी यदि किसी को अप्रिय मालूम हो तो मैं उनसे क्षमा मागताहूं। परमेश्वरकी कृपासे ब्रिटिश राज्यकी छत्र छाया में सब रजवाडों का परस्पर का वैमनस्य जाकर स्नेह की वृद्धि होरही है।

अवश्य ही उन लोगों का यह कार्य देश दृष्टि के विचार से और नातेदारी के ख्याल से अनुचित था और इसी कारण समय पडने पर उनके लिये—उनकी शक्ति के दुरुपयोग को देखकर कुछ लिखना पडा किन्तु "संतुष्टाश्च महीपते:" के सिद्धान्त से उनका कार्य अनुचित भी नहीं कहा जासकता। इसी लक्ष्य से जब टाड साहब ने इन्द्रगढवालों का वध करनेपर अथवा महाराना अडसीजी के मारे जाने पर महाराव राजा उम्मेदसिंहजी की और अनुक्रम से अजितसिंहजी की निन्दा की है तब ऐसे अवसर पर भारतवर्ष में अंगरेजी साम्राज्य के संस्थापक लार्ड क्लाइव और वेरन हेस्टिंगस् के वर्ताव की याद दिलानी पडी है और वह भी इसलिये पडी है कि दुनिया भर के इतिहास में शायद ऐसा कोई भी राज्य का संस्थापक नहीं निकल सकता जिसके चरित्र में इस प्रकार का धब्बा न हो किन्तु जिनका लक्ष्य राज्य संस्थापन है उन्हें समय आपडने पर ऐसे कार्य करने पडते हैं। इतना लिखने से पाठक यह न समझ लें कि मैं इन बातों का अनुमोदक हूं। जो कार्य भला सो भला और बुरा सो बुरा ही है।

इस पुस्तक की रचना बूंदी के सुप्रसिद्ध इतिहास "वंश भास्कर" के रचयिता कवि शिरोमणि सूर्यमल्लजी के उक्त ग्रंथ के आधारपर, सर्व शास्त्र निष्णात, राजकार्य धुरंधर, बूंदी के भूतपूर्व अमात्य पंडित गंगासहायजी के बनाये "वंशप्रकाश" को आगे रखकर राजपूताने के जगत् प्रसिद्ध इतिहास लेखक महामान्य टाड साहब कृत "एनल्स ऐंड ऐंटीक्विटीज् आफ् राजस्थान" का मिलान करके की गई है। इसमें समय २ पर मथुरानिवासी बाबू हरिचरणसिंह चौहान कृत "बूंदी राजचरितावली" का भी आश्रय लिया गया है और कहीं २ जनश्रुति का भी आधार है। इन सबही के लिये मेरा हार्दिक धन्यवाद है।

विभक्ति प्रत्यय को मैं सर्व नाम के शामिल और संज्ञा से अलग लिखना पसंद करताहूं। इस पुस्तक में भी जहां तक बन सका इस तरह का उपयोग किया गया है।

यह पोथी संवत् १९६३ में तैयार हुई थी और प्रकाशित होने का सौभाग्य इसे अब प्राप्त हुआ है। इतना विलंब होने का कुछ भी कारण हो उसे यहां लिखने की आवश्यकता नहीं। हां! "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालय के स्वामी सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी को भी मैं धन्यवाद देताहूं जिन्हों ने मुझ जैसे अकिंचन की पोथियां प्रकाशित करने का अनुग्रह किया है। मेरी पूर्व प्रकाशित और पुस्तकों की तरह इसे छापने, प्रकाशित करने और दुबारा छापने का अधिकार भी उन्हीं को है।

इतिहास अथवा जीवनचरित्र लिखने में यह मेरा तीसरा उद्योग है। इस से पहले श्रीमती महारानी विक्टोरिया का चरित्र और काबुल के अमीर अबदुर्रहमानखां का चरित्र–यों दो पुस्तकें प्रकाशित होचुकी हैं। इसके अतिरिक्त दो पुस्तकें अभी अमुद्रित हैं सो समय पडने पर छपैंही गी। अब रहा आगे लिखने का कार्य सो उसका आधार पाठकों के–समालोचकों के अनुग्रह पर है। यदि समय मिला, यदि सामग्री मिली और साथ हीं यदि उत्साह बढाया गया तो शरीर आरोग्य रहनेपर फिर भी उद्योग करना मनुष्य का कर्तव्य है। परमेश्वर ऐसी ही कृपा करै।

इस भूमिका को समाप्त करने पूर्व उन हिन्दी रसिकों को भी मैं धन्यवाद देता हूं जो "अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति" के अनुसार मेरी पुस्तकों का आदर करते हैं और जिन समालोचकों की नीर क्षीर को अलग कर देनेवाली बुद्धि है वे भी धन्यवाद के भागी हैं।

बूंदी राजपूताना
माघ कृष्ण ७
सं० १९६९ वि०

हिन्दीका एक लघु सेवक–
लज्जाराम शर्म्मा.

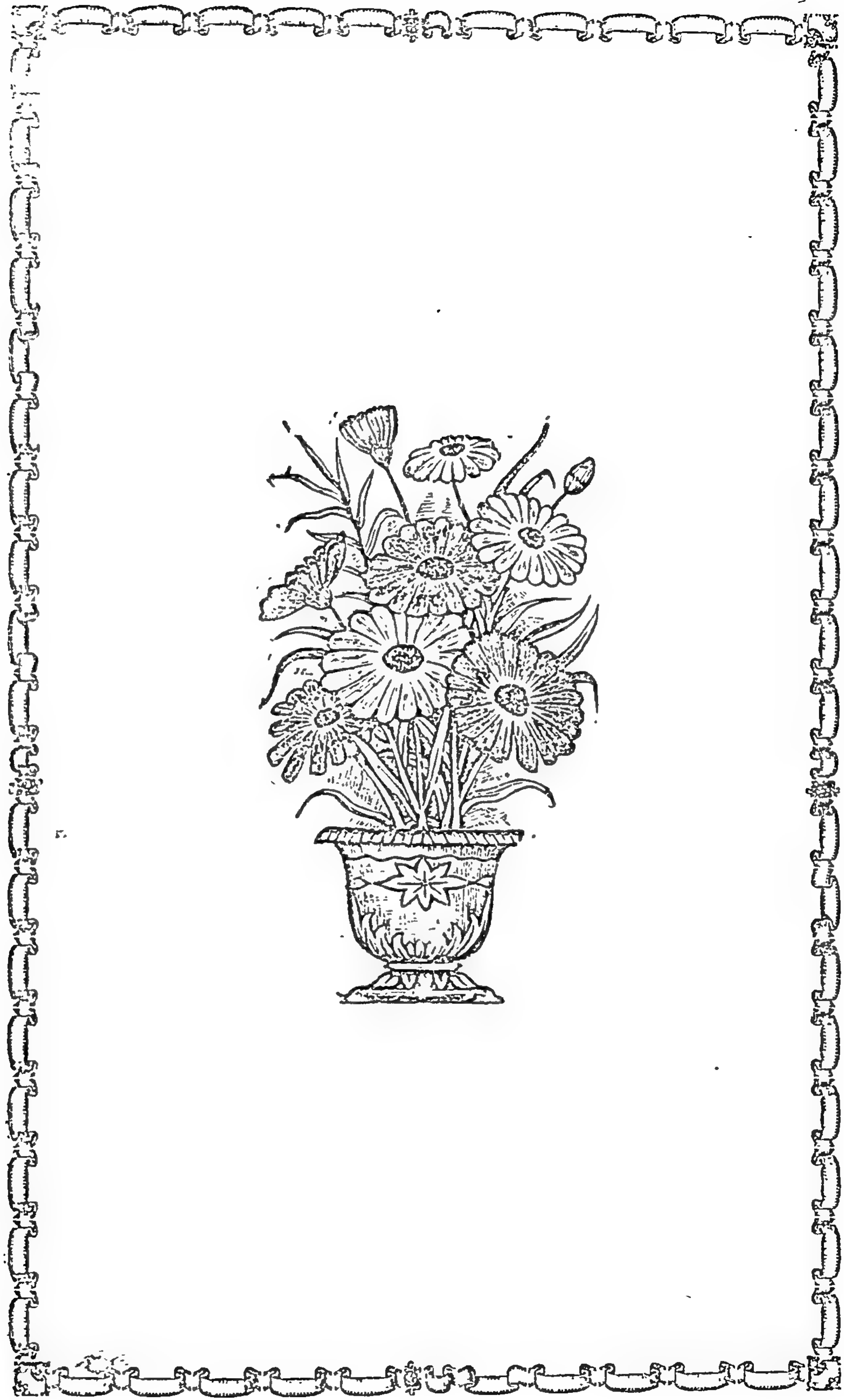


महता लज्जाराम शर्मा रचित पुस्तकें ।



(१) श्रीमती महारानी विक्टोरिया का चरित्र १।)
(२) काबुल के अमीर अबदुर्रहमानखां का चरित्र ॥)
(३) उम्मेद सिंह चरित्र
(४) बीरबल विनोद १।)
(५) धूर्तरसिकलाल ।)
(६) स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी ।-)
(७) हिन्दू गृहस्थ ॥=)
(८) आदर्श दम्पती ॥=)
(९) सुशीला विधवा ॥=)
(१०) बिगड़ेका सुधार ।-)
(११) विपत्ति की कसौटी (छपरही है)
(१२) पराक्रमी हाडाराव (तैयार है)
(१३) विचित्र स्त्रीचारित्र ॥)
(१४) भारतकी कारीगरी ।)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

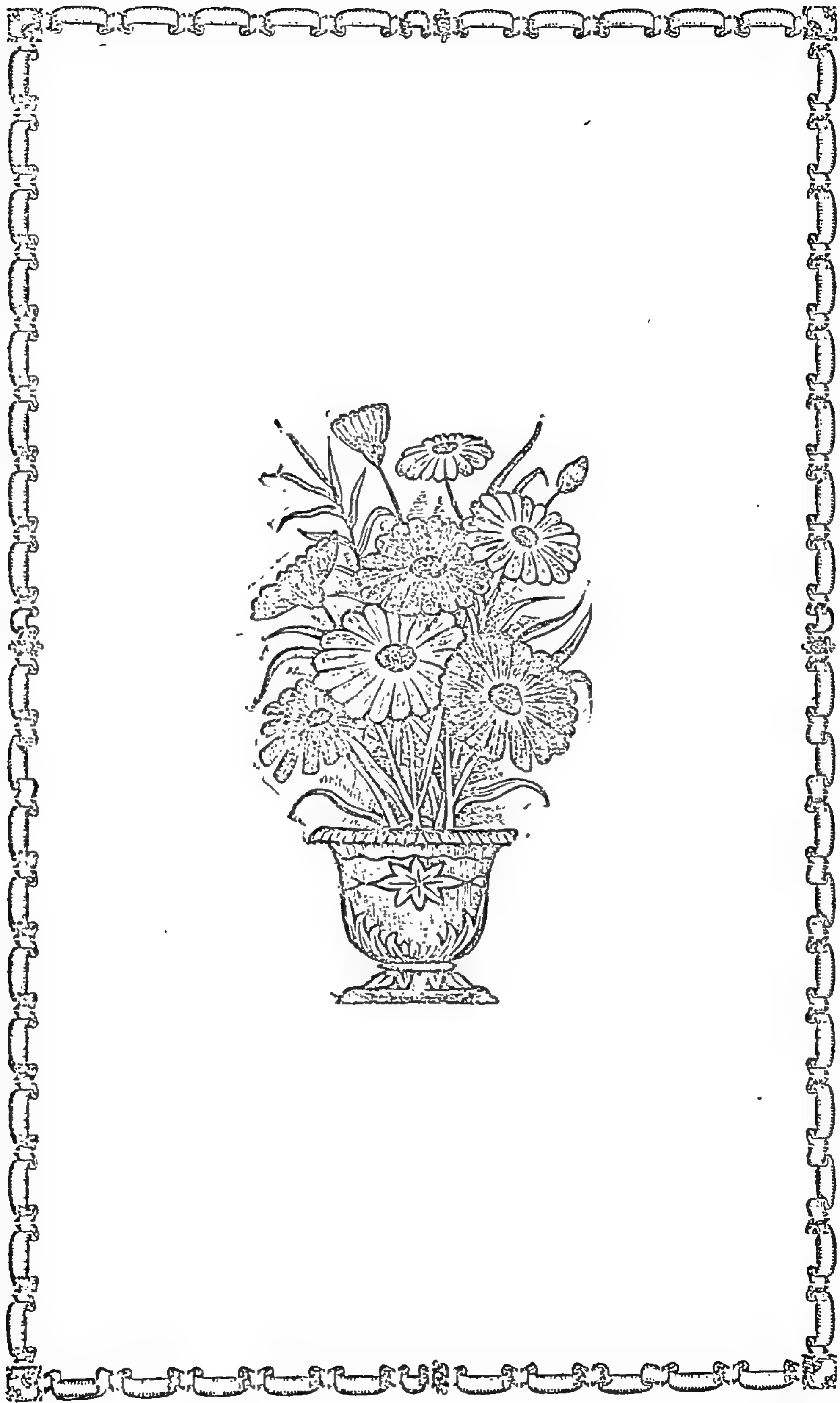


श्रीहरिः ।

उम्मेदसिंहचारित्र की-

विषयानुक्रमणिका ।

इति।



॥ श्रीहरिः ॥

उम्मेदसिंह चरित्र

प्रथम खंड

वंशपरिचय ।

अध्याय १.

चौहानों और हाडाओंकी उत्पत्ति ।

पाली भाषा के किसी पुराने शिलालेख के आधार पर कर्नल टाड साहेब ने यद्यपि अपने "एनल्स ऐंड ऐंटीकिटीज़ आफ राजस्थान" नामक ग्रंथ में **अग्निकुल के चारों क्षत्रिय** वंशों को तक्षक जाति का वंशधर बतलाकर उनकी उत्पत्ति ईसामसीह से दो सौ वर्ष पूर्व मानी है, परन्तु जब वह उसी जगह टिप्पणी में इनको ईसामसीह से ६५० वर्ष पूर्व पैदा होने वाले जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजी का समसामयिक बतलातेहैं, तब यह बात ठीक नहीं माळूम होती। इस के और भी कारण हैं और वे टाड साहब के अनुमान से अधिक प्रबल हैं। चौहान वंश के सुप्रसिद्ध इतिहासलेखक बूँदी के राजकवि कवि-शिरोमणि श्रीयुत सूर्यमल्लजीने प्राचीन इतिहास ग्रंथों से "वंशभास्कर" के नाम से बूँदी राज्य का जो एक बृहत् इतिहास तैयार किया है उससे स्पष्ट होताहै कि **चौहानवंश के मूलपुरुष** चहुवानजी से लेकर बूँदी के वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराव राजा श्रीरघुवीरसिंहजी बहादुरतक २०४ पीढियां हुईहैं। शास्त्र के मत से यदि प्रत्येक पीढीके बीस वर्ष मानकर इसका पता फैलाया जाय तो चहुवानजी के उत्पन्न होने का ठीक समय कलियुग के एक हजार वर्ष निकल-तेहैं। यह गणना ठीक है क्योंकि बीस वर्ष की उमरमें आदमी के लडका होजाताहै

और जो राजा पचास साठ वा इससे अधिक वर्ष राज्य करताहै वह अपने पुत्र पौत्र के राज्य के समय को छीन लेताहै । विचारपूर्वक देखने पर इंग्लैंड के और भारतवर्ष के मुसलमान राजाओं के राजत्वकाल की तुलना से यह बात प्रमाणित होतीहै और इसीलिये सर्वशास्त्रनिष्णात राजकार्यधुरंधर बूँदी राज्य के भूतपूर्व अमात्य श्रीपण्डित गंगासहायजी ने अपने ग्रंथ "वंशप्रकाश" में अग्निकुल की उत्पत्ति का समय कलियुग के हजार वर्ष बीतने पर मानाहै और मेरी समझ में बहुत ही ठीक मानाहै। अब रहा कर्नल टाड साहब का अग्निकुल को तक्षकवंशीय बतलाने का विचार। यह भी मेरी समझ में ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम तो जब उनका समय विचार ठीक नहीं तब यह भी अटकल मिथ्या होना चाहिये और दूसरे उन्होंने अग्निकुल की आबू पहाड पर उत्पत्ति का वर्णन लिखते हुए जो राय दी है वह भी उनके इस लेख को काटती है । थोडासा आगे चलने पर मालूम होजायगा। इन बातों से सिद्ध है कि चाहुवान वंश की उत्पत्ति को आजदिन चार हजार वर्ष से ऊपर हुए।

खैर। कुछ भी हो परंतु जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के स्वधाम पधार जाने के अनंतर दैत्यों और बौद्धों का अत्याचार बढा, जिस समय बाणासुर के पुत्र धूम्रकेतु और यंत्रकेतन को आदि लेकर अनेक असुर ब्राह्मणों के यज्ञों का नाश करके प्रजा को सताने लगे तब महर्षि वशिष्ठजी ने आबू पहाड पर अग्निकुलकी उत्पत्ति के लिये यज्ञ किया। भविष्यपुराण में लिखा है:--

दूषयिष्यंति यवनाः सहस्राब्दे गते कलौ ।
तदा रक्षां करिष्यंति याज्ञिकाः क्षत्रियर्षभाः ॥

अर्थात् कलि के हजार वर्ष बीतने पर यवन (बौद्ध) पृथ्वी को दूषित करदेंगे तब यज्ञ से उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय उसकी रक्षा करेंगे। इसके साथ जो कथा लिखी है वह अग्निकुल के चारों क्षत्रियवंशों की उत्पत्तिसे मिलतीहुईहै। अवश्यही आजकल के पढे लिखे लोग ऐसी कथाओं को कल्पित बतलातेहैं और टाडसाहबने भी इस बात को कल्पित माना है परंतु आश्चर्य यह है कि चंद्रमा में खाई पहाड और मंगलग्रह में मनुष्यों की वस्ती की अटकल ऐसे लोगों के विचार से सच्ची और प्राचीन कथायें उनके विचार से कल्पितहैं। खैर इस पक्ष-

बात का यहां निर्णय करके मुझे अपनी असली बात नहीं छोडना है।

महर्षि वशिष्ठने आबू पहाडपर जिस जगह यज्ञ किया था वहां अबभी अग्निकुंड मौजूद है। उन्होंने इस यज्ञ में ब्रह्मादिक देवताओं का आवाहन किया और शास्त्र की मर्यादा के अनुसार महर्षि भृगु, च्यवन, वत्स और जमदग्निने अनुक्रमसे ब्रह्मा, होता, सामपाठी और अध्वर्यु का कार्य करके यज्ञ कुंड से चार क्षत्रिय उत्पन्न किये । इन चारों में **प्रतिहार, चालुक्य** और **प्रमार** नाम के क्षत्रिय वीर अवश्य ही महावीर थे, अवश्य ही इन्होंने पैदा होकर ऋषियों की आज्ञा के अनुसार दैत्यों का विनाश किया परंतु ये यज्ञकी सौम्य हवि से उत्पन्न हुए थे इस कारण इनमें सीधापन अधिक और वीरता कम थी। एक के बाद दूसरा और दूसरेके बाद तीसरा यज्ञकुंड में से निकलकर दैत्यों से घोर संग्राम करने पर भी जब उनको न हरा सके तब महर्षि वशिष्ठजी से भगवान् ब्रह्माजी ने कहा कि—"मैंने बाणपुत्रों को वरदान दिया है कि तुम दो हाथवालों के हाथ से न मारे जा सकोगे इसलिये किसी चार हाथवाले को पैदा करो"—पितामह की आज्ञा को माथे चढाकर इन महर्षिवरों ने फिर उग्र द्रव्यों से यज्ञ किया और उससे खलमदभंजन, धर्मनंदन, महाराज चाहुवानजी का जन्म हुआ। इनके चार हाथ थे इसलिये ये चतुर्बाहुमान् कहलाये और इसीका भाषा में अपभ्रंश होकर **"चाहुवान"** नाम होगया। कर्नल टाड साहब चाहे इस कथाको कल्पित मानतेहैं परंतु उन्हें अग्निकुंड में से उत्पन्न होने की बात बनावटी मानने पर भी सारी कथा झूंठी मानने का साहस नहीं हुआ है। उनके कथन से मालूम होता है कि उन्होंने चार पुरुषोंमें क्षत्रियत्वका प्रयोग करना माना है। खैर कुछ भी हो परंतु उन्हीं चारों के वंशधर **पडिहार, सोलंखी, पवार** और **चौहान** कहलाते हैं।

इन चौहानोंकी वीरता का नमूना इसीसे समझ लीजिये और इसीसे एक चाँवलको मल कर हंडे भरके भात का निश्चय होता है कि टाड साहब जैसे विदेशी इतिहासलेखक ने अपनी किताब में लिखा है कि "अग्निकुलसे जो शाखायें निकलीं उनमें चौहान शाखा विशेष बलवती थी, एक समय चौहान इतने बलवान् होगयेथे कि उनकी प्रचंड वीरता के आगे भारतवर्ष भर के और राजपूतों का गौरव

दबगया । यद्यपि राजस्थान के छत्तीस राजकुलों में अनेकों ने बहुत बल विक्रम दिखा कर प्रतिष्ठा पाई है और "लाख तलवार राठौरान" भारतमें प्रसिद्ध है परंतु फिर भी विशेष विचार से सिद्ध होता है कि राजपूतों में वीर चौहान सब से ऊंचा आसन पाने योग्य हैं ।" इसी वीरश्रेष्ठकुलके मूलपुरुष चाहुवानजी का जन्म वैशाख शुक्ला ३ सोमवारको अर्थात् उस दिन हुआ था जिस दिन अवतार लेकर जमदग्नि के पुत्र भगवान् परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया था । उन्होंने क्षत्रियहीन किया और इन्होंने क्षत्रिय जातिका देशभर में डंका बजा कर वीर चौहानों के पराक्रम से संसार में अपना यश विस्तृत करदिया। इन्होंने दैत्योंका, दस्युओं का और वेदविरोधियों का संहार करके दिल्ली में अपना राज्य स्थापित किया ।

इनके वंशमें यों तो सबही पराक्रमी, सबही वीर, सबही प्रजापालक और सबही धर्मनिष्ठ हुए हैं परन्तु मुझे इस समय चौहान वंश का इतिहास नहीं लिखना है । मुझे लिखना है इस वंश में से एक वीरपुंगव का चरित्र और उसे लिखने से पहले मैं इस कुल का और इस वंश का परिचय देने के लिये यहां पर कुछ चुनेहुए

सबही धर्मनिष्ठ हुए हैं परन्तु मुझे इस समय चौहान वंश का इतिहास नहीं लिखना है । मुझे लिखना है इस वंश में से एक वीरपुंगव का चरित्र और उसे लिखने से

चाहुवानजी से १४९ पीढी में **सोमेश्वरजी** नामक सांभर के राजा हुएथे। उनके **भरतजी** और **उरथजी** के नाम से दो पुत्र थे। भरथजी के वंश में वीसलदेवजी, आनाजी, पृथ्वीराजजी और हम्मीरजी प्रभृति वीरवर हुए और उरथजी के नौ पीढी पीछे आसेर का किला बनवानेवाले **भौमचंद्रजी,** जिनका दूसरा नाम चंद्रसेनजी था, हुए। इन्हींके पुत्र **भानुराजजी** सुप्रसिद्ध वीरकेसरी हाडा शाखा के मूलपुरुष **अस्थिपालजी** थे। "वंशभास्कर" के रचयिता कविराजा सूर्यमल्लजी और "वंशप्रकाश" के रचयिता पंडितवर गंगासहायजी के मत से इन भानुराजजी का जन्म तापी नदी के पास आसेर में संवत् १०८१ में हुआ था। जिस समय यह अपने साथियों सहित जंगल में खेलरहेथे गभीरारंभ नामक राक्षस बालक का वेष बनाये इनमें आकर खेलने लगा और जब एक २ करके सब बालकों को खाचुका तब इसने बालक भानुराजजी पर वार किया। भीषण राक्षस के आक्रमण से बालक मारागया। राक्षस ने बालक का मांस खाया और अपनी समझ में उसका काम समाप्त ही करडाला परंतु ईश्वर को उसके वंश से संसारका कोई बडा भारी उपकार करना था इसलिये बालक के शरीर में जिस समय प्राण था उसने भगवती जगज्जननी कुलदेवी आशापुरा की स्तुति की। स्तुति के बाद अवश्य ही दुष्ट राक्षस इस बालशरीर की हड्डियां छोडकर चलागया परंतु देवी ने वहां आकर अस्थियों को बटोरा और उसी स्तुति से प्रसन्न होकर अपने कमंडलु के जल के छींटे देकर बालक को जिलाया। उसका नाम तब से अस्थिपाल रक्खा क्योंकि वह अस्थियों द्वारा पालित हुआ था। इस तरह देवी ने अस्थिपालजी को प्राणदान देकर वरदान से उनका प्रताप बढाया, शत्रुओं का दमन करके संसारमें अपना नाम करने की शक्ति दी और उस राक्षस का वध करने के लिये एक बरछी दी। उन्होंने उस बरछी से उस राक्षस का नाश किया। इनके पिता ने आसेर में आशापुरा देवी का मंदिर बनवाया। इन्होंने अनहिलपुर पाटन का, कच्छ देश का विजय किया और भुज में तथा हिंगुलाज में देवी का मंदिर बना कर गोदावरी के तट पर अस्थिपालपुर बसाया।

हाडा जातिके इतिहासलेखक गोविन्दरामकी "राजावली" के आधार पर टाड साहब ने जो कुछ इस विषय में लिखा है उसका आशय इससे

भिन्न है । उन्होंने अस्थिपालजी का नाम इष्टपाल माना है और उनके मत से इनके पिता का नाम अनुराज था । उनके मत से गजलीबंद अर्थात् कजली वन के राक्षसों ने आसेर और गोलकुंडे पर चढाई की थी । इसे रोकने के काम में गोलकुंडे के रणधीर चौहान इनके सहायक थे । रणधीर ने अपनी लज्जा रखने के लिये "शाका" किया । उसमें इनकी लडकी सरहबाई के सिवाय सर्व स्त्रियां मरगईं । सरहबाई अपने प्राण बचाने के लिये जंगल में एक पीपल के पेड के नीचे जा छिपी । जिस समय वह भय और भूख के मारे मर रही थी, शत्रु के शस्त्रों से घायल अस्थिपालजी शत्रु का पीछा करते हुए उसी पीपल के पास आये और गिर गये । उस समय अचानक पीपल का वृक्ष फटकर उसमें से आशापुरादेवी प्रकट हुई और उसीकी आज्ञा से अस्थि-पालजी का भग्न शरीर सरहबाई ने जोडा और देवी ने अमृत छींटकर उनको जिला लिया । अस्थियां जोडने से वह जीवित हुए थे इसलिये उनका नाम अस्थिपाल हुआ और हड्डियों से उनके जीवित होने पर उनके वंशधर "हाडा।"

यद्यपि टाड साहबने यह कथा लिखी है परंतु उन्हें अस्थिपालजी के इस तरह जीवित होने और पहले राक्षस के हाथसे उनके मारे जाने पर विश्वास नहीं है। मुसलमानी इतिहासों में महमूद की अनहिलपुर पाटन पर चढाई होने का पता न लगने पर भी उन्होंने गंभीरारंभ को गजलीबंद और गजलीबंदको कजलीवन मानते २ गजनी मानकर महमूद गजनवी का संबंध इस युद्ध से खैंच निकाला है । वह कहतेहैं कि सीलोन और पेगू पर चढाई करते हुए महमूद अनहिलपुर पाटन में बहुत काल तक ठहरा होगा और उसने गोलकुंडे से रणधीर को निकाल दिया होगा किन्तु इन बातों पर भी टाड साहब का पूरा विश्वास नहीं है । अस्थिपालजी का घातक महमूद को मानने पर भी टाडसाहब ने उनके जीवित होने की कथा पर कुछ राय नहीं दी है । वह एक विदेशी अंगरेज थे । उनका यदि इस बात पर विश्वास न हो तो कोई आश्चर्य नहीं परंतु जिन लोगों ने पश्चिमी शिक्षा पाई है उनमें से अनेक भारतवासी भी ऐसे हैं जिनके हृदय से, जिनके शब्दकोश से श्रद्धा शब्द उठगया है । वे विना तर्क से प्रमाणित किये अपने पिताको भी पिता मानने में हिचकते हैं । उनकी बात निराली है किन्तु श्रद्धा का विषय

बडा गंभीर है। इसकी सिद्धि तर्क से नहीं यह अनुभव से प्राप्त होकर अमृत फल देनेवाली है। यह गूँगे के गुड की तरह वाणी के अगोचर है। भक्ति इसीका पर्याय है और उपासनामार्ग से चारों पदार्थों को हाथ में आंवले की तरह सामने ला देने वाली यही एक श्रद्धा है। जो तर्क को छोडकर श्रद्धा पर श्रद्धा करता है वही ईश्वर को पाताहै यह हिन्दूधर्म का सिद्धान्त है और संसार के प्रायः सब ही धर्मों का यही निचोड है।

इन अस्थिपालजी के वंश में **हम्मीरजी** और **गंभीरजी** दो वीर पुरुष होगये हैं। ये वेही वीरपुंगव हैं जो अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराजजी के सामंतों में से थे और जो कन्नौज के जयचंद्र राठोड से लडने में वीरगति को प्राप्त हुए थे। इन्होंने पृथ्वीराज से कह दिया था कि—"हे जांगलेश! तुम अपने प्राणोंकी चिन्ता करो। हम तो अपने शरीर जयचंद्र के समरयज्ञ में होम देते-हैं। हमारे घोडों की टापें समरभूमि को, समुद्र के जहाज की तरह पोली कर-डालैंगी"।—इन्हींके वंशमें मांडलगढ बसानेवाले **मंडनजी** हुए हैं और इन्हींके वंश में चाहुवानजीसे १८१ पीढी में बूँदी में प्रथम वार राज्य स्थापित करनेवाले **देवसिंहजी** हुए हैं।

अध्याय २.

बूँदीराज्य स्थापन।

बूँदी राज्य के संस्थापक देवसिंहजी के विषय में टाडसाहब का मत बूँदी के इतिहासों से मिलता जुलता है। साहब ने अपनी किताब में लिखा है कि—"इन दिनों हाडाओं का पराक्रम इतना बढगया था कि दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी का भी इनकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ। उसके बुलाने से अपने पुत्र हरराजजी को बंबावदे का राज्य देकर अपने छोटे पुत्र समरसिंहजी को लिये हुए दिल्ली पहुँचे। जबतक इनके घोडे को देख कर बादशाह का जी न ललचाया ये वहां बने रहे। कहतेहैं कि इनके पास घोडा ऐसा था जो जल में टाप डुबोये बिना नदी पार होजाया करताथा। ऐसे अद्भुत घोडे को देख कर लालची बादशाह के मुहँ में से पानी टपक पडा। देवसिंहजी को यह बात मालूम

होगई थी इसलिये अपने साथियों को दिल्लीसे चुपचाप बिदा करके आप वहां अकेले रहगये । जब उन्होंने इस तरह अपने को निरापद समझा तब उसी घोडे पर चढकर बादशाह से सलाम जा किया और कहाः—

"बादशाह सलामत, राजपूत से तीन चीज कभी मत मांगिये । उसका घोडा, उसकी स्त्री और उसकी तलवार"

बस इतना कहकर उन्होंने घोडे की बाग ढीली डाली और सब लोगों के देखते २ अदृश्य होगये । बादशाह मुँह ताकता रहगया । किसीसे कुछ करते धरते न बना । जो बात देवसिंहजी ने बादशाह से उस दिन कही थी उसका वीर हाडाओं ने प्राण की बाजी लगाकर सदा निर्वाह किया । उन्होंने मुगल बादशाहों की बडी स्वामिभक्ति करने पर भी उनको कभी अपने प्यारे घोडे नहीं दिये, कभी अपनी लडकी नहीं दी और कभी शस्त्र छोडकर बादशाहों के दर्बार में न गये । बांदू के नले में देवसिंहजी के वृद्धप्रपितामह के स्थापित किये हुए श्रीकेदारेश्वर के मंदिर के निकट बूँदी नामक ३०० घरों की बस्ती का छोटासा गांव था । यहां अन्य १२ गावों के साथ जैते मीने का राज्य था । इसके दीवान जसराजजी गोलवाल चौहान थे । शूद्र जैते को राजमद में आकर यहां तक साहस हुआ कि उसने जसराजजी की लडकियां अपने बेटों के लिये मांगीं । जसराजजी जैते की नौकरी करके उसका सामना करने में असमर्थ थे इस लिये उन्होंने बंबावदा राज्य के स्वामी देवसिंहजी की शरण ली । अर्द्धजंगली मीने समरभूमिमें जमकर लडने में जितने कच्चे होते हैं मार काट कर भाग जाने में उतने ही पक्के होते हैं । इसलिये यह आशा न थी कि वे देवसिंहजी के सामने खडे होंगे । इस कारण विवाह के बहाने से मीनों को घेर लेने का ठहराव हुआ और जिस समय जैता अपने बेटों की बरात सजकर आया उसके साथियों सहित मारडाला गया । बस इस तरह संवत् १२९८ की आषाढ कृष्ण ९को देवसिंहजी का **बूँदीमें अधिकार होगया** । उन्होंने बूँदी गांव को राजधानी बनाया और तब से हाडाशिरोमणि की यही राजधानी चली आती है । इन्हींके पौत्र **जैतसिंहजी** ने कोट्या भील को मारकर कोटा बसाया । टाड साहब ने धोखा देकर मीनोंसे बूँदी छीनने के काम पर देवसिंहजी की निन्दा की है और

यह मैं भी मानता हूँ कि यह धर्म युद्ध नहीं कहला सकता है परंतु जिस कुटिल नीति से अंगरेजों ने बंगाल प्रान्त में अपना आधिपत्य जमाया है उसे देखते हुए यह कुछ नहीं है। कहीं के इतिहास ऐसी घटनाओं से खाली नहीं हैं। टाड साहब कहते हैं कि इसी ग्लानि से कदाचित् राज्य अपने पुत्र को देकर देवसिंह जी ऊमरथूने में जा रहे। मेरी समझ में वह जा अवश्य रहें परंतु इस ग्लानि के लिये नहीं किन्तु हिन्दू धर्म के अनुसार तृतीयाश्रम अर्थात् वानप्रस्थ धर्म का पालन करने के लिये। बूँदी के घराने में देवसिंह जी ने, सुरजन जी ने और इस चरित्र के नायक उम्मेदसिंह जी ने इस धर्म का पालन किया है।

देवसिंह जी के पुत्र **समरसिंहजी** ने जो पराक्रम किये उन्हें विस्तार भय से न लिखने पर भी यहां उनके पुत्र **नापाजी** के विषय में कुछ लिखे विना नहीं बन सकता। वह बडे ही सुस्त थे। उनके देखते २ उनकी आंखों के सामनें से शेरगढ का राजा पंवार हरराज "गणगोरि" छीन लेगया और उनसे करते कुछ भी न बन पडा किन्तु उनके पुत्र हामाजी ने पंवार राजा की रानी और "गणगोरि" छीन कर थोडे ही समय में वदला भी लेलिया। केवल इतना ही नहीं किन्तु अपने पिता के घात करनेवाले अपने मामा को मार कर भी यह पितृऋण से मुक्त हुए। टाड साहब के मत से हामाजी संवत् १४४० में गद्दी पर विराजे थे। वंबावदे की गद्दी के मालिक हामाजी के * चचेरे चचा **हालूजी** की वीरता का एक उदाहरण लिख कर मैं अपनी कथा को आगे चलाना चाहता हूँ। हालूजी जिस युद्ध में जाकर खडे होते थे उसमें उनका विजय ही होता था मानो विजय लक्ष्मी उनके पैरों में बंधी हुई थी इसलिये उन्हें यहां तक हौंसला होगया था कि उन्होंने समरभूमि में प्राण विसर्जन करने का प्रण किया था। इसी को पूरा करने के लिये उन्होंने कवि लोहटजी चारण को अपनी पगडी देकर कह दिया था कि— "जिस समय हमारी पगडी बांधो किसी के आगे शिर न झुकाना।" बिचारे कविजी बहुत काल तक ऐसा ही करते रहे परन्तु मंडोर के पडिहार हम्मीरजी ने धोखा देकर लोहटजी की पगडी छीन ली और कुत्ते को पहना दी इसलिये हालूजी से युद्ध हुआ और हम्मीरजी संग्राम में हार गये। जब हालूजी से रण भूमि में मरने

* इनके हाथ से चित्तोड के राणा मोकलजी मारे गये थे।

के प्रण का निर्वाह न हो सका तब उन्होंने ९२ वर्ष की उमरमें अपना शिर काट कर भद्रकाली को चढा दिया ।

हामाजी के दो पुत्र थे बडे **बरसिंहजी** बूँदीनरेश और छोटे **लाल-सिंहजी** गैंडोली के जागीर दार । लालसिंहजी की लडकी का संवन्ध चित्तोड के राना हम्मीरजी के पुत्र खेतलजी से हुआ था । इनकी बरात में बारूजी चारणथे जिन्होंने कुछ काल पहले चित्तोड में एक पत्थर की चार हाथवाली मूर्ति निकलने पर रानाजी से कहा था कि यह मूर्ति कहती है कि आपके सिवाय दानी और शूर संसार में नहीं है, धरती पर नहीं है और आकाशपर नहीं है । यदि हो तो मेरा शिर काट डाला जाय क्योंकि उसका एक हाथ धरती की ओर, दूसरा आकाश की ओर तीसरा रानाजी की ओर अर्थात् सामने और चौथा अपने गलेकी ओर था । विवाह के दूसरे दिन मद्य के नशे में वीर चर्चा होते २ ही लालसिंहजी ने इस बात को छेडकर जोश के साथ बारूजी से पूंछा कि–"तुमने ऐसी बनावट क्यों की ? क्या उनके समान दानी और शूर दूसरा नहीं है ? तुम मेरा शिर मांगो तो उसे भी देने को तैयार हूँ । एक दामाद को छोडकर जिसका जी चाहे लडने को सामने आजाय इतना होने पर भी तुम न मांगो तो तुम "नालायक" और मैं न दूँ तो मैं नालायक । भला मूर्ति पत्थर की है उसका तो शिर क्या काटा जाय परन्तु तुमने झूँठी बात बनाई है इसलिये तुम अपना शिर काट डालो ।" इस बात से लज्जित होकर बारूजी ने अपना शिर काट दिया और उसी क्षण युद्ध का आरंभ होकर कई बार बचाने पर भी ससुर के हाथ से दामाद का शरीरांत होगया । युद्ध छिडने से पहले बरसिंहजी और लाल सिंहजी ने दामाद को बहुत समझाया परन्तु उनके हठ और पिता की प्रेरणा से उन्हें मरना पडा । और कंकण बंधे हुए हाथ से लालसिंहजी की बाईजी अपने पतिपर सती हुई । यह झगडा यहीं समाप्त न हुआ परन्तु जिस समय इस भयंकर घटना की खबर चित्तोड पहुंची तब रानाजी के पुत्र ने प्रण किया कि–"बूँदी का सर्वनाश करके भोजन करूँगा" परंतु बूँदी का सर्व नाश ! बूँदी का सर्व नाश क्या गुडियों का खेल था ? अन्तमें मट्टीकी बूँदी बनाकर उसके नाश से रानाजी की शपथ छुडाना निश्चय हुआ परन्तु यह बात भी सहज न निकली । रानाजी की सेवा में

रहकर उनकी रोटी से पेट भरने वाले कुंभकरणजी हाडा ने जब तक उनके शरीर में प्राण रहे और जब तक एक भी हाडे की तलवार चलती रही उस मिट्टी की बूँदी की रक्षा की और अपने केवल तीन सो साथियों से चित्तोडी सेना के छक्के छुडा दिये।

यह लेख बूँदी के इतिहास का है किन्तु टाडसाहब ने इसका स्वरूप कुछ और ही तरह दिखलाया है। उनके कथन का सार यह है कि अलाउद्दीन के धक्के से जब रानाजी को साँस मिला तब उन्होंने अपने फिराऊ जागीरदारों को दमन करना आरंभ किया। वह बूँदी नरेश हामाजी को भी अपना जागीरदार मानते थे इसलिये इनसे चित्तोड आकर नौकरी करनेका दबाव डाला। उन्हों ने कहा कि हम रानाजी को बडा मानते हैं, होली दशहरे के त्योहार पर हम चित्तोड जाते भी हैं, हमारे यहाँ राजतिलक का टीका भी वहां से आता है परंतु हम उनके पाद सेवी नहीं हैं। हम उनकी नौकरी न करेंगे। इस पर रानाजी ने बूँदी पर चढाई की परंतु हारकर उन्हें चित्तोड की शरण लेनी पडी। इसी अपमान की मरम्मत करने के लिये उन्होंने मिट्टी की बूँदी का नाश किया। कुछ भी हो इन्हीं हामाजी के पुत्र बरसिंहजी का बनाया हुआ बूँदी का "तारा-गढ" किला है। यह किला संवत् १४११ में बना है। बरसिंहजी के पौत्र **भांडाजी** के समय भारत वर्ष में संवत् १५४२ में बयालीसे के नाम से बडा भारी अकाल पडा था। उस समय उन्होंने अन्न देकर केवल अपनी प्रजा के ही प्राण न बचाये बरन बडे २ राज्यों को इनसे अन्न की भिक्षा लेनी पडी। इनके छोटे भाई श्यामजी को, जिन्हें बहुत बालकपन में मांडू का बादशाह उठा ले गया था और जो मुसलमान होगये, थे इनकी दया से लाभ उठाकर इनका राज्य छीन लेने का अवसर मिला और इस तरह इन्हें अपनी आयु के पिछले दिन माटूंदे में रहकर बिताना पडा। इन्हीं श्यामजी का नाम समरकंद था किन्तु टाडसाहब ने भांडाजीके दो भाइयों का मुसलमान होकर समरकंदी और अमरकंदी के नामसे इन पर चढ़ाई करना लिखा है। कुछ भी हो इससे पहले एक बार जब राना कुंभाजी ने बूँदी पर चढ़ाई करी तब उन के शिर की पगडी भांडाजी के हाथ आगई थी।

टाड साहबने भांडाजी का मांटूदे में मृत्युसे मरना लिखा है किन्तु "वंश-प्रकाश" में लिखा है कि यह मुसलमानों के हाथ से मारे गये। इनके पुत्र **नारायणदासजी** एक होनहार युवा थे। उन्होंने केवल सात बहादुरों सहित समरकंद के पास जाकर अपनी तलवार से उसका शिर काट डाला। इस तरह इनका बूँदी पर अधिकार होगया। इस जगह भी टाड साहब समरकंद और अमरकंद दोनों भाइयों का नारायणदासजी के हाथ से मारा जाना बतलाते हैं परन्तु बूँदी के इतिहास के मत से समरकंद गढ में मारा गया था और उसका वेटा दाऊद बाजारमें। टाड साहब लिखते हैं कि "नारायणदास जी बडे शक्तिसम्पन्न और बहादुर थे। वह उन वीर राजपूतों में से एक थे जो डरका नाम भी नहीं जानते हैं किन्तु अफीम खाने का इनमें ऐब पडगया था। यह एक बारमें १ ३ रुपये भर अफीम खाते थे। ग्रन्थका विस्तार होनेपर भी इनकी वीरता के जो दो तीन किस्से टाड साहब ने लिखे हैं उनका यहां सूचन किये विना मैं आगे नहीं बढ सकता क्योंकि वे बहुत रोचक भी हैं। जिस समय मांडूके बादशाह ने मेवाड के राना रायमलजी पर चढाई करके रानाजी को बहुत सताया उनकी बुलाहट पाकर नारायणदास जी बूँदी से चित्तोड गये। पहली ही मंजिल में अफीमची नारायणदासजी एक कुए के पास मुँह बाये पडे थे। इनके मुखपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। देखकर एक तेलिन पनिहारी ने कहा—"क्या ऐसों ही से रानाजी मदद माँगते हैं।" अमलदार देखते नहीं हैं किन्तु सुनते वहुत हैं नारायणदासजी ने सुनते ही गर्ज कर कहा—क्या कहा रे राँड !" इतना कहकर उन्होंने एक लोहे की मोटी छड मरोडकर उसके गले में लपेट दी।" उन्होंने चुपचाप चित्तोड पहुँच कर बादशाह की सेना पर अचानक ऐसा धावा मारा कि उसके पैर उखड गये। मुसलमान गाजर मूली की तरह काट दिये गये और इस तरह रानाजी की रक्षा हुई। रानाजी ने अगवानी करके इनका बहुत सत्कार किया। इस पर रानाजी नें अपनी भतीजी इनको विवाह दी। कहते हैं कि नारायण दास जी ने इनकी दिल्लगी करने पर एक राजपूत को राना जी के दर्बार में मारडाला था। उन्होंने मांडूके बादशाह का बहादुर इक्का सवार जो उनसे

"खिराज" लेने आया था अपनी साँगसे इस तरह मारडाला जिससे एक ही सांग में घोडा और सवार दोनों बिंधगये। एक बार अफीम न मिलने पर नारायण दास जी ने अपनी बाहों में दो साँप भरकर उनके जहर से अफीम का काम निकाल लिया था। इनके ऐसे २ अनेक किस्से प्रसिद्ध हैं। इनके समय में बूँदी राज्य ने बहुत विस्तार पाया था। बूँदी के इतिहास में यह भी लिखा है कि "जब दिल्ली के बादशाह बाबर ने चित्तोड पर चढाई की तब भी नारायण दासजी राना जी की सहायता पर थे। बादशाह की सेना अधिक देखकर राना जी ने भागना चाहा तब नारायण दास जी ने कहा कि— "दीवान पदवी लजाकर न भागिये।" इस पर इतना कह कर कि "यह दीवान पदवी आप ही को मुबारिक रहै"—रानाजी चले गये और नारायण दास जी ने लडकर बाबर से विजय पाया। तबसे बूँदी नरेश को "दीवान" कहते हैं।

टाड साहब कहते हैं कि नारायण दास जी के पुत्र **सूर्यमल्लजी** जो संवत् १५९० में गद्दी पर बैठे थे अपने पिता की तरह बडे बलवान और साहसी थे। भगवान् रामचन्द्र जी और पृथ्वीराजजी की तरह उनके बाहु घुटनों से नीचे तक थे अर्थात् वह "आजानुबाहु" थे। इनके पिता नारायण दासजी के हाथ से जब से इक्का सवार मारा गया तब से एक हाथी १ घोडा १ तलवार १ शिरपेच और एक कमान प्रति वर्ष राना जी की ओर से बूँदी आया करती थी और जब से नारायण दास जी ने बाबर बादशाहसे विजय पाया रानाजी इससे दुगुनी भेजते थे परन्तु रानाजी के कामदार पूर्णमल्ल ने द्वेष करके उन्हें बहकाया और इस वार्षिक भेटको बंद करवा दिया। इस अवसर में सूर्यमल्लजी अपने ससुराल से लौटते हुए जब चित्तोड गये और वहां रानाजी के रानी जी अर्थात् सूर्यमल्लजी की बडी साली के कहने से इन्होंने एक सिंहकी शिकार करने में बडी बहादुरी दिखलाई तब रानी जी ने अपने पतिसे इनकी प्रशंसा की और इस पर पूर्णमल्ल को इनके विरुद्ध रानाजी के कान भरने का बहुत बडा अवसर मिला। उसने रानाजी को बहका दिया कि "रानीसाहब—का सूर्यमल्लजी से बुरा संबंध है।" बस यही बात इन दोनों में

झगडा खडा होनेकी जड है । यह कथन बूँदी के इतिहास का है किन्तु टाड साहब ने इसकी सूरत और ही तरह से बतलाई है। वह कहते हैं कि "जिस समय सूर्यमल्लजी चित्तोड गये उनकी बहन सूजाबाई ने जो रानाजी को विवाही थीं, दोनों के भोजन करते समय कहदिया कि—"मेरा भाई सिंहों की तरह खाता है और मेरे पति बालकों की तरह।" बस यही बात झगडे की जड हुई। फाल्गुन के महीने में राजपूत अहेर (शिकार) बहुत खेलते हैं। इस उत्सव का नाम अहेडा है । बंबावदा में हाडा वंश की रानी सती होते समय कह गई थी कि जब बूँदी के राव और चित्तोडके राना अहेडे पर इकट्ठे होंगे इस का परिणाम बहुत भयानक होगा। इस सती वाक्य पर ध्यान न देकर अहेडे के समय राना और राव नान्ते में शिकारके लिये इकट्ठे हुए। बूँदी के इतिहास "वंशप्रकाश" में लिखा है कि "पूर्णमल्ल के बहकाये हुए राना रत्न जी ने सूर्यमल्ल जी को मारडालने का कौशल किया । एक दिन वार खाली जाने पर दूसरे दिन हरिणोंके शिकार में उनको अकेला लेलिया। वहां पूर्णमल्ल ने अवसर साध कर सूर्यमल्ल जी पर तीर मारा । तीर उनके शरीर को वेधकर पार निकल गया उसी समय वह गिरे परन्तु पीछे राना जी के एक आदमी को जो उनके कटारी घूंसदेने की ताक में था उसे अपनी पीठ के जोरसे मार कर गिरे । तुरन्त उन्हें मूर्च्छा आगई। मूर्च्छा आते ही पूर्णमल्ल ने समझ लिया कि यह मरगये इसलिये उसने राना जी को बधाई दी। बधाई का शब्द कानमें पडते ही वीरवर सूर्यमल्ल जी को चेत हुआ और उन्होंने उसी क्षण एक ही तीर से रानाजी के तीन आदमियों को, जिन में एक पूर्णमल्ल भी था और जो कतार बांधे खडे थे मार गिराया। इससे सूर्यमल्ल जी को जब दूसरी बार मूर्च्छा आगई तब राना जी ने पास आकर तलवार चलाई । तलवार का वार खाली गया और इन्होंने रानाजी को घोडे पर से नीचे गिराकर कटारी से उनका पेट फाड डाला। पास ही रानाजी का एक आदमी और था जो इन्हें मरा समझ कर इनके पैर से सोने का लंगर खोल लेना चाहता था इन की लात से मारागया। इस तरह राना जी समेत छः आदमियोंको मारकर वीर पुंगव सूर्यमल्लजी सुरलोक को सिधार गये।" यह घटना टाड साहब की किताब से कितने ही अंश

में कम मिलती है। वह लिखते हैं कि—"जब सूर्यमल्ल जी ने पुरबिया का तीर अपने ऊपर आता हुआ देखा तब उन्होंने अपने तीर से उसे लौटा दिया। सूर्यमल्ल जी इसके बदले में अपना तीर चलाने भी नहीं पाये थे कि राना जी ने अपना खांडा मार कर उन्हें गिरा दिया। और ज्योंही वह भागने लगे सूर्यमल्ल जी ने कडक कर कहा—"तुम भले ही भाग जाओ परन्तु तुमने मेवाड को डुबो दिया।" जब पुरबिया ने इनको अपने घाव पर शाल लपेटते देखा तब कहा कि—"काम अधूरा हुआ है।" बस कायर राना ने घायल राव पर एक बार फिर वार किया। इस तरह की निर्लज्जता का काम करने के लिये राना ने ज्योंही हाथ उठाया घायल सिंह की तरह लपक कर राव ने राना जी का कपडा पकड कर उन्हें घोडे से गिरा लिया और उनकी छाती पर चढ बैठे। उन्होंने फिर एक हाथ से राना का गला पकड और दूसरे से कटार निकाल कर उनके कलेजे में घुसेड दिया। बस वह इस तरह अपने शत्रु की लाश पर गिर कर अपने प्राण खो बैठे। इस बात की खबर जब बूँदी में हुई तब राव की वीर प्रसूमाता—वीर क्षत्राणी ने सुन कर कहा—"हैं! मारा गया? परन्तु क्या अकेला ही? नहीं। इस दूध का पीने वाला अकेला नहीं मर सकता।" इस तरह कहते ही मातृस्नेह समुद्र सीमा तोड कर वह निकला। माता के स्तनों से जो दूध की धारा निकली उसके गिरने से एक शिला के टुकडे २ होगये। उधर राना जी पर सूर्यमल्ल जी की बहन सूजाबाई और इधर इनपर इनकी रानी सती हुई। यहां टाड साहबने राना रत्न जी की बहन को सूर्यमल्ल जी की रानी बतलाकर उनका सती होना लिखा है परन्तु बूँदीके इतिहास से बोध होता है कि राव और राना आपस में साढू थे और दोनों श्रीनगर के पंवार राजा सारंग जी की बेटियां थीं।

अध्याय ३.

राज्यकी उन्नति।

राव सूर्यमल्ल जी जितने बहादुर थे उनके पुत्र **सुरतानजी** उतने ही अत्याचारी थे। उनके अत्याचार की कथा जैसे बूँदी के इतिहास में है वैसे ही

टाड साहब की किताब में। वह इस न्यायशील वीर घराने में राजा वेणु के समान थे। जो इन्हें अच्छी सलाह देता उसकी प्रतिष्ठा बिगाडते, अपने ऊपर उपकार करने वाले को मारडालने का मनसूबा करते और टाड साहब ने यहां तक लिखा है कि अपनी प्रजाकी आंखें निकलवा कर काल भैरव को चढाया करते थे। अन्त में यहां के उमराव और यहां की प्रजा उनके अत्याचारों से तंग आगई और उन्होंने इनके दादा राव नारायण दास जी के भाई नर्वद जी के पौत्र **सुरजनजी** को चित्तोड से बुलाकर बूँदी का राज्य दिया। सुरजन जी का शासन बूँदी राज्य के लिये बडा लाभ दायक था। उन्होंने बूँदी का उद्धार किया, इसे बढाया और बडा काम करके बडा नाम कमाया। टाड साहब स्वीकार करते हैं कि इनके समय से बूँदी राज्य में नये युग का आरंभ होगया। यह ३६ वर्षकी उमर में संवत् १६११ में गद्दी पर विराजे। इनके शासन में सुरतान जी के समय का गया हुआ कोटा हाथ आया और रणथंभोर का किला भी इन्हें मिलगया। बादशाह अकबर ने जान झोंक कर चित्तोड गढ अवश्य लेलिया परन्तु फिर भी उसकी लालसा नहीं मिटी थी। उसने रणथंभोर का किला लेने के विचार से उसका घेरा देकर कई दिन लडाई करने पर भी जब विजय न पाया तब सुलह का पैगाम लेकर जयपुर नरेश भगवान दास जी को और उनके पुत्र मानसिंह जी को सुरजन जी के पास भेजा और जलेबदार का वेष बनाकर आप भी उनके साथ गया। कहते हैं कि जयपुर नरेश की ढीली ढाली और सुरजन जी की जोशभरी बातें सुनकर अकबर को जोश आगया। जोश से अकबर पहचान लिया गया और उसका हाथ पकड कर सुरजन जी ने अपनी गद्दी पर बिठला लिया। बस फैसला होगया। सुरजन जी ने अकबर से **सात** परगने लेकर और सात शर्तें लिखवा कर किला संवत् १६२४ में खाली कर दिया। बूँदी के इतिहास में वे सात शर्तें ये हैं:—

(१) हम अपनी लडकी बादशाह को न देवें।

(२) हमारे रनवास की स्त्रियां नौरोज पर बादशाह के जनाने में न जावें।

(३) अटक नदी के पार उतरने का हम पर दबाव न डाला जाय।

(४) हम बादशाह के आम और खास दर्बारों में शस्त्र बांधकर आ सकें।

(५) दिल्ली नगर में और लाल कोट तक हमारा नकारा बाजै।

(६) हमारे घोडों के दाग न लगैं अर्थात् उनके पुट्ठों पर गर्म लोहे के निशान न किये जायँ और--

(७) हम किसी राजा के अधीन होकर युद्ध में न जायँ।

टाड साहब कहते हैं कि शर्तें १० हुई थीं। उनके मतसे:---

(८) हमसे जजिया न लिया जाय।

(९) हमारे पवित्र मंदिरों की प्रतिष्ठा की जाय और

(१०) जैसे दिल्ली बादशाह के लिये है वैसे बूँदी हाडाओं के लिये रहे।

इस तरह शर्तें दश हुई थीं। शर्तें सात हुईं वा दश हुईं सो मैं नहीं कह सकता हूँ परन्तु टाड साहब ने अपनी किताब में रणथंभोर बादशाह को दे देने पर सुरजन जी को विश्वास घात का दोषी ठहराया है और उनके विचार से ये परगने और शर्तें उसकी रिशवत हैं परन्तु उन्हीं के लेख से जब यह स्पष्ट होता है और बूँदी के इतिहास भी जब इसकी साक्षी देते हैं कि बूँदी वाले के कुटुम्बी सामन्त सिंहजी ने यह किला मुसलमानों से पाया और पाकर उन्होंने सुरजन जी को देदिया फिर जिसके शिर में जरासी भी बुद्धि है वह क्यों कर मान सकता है कि रणथंभोर का किला रानाजी का था और उन्हीं के अधीन था। ऐसी दशा में टाड साहब ने इस प्रकार के शब्द लिखने में भूल की है। खैर कुछ भी हो परंतु सुरजन जी ने बादशाह अकबर से ये शर्तें लिखवा कर हाडा कुल को, उन कलंकों से मुक्त कर लिया जो मुगल बादशाहों को लडकियां देने से जयपुर जोधपुर जैसे बडे २ राज्यों पर लगकर युग युगान्तर तक इतिहास के पृष्ठ काले करते रहैंगे। सुरजन जी ने बादशाह अकबर की आज्ञा से गोंडवाने का विजय करके राव राजा की पदवी पाई, पंजहजारी मनसब पाया और २६ परगने बूँदी के पास और इतने ही काशी के निकट पाये। तब से यह बूँदी का अधिकार अपने पुत्र को देकर काशी ही में निवास करने लगे। वहां इनके बनाये राजमन्दिर, हाडा बाग, सूर्यकुंड, कुंवर बाग आदि स्थान काशी में तथा कितने ही स्थान

मिर्जापुर जिले में अब भी विद्यमान हैं। टाड साहब लिखते हैं कि "काशीका राज्य पाकर इन्होंने अपनी दयालुता, बुद्धिमानी और उदारता से भारत साम्राज्य और विशेष कर हिन्दू प्रजा को बडा लाभ पहुँचाया, उनकी पुलिस से प्रान्त भर में शान्ति फैलगई, उन्होंने काशी को दर्शनीय कर दिया और उन्होंने बीस घाट और ४४ मंदिर बनवाये"। उनका राज्य काशी में संवत् १६३२ में स्थापित हुआ था और राज मंदिर संवत् १६४१ में बना है। उनका देहान्त संवत् १६४२ में काशी में हुआ।

सुरजनजी के तीन पुत्र थे। बडे **दूदाजी** मझले **भोजजी** और तीसरे **रायमल्लजी**। दूदाजी का अक्खडपन देख कर बादशाह अकबर उन्हें दूदा लकड खां कहा करते थे क्योंकि इन्होंने नाराज होकर बादशाह को सलाम नहीं किया था। भोजजी कुंवर पदे ही में अकबर के पास बडी २ वीरता दिखाकर खूब यश लूट चुके थे। उन्होंने बादशाह को सहायता देकर सूरत का बादशाह मारा, उन्होंने अहमद नगर की वीर रमणी चांद सुलताना बेगम को जीतकर वहां भोज बुर्ज बनवाया और उन्होंने ऐसे २ कई पराक्रम दिखाकर बादशाह अकबर से ४ शर्तें और करवाईं।

(१) हमारी सेना के समीप गोवध न होने पावे।
(२) हमारी सेना के निकट मूर्तियां न तोडी जांय।
(३) वर्षा ऋतु में हम बिना छुट्टी अपने देशको चले जा सकैं। और
(४) बादशाह की सवारी के समय हम बिना आज्ञा भी घोडे पर चढ सकैं।

जयपुर के महाराज मानसिंह जी बादशाह के खूब मुँह लगे थे। जो उनसे मिलकर न रहता उसकी चुगली करने से भी नहीं चूकते थे। एक दिन उन्होंने इनके सामने ही बादशाह से कहा कि सूरत के बादशाह की पगडी का बहुमूल्य हीरा इनके पास है। बादशाह ने भोजजी से जब मांगा तो उन्हों ने कहदिया और कटारी पर हाथ रखकर कहदिया कि—"हीरा तो हमारे पास है परंतु जो बतलाने वाला है उसे समझ लेंगे।" इस बात से जलकर जब बादशाह की माता का देहान्त हुआ तब मानसिंह जी ने उन्हें बहकाया कि—"भोजजी यदि डाढी मोंछें मुडवावेंगे तो सब ही राजा मुंडवा लेंगे क्योंकि यही बडे धर्मध्वज हैं।" बादशाह ने इस

बात पर बहुत हठ किया परंतु उन्होंने एक बाल भी न दिया। इसपर चिढकर बादशाह ने ४९ परगने छीन लिये। बूंदी के इतिहास में बादशाह की माता के मरने पर मोंछ मुंडवाने की घटना का उल्लेख है किन्तु टाड साहब कहते हैं कि बादशाह की जोधपुर वाली बेगम जोधाबाई की मृत्युपर यह घटना हुई थी। उस समय बादशाह ने सब ही हिन्दु राजाओं को डाढी मोंछें मुडवाने की आज्ञा दी थी और सब लोगों ने मुंडवाई भी थी परंतु बादशाही नाई जब मूंडते २ बूँदी वालों के डेरों पर आये तब उन्होंने उनको पीट कर निकाल दिया। केवल इतना ही क्यों बरन युद्ध करने को तैयार हो गये। जब इस बात की अकबर को खबर हुई तब वह संभला।इन्हें मनाकर अपने पास लेगया और उसने राजा सुरजन जी की बातें याद करके कहा कि "सुअर खाने वाला हमारी बेगम के लिये डाढी मोंछें मुंडवाने का अधिकारी नहीं है।" बस इस बहाने से बादशाह ने इस झगडे को टाल दिया। टाड साहब ने भोजजी की वीरता और उपकारों को भूलने पर अकबर की निन्दा और उनकी खुशामद करके मना लेने पर उसकी स्तुति की है।

संवत् १६६४ में भोजजी का देहान्त होने पर उनके पुत्र रावराजा **रत्नजी** बूंदीके अधिकारी हुए। टाड साहब ने अपनी किताब में लिखा है कि" बादशाह जहांगीर ने अपने पुत्र पर्वेज को बुरहानपुर का सूबेदार बनाया था परंतु लालची शाहजादे खुर्रमने अपने भाई का वध कर डाला। खुर्रम जयपुर वालों का दौहित्र था इस कारण उसे राजपूतों का बहुत सहारा था। एक रत्नजी को छोड कर "बाईस राजा उसमें मिल गये थे। उसने बुरहानपुर लेने के लिये घोर बलवा किया और अकेले रत्नजी ने ही उसे जीतकर बादशाह का हित साधन किया। इस तरह अवश्य ही बादशाह का हित साधकर अच्छा इनाम पाया परंतु बादशाह को राजपूत राजाओं का बढना पसंद नहीं था इसलिये उसने इस युद्ध में वीरता दिखाने वाले रत्नजी के पुत्र **माधवसिंहजी** को कोटा अलग देकर हाडौती के टुकडे करडाले। राव राजा रत्नजीने बागी दर्याबखां को पकडकर नौबत पाई, पीला झंडा पाया और इस झंडे को बादशाह के सामने उडाने का अधिकार पाया। राव राजा रत्नजी

ने बादशाह से यह प्रण करवा लिया था कि " जहां उनके डेरे हों वहां गोवध करके भूमि अपवित्र न की जाय । " टाड साहब कहते हैं कि " इस प्रण से रावराजा ने केवल राजपूत भाइयों ही का दुःख दूर नहीं किया वरन समस्त हिन्दू जाति का उपकार किया । अपने पराक्रम और नेकी का सदा के लिये नाम छोडकर बुरहानपुर के निकट रावराजा रत्नजी मारे गये । " इस तरह जो बातें इनके विषय में टाडसाहब ने लिखी हैं अनेक अंशों में बूँदी के इतिहास से मिलती जुलती हैं । केवल दो तीन बडी २ बातों का अंतर है । एक यह कि बुरहान-पुर का बलवा करने के बाद खुर्रम रत्नजी की कैद में आगया । कहते हैं कि रावराजा रत्नजी के पुत्र हरिसिंह जी ने इसे बहुत कष्ट दिया । यहां तक कि उससे चिलमें भरवाई और जब भरने में देरी हुई तब गर्म २ चिमटे से उसे जला दिया । इस बातकी खबर पाकर रत्नजी ने शाहजादे खुर्रम को अपने तीसरे लडके माधवसिंहजी के सिपुर्द किया और उनके बहुत कुछ आदर सत्कार से प्रसन्न होकर जब खुर्रम दिल्ली का बादशाह हुआ तब उसने बूँदी से कोटे को स्वतंत्र करके माधवसिंहजी को वहां का राजा बना दिया । उन्हींके वंशधर माधाणी हाडा आजकल कोटे के राजा हैं । यह जनश्रुति है परंतु इतना अवश्य है कि खुर्रम को बादशाह ने कोप कर के मारडालने की आज्ञा दी थी

कोटे को स्वतंत्र करके माधवसिंहजी को वहां का राजा बना दिया । उन्हींके वंशधर माधाणी हाडा आजकल कोटे के राजा हैं । यह जनश्रुति है परंतु इतना

और बूँदी के इतिहास "वंशभास्कर" में भी लिखा है कि—"राव राजा रत्नजी के बड़े पुत्र **गोपीनाथजी** को एक चंदेरिया ब्राह्मणी से आंख लग गई। एक दिन चंदेरियों ने महाराज कुमार गोपीनाथजी को घेर लिया और राव राजा को खबर दी कि इज्जत बिगाडने वाले चोर को क्या दंड दिया जाय?" रावराजाजी ने कहा " मृत्यु " और इसपर उन लोगों ने मिलकर गोपीनाथजी को मार डाला। जब इस घटना की खबर रावराजा रत्नजी तक पहुँची तब उन्होंने पुत्र को दोषी समझकर पुत्रशोक को कलेजे पर बज्रके समान चुप चाप सह लिया। जवानी के जोश में मनुष्य से ऐसे काम होजाना कोई भारी बात नहीं है परंतु रावराजा रत्नजी की इस समय जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है क्यों कि इन्होंने न्याय को अधिक प्यारा समझकर अपने पुत्र के प्यार को भुला दिया। धन्य ऐसे राजाओं को।

अध्याय ४.

पराक्रम की परिसीमा।

कुमार गोपीनाथजी का पिताके आगे ही देहान्त हो चुका था इस लिये राव राजा रत्नजी के बाद उनके पौत्र रावराजा **शत्रुशल्यजी** जो **छत्रसालजी** के नामसे प्रसिद्ध हैं गद्दीपर विराजे। इस समय इनकी उमर २९ वर्ष की थी। शत्रुशल्यजी के बारह भाई थे। उनमें पांचका वंश चला और वे पांचों शाखायें पाँचों नामों से पुकारी जाती हैं। रावराजा शत्रुशल्यजी जब तक जीते रहे बादशाह शाहजहांके आगे एक सूबे के स्वतंत्र अधिकारी रहे। दक्षिण के सूबे में शाहजादा औरंगजेब के अधिकार में जितने युद्ध हुए उनमें शत्रुशल्यजी ने असाधारण वीरता दिखाकर दौलताबाद, बीडर, गुलबर्गा आदि पर बादशाह का अधिकार करा दिया। ये अवश्य ही दिल्ली के बादशाह के इस तरह पूर्ण कृपापात्र होगये थे और ये तनके पूरे भक्त थे परंतु बादशाह शाहजहां को साक्षी गोपाल जानकर उनके लड़के आपस में लड़ते थे। कोई बादशाह को मारकर स्वयं सम्राट् बनना चाहता था और कोई उसे कैद करके स्वयं मालिक बन बैठने की चिन्ता में था। बादशाह और सबको बुरा और दारादिकोह को

अच्छा समझता था और इस कारण उसकी रक्षा के लिये ही यह नियत थे । जिस समय धौलपुर में चंबल नदी के किनारे दिल्ली के तख्तके लिये औरंगजेब की दारा से लडाई हुई उन्होंने दारा की सेना निर्बल और औरंगजेब का प्रपंच सबल देखने पर भी शाहजहां की आज्ञा से दारा का साथ दिया। केवल साथ ही न दिया बरन दारा की प्राण रक्षा के लिये उसे लडाई के मैदान से भगादिया। समरभूमि में अपनी सेना कम देख कर भी इन्होंने हाथी पर चढकर सेना का कमांड अपने हाथ में लिया,हाथी के गोला लगकर जब वह भागने लगा तब भागते हाथी पर से कूद कर घोडेपर चढे और संवत् १७१५ के उस भीषण युद्ध में इन्होंने अपने प्राण शत्रु की तलवार के अर्पण करके वीरगति पाई। जिस समय इनका हाथी इन्हें लेकर भागने लगा इन्होंने गर्जकर कहा कि— "हाथी भलेही भाग जाय परंतु रणभूमि में से मरने तक उसके मालिक का पैर नहीं डिगैगा। " जब दारा भागा तब इन्होंने ललकार कर कहा था कि-"जो भागकर प्राण बचाते हैं उनकी जननी को धिक्कार है। नमक का हक अदा करने के लिये मैं (अंगद की तरह) अपने पैर धरतीपर रोपे देता हूँ। यदि जीता रहा तो जीते बिना यहां से कदापि नहीं टलूँगा। " टाड साहब कहते हैं कि-"राव शत्रुशल्यजीने बावन लडाइयां लडी थीं। वह अपने असाधारण साहस और शुद्ध नमक हलाली के साथ नाम कमा गये। ऐसे उदाहरण हमें और नहीं मिलते हैं। " इनका जिस जगह धौलपुरमें शरीर पडा था वहां रणके चौंतरे के नाम से चबूतरे अब भी मौजूद हैं। यह युद्ध बडा भीषण था। लोग कहते हैं कि नींव खोदने पर वहां की मिट्टी अब भी रक्त में रंगी हुई निकलती है। शाहजहां के समय में इनका मनसब हफ्त हजारी था। इन्होंने बहुत से परगने इनाम में पाये थे और बूँदी में छत्रमहल आदि अनेक अच्छे अच्छे स्थान बनवाये थे।

इनके पीछे इनके पुत्र रावराजा **भावसिंहजी** बूँदी के सिंहासन पर विराजे। उधर शाहजहां के बाद सब भाइयों का संहार करने वाला क्रूर औरंगजेब तख्त पर बैठा। वह अवश्य ही शत्रुशल्यजी से शत्रुता रखता था और जब उनसे बदला नहीं लेने पाया था तब उसने रावराजा भावसिंह जी

को दुःख देकर अपनी द्वेषाग्नि बुझाना चाहा। उसने अपनी दुष्टता दिखाने के लिये शिवपुर के राजा आत्मारामजी गौडको आज्ञा दी कि भावसिंहजी से बूँदी छीन लो। आत्मारामजी को भी लालच ने आ घेरा परंतु बूँदी पर चढाई करने में लेनेके देने पडगये। वीर हाडाओं ने आत्मारामजी को मार भगाया, उनके शिवपुर पर अपना अधिकार कर लिया और इसलिये आत्मारामजी रोते पीटते वादशाह औरंगजेब के पास पहुंचे। इसपर औरंगजेब ने इनको बुला कर इनका सत्कार किया और इन्हें औरंगावाद की सूबेदारी दी। वहां ही इनका संवत् १७३८ में देहान्त हुआ। वहां इनका वीरता, उदारता और दैवी चमत्कारों के कारण इतना वडा नाम है कि लोग इन्हें देवता की तरह पूजकर अजीव अजीब काम निकालते हैं। यह टाड साहव के लेख का सार है किन्तु बूँदी के इतिहास "वंश प्रकाश" में लिखा है कि औरंगजेब ने इनके पिता का वदला लेने के लिये इनका मनसव ढाई हजारी रख कर इनके भाई भगवंतसिंहजी को जुदा राजा बनादिया था। उसने एक वार सब राजाओं को बुलाकर कहा कि—"तुम लोग केवल लडकी देकर अलग हो जाते हो सो ठीक नहीं। अब हमारे साथ वैठ कर खाना खाओ। हमारा दीन स्वीकार करो। तुमको दुगुने राज्य दिये जांयगे।" इस बात से सबके सब घवडा उठे किन्तु भावसिंह जी विलकुल विचलित न हुए। उन्होंने स्पष्ट कहदिया कि—"मरना अवश्य है फिर धर्म छोड कर न जियेंगे।" इसके वाद जयपुर महाराज जयसिंह जी ने वादशाह से कहदिया कि—"यदि आप हमको मुसलमान वना लो गे तो उदयपुर और बूँदी वाले जो अभी आपको लडकी नहीं देते हैं हमें भी न देंगे इसलिये आप पहले इस वातको भावसिंहजी से स्वीकार कराओ।" इस वहकावट से वादशाह ने क्रोध में आकर हिन्दुओं के समस्त मंदिर तोडने, मूर्तियां फोडने और मंदिरों के मसाले से मसजिदें बनवाने की आज्ञा दी। इसका जहां तक होसका देश भर में पालन हुआ। भारत वर्ष भर में सैकडों जगह हजारों मंदिर मसजिदें बने हुए आज दिन भी दुष्ट औरंगजेब के अत्याचारों को याद कराके हिन्दुओं के हृदय को वज्रकी तरह टुकडे २ कर रहे हैं परंतु रावराजा भावसिंहजीने बूँदी को इस आपत्तिसे बचा लिया। केशवरायजी के मंदिर का पाटन में एक कलश ही टूटने पाया था

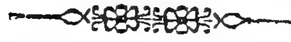
कि बूँदी की सेना ने बादशाही सेना को मार भगाया । रावराजा भावसिंहजी ने केवल इतना ही नहीं किया वरन प्राणों की बाजी लगाकर वह एक ऐसा और भी काम कर गये जिसके कारण उनका नाम युगयुगान्तर तक अमर रहैगा । बादशाह औरंगजेब ने संवत् १७२४ की भाद्रपद शुक्ला १० को आज्ञा दी कि–"तुम हिन्दूलोग अपना धर्म नहीं छोडते हो सो अच्छा नहीं करते । कल तुम्हारे देवताओं की मूर्तियां न निकल ने दी जायंगी ।" इस आज्ञाको सुनकर सब राजा जब घबडा उठे तब भावसिंहजी ने कहा और जोर देकर कहा कि– "जब एक दिन मरना अवश्य है फिर धर्म के लिये मरैंगे ।" इससे और राजाओं को भी साहस हुआ और दूसरे दिन भाद्रपद शुक्ला ११ को जलयात्रा एकादशी के दिन औरंगजेब जैसे हिन्दूद्वेषी क्रूर और अत्याचारी बादशाह के सामने, मुसलमानों की राजधानी दिल्ली में भगवान् के विमान निकाले गये । इसपर बादशाह ने क्रुद्ध होकर विमानों का और मूर्तियों का नाश करने के लिये अपनी सेना भेजी । कहते हैं कि बादशाह की सेना देखकर सब राजाओं ने भावसिंहजी का साथ छोड दिया इसीलिये गोकुलिये गोस्वामियों में गोपीनाथजी की गद्दी वाले तिलक का नीचे वाला हिस्सा नहीं रखते हैं । कुछ भी हो परंतु बूँदी के इतिहासमें लिखा है कि जब भावसिंहजीको लडने के लिये तैयार देखा तब औरंगजेब की माता ने उसे समझा कर सेना वहां से हटवा ली और शान्तिके साथ हिन्दुओं के विमान निकल गये । इन्हीं कारणों से बूँदी में अबतक रावभावसिंहजी की दुहाई चलती है और सब दूकानदार उन्हींका नाम लेकर दूकाने खोलते हैं । औरंगाबाद के निकट इनके बसाये हुए भावपुरा गांव में इनका वैशाख कृष्णा ८ को संवत् १७३८ में देहान्त होगया । जोधपुर के महाराज से अप्रसन्न होकर औरंगजेब ने उनकी रानियों को एक बार पकडने की आज्ञा दे दी तब उन की रानीजी अर्थात् भावसिंहजी की बहन कर्मवतीजी ने मर्दाने वेश से रणभूमि में बादशाही सेना के खूब दांत खट्टे करके बीरगति प्राप्त करने में अपना नाम अमर करदिया था ।

इनके बाद इनके भतीजे के पुत्र **अनिरुद्धसिंहजी** बूँदी की गद्दी पर विराजे क्यों कि इनके कोई पुत्र नहीं था । यह संवत् १७३८ में गद्दी पर

विराज कर बादशाह औरंगजेब के बडे कृपापात्र बने। इन्होंने बादशाह की ओर से दक्षिण की लडाइयों में तीन बार विजय पाया। चौथी बार बिजापुर और भागनगर के मरहटे तथा मुसलमान औरंगजेब के शाहजादे आजम की बेगम को पकड लेगये थे जिसे अकेले अनिरुद्धसिंहजी ने युद्ध में लडकर छुडाने में बड़ा पराक्रम दिखाया और बादशाह से इसके उपलक्ष्य में छः परगने और उसके चढने का गजगौर हाथी पाया। एक बार गणगोर के त्योहार के कारण यह बादशाह की आज्ञा के अनुसार जाटों से लडने के लिये शीघ्र न जा सके थे इस कारण बादशाह ने क्रुद्ध होकर रावराजा सुरजनजी की शर्तों के विरुद्ध इन्हें काबुल भेजदिया। वहां ही ६ वर्ष रहकर संवत् १७९२ में इनका देहान्त हो गया। टाड साहब कहते हैं कि शाहजादे शाह आलम की सूबेदारी में अनिरुद्धसिंह जी नायब थे। इनकी राजधानी लाहोर थी जहां बादशाह की नौकरी करते करते यह मृत्यु को प्राप्त हुए।

चौहानों का इतिहास और हाडाओंका इतिहास दो सो पीढियों का इतिहास है। इसकी जो लिखी हुई अथवा मुद्रित सामग्री मिल सकती है उससे यदि समय की आवश्यकता के अनुसार योग्य इतिहास तैयार किया जाय तो कम से कम दो तीन हजार पृष्ठ की एक बडी भारी पुस्तक बन सकती है। इतनी बडी पोथी का काम इन थोडे से पृष्ठों से जो मैंने इस पुस्तक के प्रथम खंड में "वंशपरिचय" के नामसे लिखा है, नहीं हो सकता है। ऐसी दशा में मैं जानता हूँ कि इस वंश के इतिहास का इन पृष्ठों में दिग्दर्शन भी भली प्रकार नहीं हो सकता। बस यही विचार कर मैंने जिन २ लोगों का चरित्र अधिक प्रसिद्ध समझा उनकी मोटी मोटी बातें चुनकर लिख दी हैं। इस पर भी इस खंड का बहुत विस्तार होगया। इस पुस्तक में अधिक विस्तार चरित्र नायक के चरित्र का होना चाहिये। इस कारण मैं एक खंड में उनके पिता का चरित्र लिखकर आगे से महाराव राजा उम्मेदसिंह जी के चरित्र लिखने का प्रयत्न करूंगा। इस अध्याय के अंतमें इतना और लिखना आवश्यक है कि चौहानों की हाडा शाखा में बूँदी और कोटा—ये दो राज्य हैं और चौहानों में सिरोही भदावर के सिवाय मेवाड और मेरवाडे में कई छोटे २ रईस हैं और युक्त प्रदेशमें मैनपुरीके जमींदार हैं।

द्वितीयखण्ड ।



अध्याय १.

पिताके पराक्रम ।

रावराजा अनिरुद्धसिंहजी का स्वर्ग वास होनेपर केवल १० वर्ष की उमर में उनके पुत्र महाराव राजा **बुधसिंहजी** का पौष कृष्ण १३ संवत् १७९२ को बूँदी में राज्याभिषेक हुआ । इन्होंने पहला मेवाड, दूसरा आमेर, तीसरा बेघूं, चौथा भिनाय, पांचवां बांसवाडा,—इसतरह पांच विवाह किये थे और इनसे छः पुत्र और दो कन्यायें पैदा हुई थीं । एक ही वर्ष के बाद बादशाह औरंगजेब ने इनको दिल्ली बुलाया और केवल ग्यारह वर्ष की उमर में इनको अपने पुत्र बहादुरशाह—शाहआलम के साथ **काबुल** की **लडाई** पर भेज दिया । उमर बहुत कम होने पर भी इन्होंने इतनी वीरता दिखाई कि बडे २ लडाकू सरदारों को दांतों अंगुली दवानी पडी । इस पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और **टोंक** का परगना इन्हें इस बात पर इनाम में मिला । केवल इतना ही नहीं वरन आमेर नरेश विष्णुसिंह जी इनकी वीरता पर इतने मोहित होगये कि उन्होंने इनको अपनी **बेटी विवाह दी** । इस चढाई में एक ऐसी घटना हुई जो यहां विशेष रूप पर उल्लेख करने योग्य है। कहते हैं कि जिस समय बुधसिंहजी शाहजादे की दो ड्योढी लांघकर तीसरी में पहुंचे एक मुसलमान सरदार ने जो बहादुरशाह के नाक का बाल था इनसे कुछ **दिल्लगी** की । एक तुच्छ यवन की दिल्लगी वीर हाडा युवक क्योंकर सहन कर सकते हैं बस उन्होंने उसी समय कमर से **कटारी** निकाल उसके पेट में इस तरह **ठूंस दी** कि उसकी आंतें निकल पडीं । इस विषय में बूँदीमें एक पद्य प्रसिद्ध है वह यह है:—

"हूल उठी हुरमें हियमें यह बात सुनि त्रास पर्यो सारी बादशाही के अवास में, खान सुलतान सबदांतन तिनोका धरे आंतन विखेरी मीर मार्यो एक सास में, भोजरतनेस तें सवाई कीन्हीं राजाराव बुद्ध बलवन्त वीरताई के विलास में, अप्सरा अकाश में तमाशे आई ता समै निकारी हाडा जा समै कटारी आमखास में।" यद्यपि शांह आलम का वह कृपापात्र था परंतु इनकी वीरता पर शाहजादा बहुत मोहित था इसलिये उसने इनका कोई अपराध न समझकर इनसे कुछ भी न कहा।

काबुल से लौटने पर औरंगजेब ने पुत्र शाहआलम को बहादुर शाह की उपाधि दी। इस घटना से कुछ समय बाद औरंगजेब अपनी नवीन राजधानी औरंगाबाद में बीमार पडा। उसके मरने का समय निकट आ पहुंचा और तब वह अपने अत्याचारों, अपने कुकर्मों पर पछताता हुआ अपने अमीर उमरावों और राजा महाराजाओं से कहने लगा—"मेरे बाद? मेरे बाद कौन बादशाह होगा? इस सवाल का मैं क्या जवाब दूं? इसका जवाब खुदा देगा? यह उसीके हाथ में है। हां! मैं चाहताहूँ कि अगर उसकी मर्जी हो तो मेरे प्यारे बेटे बहादुर शाह शाह आलम को गद्दी मिले। मगर मुझे शक है, मैं खयाल करता हूँ कि शाहजादा अजीम अपनी तलवार के जोर से तख्तनशीन होने की कोशिश करेगा।"—बात यही हुई। औरंगजेब का संदेह सच्चा निकला। उसके मरते ही दोनों भाइयों में भरतपुर के निकट जाजव के मैदानमें लडाई ठन गई। टाड साहब लिखते हैं कि "लडाई की तैयारी करने के लिये जब बहादुर शाह ने सब राजाओं को इकट्ठा किया तब रावराजा बुधसिंह जी ने लडकपन छोडकर अभी जवानी में प्रवेश किया ही था, छोटे भाई जोध सिंह जी की अचानक मृत्यु से इनके कलेजे का घाव अभी सूखा भी न था परंतु कुछ भी हो वीर जाति में, वीर कुलमें, जन्म लेकर वीर हाडा कभी ऐसी बातों से विचलित होने वाले न थे। उन्होंने कहा कि— "मैं बूँदी के लिये नहीं हूँ। मैं बादशाह के लिये हूँ। मैं बादशाह के लिये उस मैदान (धोलपुर के मैदान) में लडूंगा जिसमें अनेक बहादुर हाडा बडे पराक्रम के बाद धराशायी हुए हैं। वहीं मेरे पूर्वज शत्रुशल्यजी की वीरता का

देखा बजरहा है और उन्हीं का अनुसरण करना मेरा कर्त्तव्य है । यदि परमेश्वर ने चाहा तो बादशाह के विजय का यश मुझको प्राप्त होगा ।" अहा ! कितना साहस ! कितनी रजपूती ! सचमुच रावराजा बुधसिंहजी की नस नस में बहादुरी भरी हुई थी । उनके ये उस समय के शब्द हैं जब उनकी अच्छी तरह मसें भी नहीं भीगीं थीं । जब उन्होंने लडकपन को छोडकर अभी जवानी में पैर ही रक्खा था ।

वीरपुंगव बुधसिंह जी ने जो कुछ कहा था **करके दिखला दिया** । धौलपुर के निकट **जाजव** के मैदान में **युद्धका** घमसान मच गया । टाड साहब कहते हैं कि—"भारतके इतिहास में ऐसा भीषण युद्ध कभी नहीं लिखा गया था । यदि यह संग्राम केवल दिल्ली के सिंहासन के लिये हुआ होता तो आपस में मार काट होकर सदा की तरह शीघ्र ही फैसला हो जाता परंतु यह युद्ध राजपूत वीरों के एक राज्य का दूसरे राज्य से, एक घराने का दूसरे घराने से था । कोटा और दतिया वाले शाहजादे आजम के कृपापात्र थे । वे औरंगजेब की आज्ञा को भूलकर उसके सच्चे उत्तराधिकारी के विरोधी हुए । दक्षिण की लडाइयों में बूँदी वालों और दतिया वालों की "एक प्राण दो तन" मित्रता थी । दोनों ने इस जंगमें अपनी मित्रताको शत्रुता में बदल दिया । कोटे वाले रामसिंह जी को हाडाओं का शिरताज बनने का लालच था इसलिये वह भी जाजव के मैदान में हाडा शिरमोर के सामने होगये । इस लडाई से पहले कोटे के रामसिंह जी ने रावराजा बुधसिंह जी से कहलाया था कि—"बहादुर शाह को छोडकर शाहजादे आजम में आ मिलो ।" परंतु जो अपने **वचन का पालन** करने को **मरने से अच्छा** समझ ते हैं वे ऐसी बातों में आने वाले थोडे ही हैं । राव राजा बुधसिंह जी ने उत्तरमें कहलाया कि—"जिस मैदान में हमारे बडों ने तलवार की धारा में अपने प्राणका प्रवाह करके स्वर्ग पाया है उस मैदान में मेरा मस्त

अच्छा समझ ते हैं वे ऐसी बातों में आने वाले थोडे ही हैं । राव राजा बुधसिंह जी ने उत्तरमें कहलाया कि—"जिस मैदान में हमारे बडों ने तलवार की धारा में अपने प्राणका प्रवाह करके स्वर्ग पाया है उस मैदान में मे मस्तक

बुन्देला तोप के गोले से उड गये और शाहजादा आजम अपने बेटे बेदार-वख्त समेत इसी लडाई में बुधसिंह जी की **तलवार खाकर** सदा के लिये **कब्र में** सो गया। " बाबू हरिचरण सिंह चौहान ने अपनी "बूंदी राज चरितावली" में इस अवसर की जो कुछ कविता लिखी है वह पढ़ने योग्य है। वे कवित्त ये हैं-

"जुद्ध माहि जाजव के बुद्ध ह्वै सक्रुद्ध उद्ध आजम के महावीर काटि डारे ऊजासे।
कहै कवि दूलह समुद्र बढे श्रोणित के जुग्गिन परेतें फिरैं जंबुक अजूजासे ॥
एक लीन्हे शीश खाय वेष ईश एकन को एकनकी उपमा निहारी मनु ऊजासे।
अधफटे फैलि फैलि करमें बिराजें मानो माथे मुगलन के तराशे तरबूजासे ॥ १ ॥
"जाडे से में पकरि हजारों मारे हांक धांक, देखो जी तमाशो बीर बूँदी के दीवान को।
बारह ही बरस के वजाय लोह छोह कियो, हाडा चहुवान पृथ्वीराज उनमान को ॥
कहै रूप सहाय जाको आलम सलाम करै, देखत तमाशो रथ रुक गयो भान को।
याही विधि अनर अमानो राव बुद्ध सिंह, खंजर सों फारि डारयो पिंजर पठान को २ *
"रहत अछक्क पै मिटै न धक्क पीवन की, निपट जुनागी डर काहू के डरै नहीं।
भोजन बनावैं नित चोखे खान खानन के, श्रोणित पचावैं तऊ उदर भरै नहीं ॥
उगलित आसो सोऊ शुक्क समर बीच, राजै राव बुधकर बिमुख परै नहीं।
तेग या तिहारे मतवारे की अचक जौलौं, तौलौं गजराजन की गजक करै नहीं॥३॥"

टाड साहब इस बातको स्वीकार करते हैं और बूँदी के इतिहास गवाही दे रहे हैं कि बहादुर शाह को **दिल्ली का** सिंहासन केवल नवयुवा बुधसिंहजी के पराक्रम से, उनके युद्धकौशल से **प्राप्त हुआ** था और इसलिये उसने इनको रावराजा की जगह यदि **महा रावराजा** बना दिया और उसने यदि इन्हें **चौवन** परगने इनाम में दे दिये तो कौन बडा काम किया। इनके इतने बडे अहसान पर यदि बहादुर शाह इन्हें दिल्ली का आधा राज्य भी दे डालता तो कुछ अधिक नहीं था। अस्तु। चौवन परगने पाने पर भी बहादुर शाह के **सिंहासन** की रक्षा के लिये बहादुर बुधसिंहजी उस समय **दिल्ली छोडकर बूँदी न जा सके**। बूँदी के बहादुर २ हाडा इस युद्ध में

* यह संकेत उस समयके लिये है जब बुधसिंहजी ने काबुल में एक यवन मारा था।

सदा के लिये सो चुके थे, सेना का अधिक भाग इनके पास दिल्ली में था और इस कारण उस समय बूँदी में इतनी सेना नहीं थी जो चौबन परगनों पर बुध सिंहजी का दखल कर सके। अवश्य ही यहां की थोडीसी सेना ने त्रेपन परगने अपने अधिकार में कर लिये परंतु घोर संग्राम में रक्त के पनाले बहने पर भी कोटा इनके हाथ न आया। हाथ चाहे न आया परंतु तब कोटे वालों से, कोटा वाले अपने छुट भैया से पक्की शत्रुता हो गई और वहां के महाराव भीम सिंहजी बुध सिंहजी का उत्कर्ष दवाने के लिये नाना प्रकार के कौशल्य करने लगे।

अध्याय ६.

पिताका पतन।

अवश्य ही महारावराजा बुधसिंहजी ने बहादुर शाह का बडा भारी उपकार करके उस की कृपा संपादन की थी परंतु प्रातः काल की छाया की तरह वह कृपा बहुत काल तक न ठहरने पाई। "बुढिया ने पीठ फेरी और चरखे की होगई ढेरी"- इस कहावत के अनुसार छुट्टी लेकर बुधसिंहजी के बूँदी को लौटते ही इनके शत्रुओं को **इनके बिरुद्ध** कान भरने का अवसर मिलगया। अवसर क्या मिलगया इन्होंने एक अंश में शत्रुओं को स्वयं अवसर दिया। किसी नित्य नाथ नामक कनफटा जोगी के उपदेश से और इन्हीं के पुरोहित गजमुखजी की प्रेरणा से वैष्णव महाराज बाममार्गी होगये। कहते हैं कि गजमुख जी ने इनको कई एक चमत्कार भी दिखलाये थे। उसीकी निशानी बूँदी के चौगान में हर्षदा देवी के सामने देवी दर्वाजा है। कुछ भी हो वाममार्गी होनेसे एक ओर जब इनके विचार बिगड गये थे तब दूसरी ओर से **प्राणप्रिय भाई** जोधसिंहजी की मृत्युका इनके हृदय पर ऐसा धक्का लगा कि इनका चित्त बिलकुल विचलित हो गया। यह घटना उस समय की नहीं है जब यह बहादुर शाह को दिल्ली दिलाकर बूँदी आये किन्तु जब यह बहादुर शाह को दिल्ली का बादशाह बनाने के उद्योग में जी जान से लगे हुए थे उसी समय बूँदी में एक भयानक घटना होगई। इनकी अनुपस्थिति में

इनके प्रतिनिधि बनकर इनके छोटे भाई चैत्र शुक्ला ३ के दिन गणगौरी की सवारी सजाकर जैत सागर तालाब पर पधार कर नाव में चढे हुए सैर कर रहे थे। उनकी आज्ञा से एक हाथी जलमें डालागया। उसीने एक टक्कर लगाकर उन की नाव उलट दी। उस में जितने आदमी सवार थे वे सब गणगौरी समेत डूब गये। उस समय से बूँदी में गणगौरी का त्योहार बंद होगया। बात पुरानी पडजाने पर भी जब वह बूँदी आये इस घटना का स्मरण करके बिलकुल बिह्वल होगये और सच पूँछो तो येहीं **दो बातें** ऐसे बलवान् पराक्रमी राजाके **गिराव का कारण** हुईं। इन बातों से इनका चित्त इतना उखड गया था कि यह राजकाज की बातों की बादशाही आज्ञाओं की और देश की छोटी बडी घटनाओं की बिलकुल सुधि लेना छोड बैठे थे। इनके शत्रु जिनका नाम इनके आगे दब गया था और जो इन की असाधारण स्वामिभक्ति देखकर इनपर डाह खाते थे, इन की निन्दा करने लगे, और इन्हें दबाने की चिन्ता करने लगे। केवल इतना ही नहीं वरन इन का रहा सहा मन एक घटना से और भी **उखड** गया। घटना यह हुई कि जिस बहादुर शाह को इन्होंने बादशाह बनाया था वह मरगया और उसकी जगह फर्रुखसियर दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ हुआ। बस इस बातसे इनका **हौंसिला टूट** गया और इसी कारण उसके बुलाने पर भी यह और राजाओं की तरह दिल्ली न गये। बस अब देर ही क्या थी। कोटा वाले महाराव भीमसिंह जी की प्रेरणा से रूपनगर के राजा राजसिंहजी को नवीन बादशाह के आगे चुगली खाने का अवसर मिला। उन्हों ने बादशाह को बंहका दिया कि "महाराबराजा बुधसिंह जी आप की आज्ञा का भंग कर के जोधपुर नरेश के मेल से उपद्रव करना चाहते हैं।" अविचारी बादशाह बस केवल एक ही शत्रु के कान भरने से बंहक गया और उसने झट उन्हीं की सलाह से **बूंदी का राज्य** कोटा के महाराव भीमसिंह जी को **दे दिया**। अवश्य ही इस अवसर पर बूँदी और कोटा जैसे दो भाइयों का संग्राम भी हुआ और वह भी ऐसे समय में हुआ जब बुधसिंहजी बूँदीमें नहीं थे परंतु **मैदान कोटे वालों** के हाथ आया और **बूँदी** में उनका अधिकार होगया। इस

घटनासे यह न समझना चाहिये कि बुधसिंहजी से सदा के लिये बूँदी छूटगई ।-नहीं जब फर्रुखसियर को इसका सच्चा भेद मालूम होगया कि इन्हें बहादुर शाह के शोक में विह्वल देखकर इन के शत्रुओंने मेरे सामने बुधसिंहजी की चुगली खाई है तब उसने अपनी ओर से सेना भेजकर संवत् १७७२ में इन-को फिर बूंदी दिलवादी ।

टाड साहब ने बूँदी और कोटे की शत्रुता का जो ऐसे अवसर पर खाका खेंचा है वह इतना रोचक है कि उसका सारांश दिये बिना मैं आगे नहीं बढ सकता हूँ । उन्होंने लिखा है कि-"फर्रुखसियर के समय में बारा के सैयद उसके नाक का बाल बन गये थे । उन्होंने मार काट, क्रूरता और अत्याचारों से सारा साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट कर डाला और फर्रुखसियर को सिंहासन से उतार देना चाहा ;परंतु इस बात को हाडाराव (बुधसिंह जी) सहन न कर सके । वह सदा अपने बचन के पक्के थे । उन्होंने दिल्ली के चौक में रक्त के पनाले बहाकर अपने चाचा जैतसिंह जी और अनेक वीर हाडाओं को खोने पर भी उस की उस समय प्राण रक्षा की ।-किन्तु-"जाजव के मैदान में बूँदी और कोटे की जो शत्रुता हुई थी उसका उस युद्ध में अपने प्राण विसर्जन करने वाले रामसिंह जी के पुत्र भीम सिंह जी ने निर्वाह किया । उन्होंने इन्हीं सैयदों का साथ दिया । शत्रुता की प्रबल अग्नि से उनका हृदय बिलकुल जलगया था । वह इसी कारण अपने क्षत्रिय स्वभाव को, अपने जातीय गुणों को भूलकर बडी क्रूरता से बुधसिंह जी का नाश करने पर उतारू हुए । जिस समय बुधसिंहजी इस शत्रुतासे बिलकुल अनजान होकर राजधानी दिल्ली के कोट के बाहर घोडा फेर रहे थे भीमसिंह जी के साथवालों ने अचानक उनको घेर लिया किन्तु अनेक बहादुरों की लाशें धरती पर गिर जाने पर भी उनके साथियों ने इन्हें बचा लिया । इतना होने के बाद वहां से हटकर बुधसिंह जी को अपनी रक्षा करनी पडी ।"

अवश्य ही बुधसिंह जी अपना मन विक्षिप्त होने पर भी दिल्ली जाकर इस तरह फर्रुखसियर को प्रसन्न कर सके थे और उन्होंने इस तरह उसे सैयदों के

आक्रमण से और उनके चक्र से बचाया भी परंतु अंत में वह शत्रुओं के हाथ से मारा गया और इसके बाद सैयदों की दुष्टता से देशभर में अराजकता फैल गई–देश भर में गदर मचगया। अपना २ राज्य सँभालने के लिये और २ राजाओं की तरह इस के बाद बुधसिंह जी को भीं बूँदी आना पडा।

जिस समय बुधसिंह जी बूँदी आने से पहले अपनी ससुराल जयपुर में ठहरे हुए थे, कोटे वाले भीमसिंह जी की जीभ बूँदी लेने के लिये फिर ललचाई। उन्होंने फिर बूँदी लेने के लिये चढाई की और केवल एक ही दिन की लडाई के बाद बूँदी के कामदार सालिमसिंह जी के भाग जाने से **भीमसिंह जी ने बूँदी लेली।** ले अवश्य ही ली परंतु इस बार भी पहले की तरह उनके पास बूँदी अधिक समय तक न ठहर ने पाई। संवत् १७७६ में जब भीमसिंह जी कलीजखां से लडकर मारे गये तब उन्हीं-के कामदार धाभाई ने बूँदी खाली करके फिर **बुधसिंह जी की दुहाई फेर दी** और भगेडू सालिम सिंह को इस तरह बूँदी का कामदार फिर से बन बैठने का अवसर मिल गया।

अध्याय ३.



आमेर से शत्रुता।

यद्यपि बहनोई बुधसिंह जी का आमेर नरेश जयसिंह जी से बहुत मेल था, ये दोनों साले बहनोई फर्रुखसियर की रक्षा में साथ थे और इसी कारण दिल्ली से लौटती बार बुधसिंह जी इनके साथ **आमेर गये** थे परन्तु वहां जाने पर इनका **स्नेह धूल** में मिलगया। टाडसाहब ने लिखा है कि:—

"जयसिंह जी का विचार बुधसिंह जी से बूँदी छीन लेने का था। इस अवसर पर दिल्लीसे लौट कर बुधसिंह जी भी आमेर में ठहरे हुए थे। कहते हैं कि आमेर नरेश की जिस बहन का विवाह बुधसिंह जी से हुआ था उसे

पहले बादशाह शाह आलम को विवाह देने का विचार था किन्तु उसी ने इनकी वीरता देखकर यह संबंध बुधसिंह जी के साथ अपनी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया था। बुधसिंह जी की आमेर वाली रानी के कुछ संतान न थी इस लिये उन्होंने पहले गर्भका बहाना करके फिर किसी लडके को अपना कुमार वतला दिया। इस बात की पक्की खबर बुधसिंह जी को थी ही इसलिये उन्होंने अपनी रानी कछवाही जी के सामने ही इस बात की जय-सिंह जी से शिकायत की। शिकायत सुनकर वह बहुत लज्जित हुई और इसी लिये खंजर निकाल कर अपने पति को मारने पर तैयार होगई। बुधसिंह जी ने वहां से हटकर अपने प्राण बचाये। "—यद्यपि बूँदी राज्य के मुख्य इतिहास लेखक कविराजा सूर्य मल्ल जी ने अपने ग्रंथ "वंशभास्कर" में रानी कछवाही जी का अपने पतिपर प्रहार करना स्वीकार नहीं किया है परन्तु उनके लेखों से विदित होता है कि उनके वनावटी पुत्र भवानी सिंह जी के विषय में अवश्य उस समय वडा भारी झगडा हुआ था। आमेर नरेश इस झगडे में बुधसिंह जी को सच्चा समझ कर बहन को फटकारते थे परन्तु जब कछवाही जी ने अपने भाई पर आक्रमण किया, जब उन्हें मारने को दौडी, जब उनको (जयसिंह जी को) भी असली न बतलाया तब जयसिंह जी को चुप हो जाना पडा था। बूँदी के इतिहास में इन कछवाही जी के शाहआलम के साथ सगाई होने की वात नहीं लिखी है परंतु मैंने सुना है कि इस झगडे का स्वरूप टाड साहब ने जैसा लिखा है उससे भिन्न प्रकार का है। टाड साहब ने लिखा है कि सगाई होगई थी किन्तु असल बात यह है कि जब शाहआलम ने आमेर वालों से लडकी मांगी तब उन्होंने उससे बुधसिंह जी का पहले से संबंध वतलाकर बादशाह की बात टालदी और उस समय यह समझ लिया कि इनका वादशाह पर बहुत प्रभाव है और बहुत अहसान है इस कारण इनका नाम सुनते ही बादशाह कुछ न कहैगा ।

ये टाड साहब के मत से तथा बूँदी के इतिहास के मत से आमेर (जयपुर) वालों और बूँदी वालों के आपस में मन मुटाव के कारण है किन्तु टाड साहब ने इस लडाई का जो एक और कारण दिया है वह इन सब से प्रबल

है और उससे मालूम होता है कि इसी लालच से जयसिंह जीने बूँदी के राज्य का सर्व नाश करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। वह कहते हैं कि:—

"जयसिंह जी ने जब बुधसिंह जी को निकाल कर बूँदी की कोठरी इन्द्र-गढ के महाराजा को बूँदी नरेश बनाना चाहा तब वहां के नेक (?) देवसिंह जी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। ऐसा होनेपर उन्होंने करवर के जागीर दार सालिम सिंह जी को जो इन दिनों बूँदी के किलेदार थे, बहकाया-इनके आपस में इस तरह का घरेलू झगडा था किन्तु इसका **भीतरी रहस्य** और है। बात यह है कि मालवा, अजमेर और आगरे के सूबेदार बनकर जयसिंह जी अपने आसपास के राजाओं का दमन करना चाहते थे, मुगलों की घरेलू लडाइयों से भी उन्होंने बहुत कुछ लाभ उठाया था और फर्रुखसियर का राज्य जाता रहने से उन्हें अपना मतलब गांठने का अवसर अच्छा मिलगया था इसलिये उन्होंने आमेर आकर अपना दबदबा बढाना आरंभ किया। उन दिनों आमेर का राज्य बहुत छोटा था। उन के जागी-रदार उनसे फिराऊ होगये थे। इस कारण आमेर राज्य की सीमा के पास के परगने छीनकर उन्होंने उन्हें अपनी नौकरी के लिये विवश करने का प्रपंच रचा। लालसोट, गुंढा, नीमराना, राजोर और बयाना के ठिकाने उनसे बहककर नष्ट भ्रष्ट होरहे थे इसलिये उनसे दबगये। बस इसीपर उन्हें हौसिला होगया कि हाडा भी दबाव में आकर हमारे अधीन होजायंगे। उन्होंने इसी कारण से बुधसिंह जी को **गद्दीसे उतारकर** अपनी पसंद के किसी जागी-रदार को यहां का राजा बनाना चाहा।"

टाड साहब के लेखका यह सार है। इससे स्पष्ट होता है कि घरेलू झगडे को आडमें लेकर अपनी **कपट वृत्ति** के निर्वाह करने का **जयसिंह** जीने प्रपंच रचा था। यह जयपुर को बसाने वाले वही जयसिंह जी हैं जो बडे धर्मनिष्ठ, बडे पंडित, बडे प्रजापालक और बडे नामी होगये हैं परंतु समय कहलाता है कि जिसमें ऐसे २ गुण होते हैं वे राज्य प्रपच के समय इन बातों को भूल कर और के और हो जाते हैं। टाड साहब आगे चलकर फिर कहते हैं कि:—

"हाडाराव उन दिनों आमेर में रहकर **पहुनई** का आनंद लूट रहे थे। उन्हें खबर नहीं थी कि उनके लिये उन्हीं के नातेदार किस तरह का प्रपंच रच रहे हैं। अंत में जयसिंह जी ने बुधसिंह जी से कहदिया कि आप सदा आमेर ही में रहकर पांचसौ रुपया नित्य अपने खर्च के लिये हम से लिये जाओ।" बुधसिंहजी कदाचित् इस रहस्य को न समझ सके परन्तु उनके चाचा जैतसिंह जी के भाई ने इसका भांडा फोड दिया। उन्होंने बूँदी को पत्र लिखकर बेगूं वाली रानी जी को उनके पीहर भेजने का प्रवन्ध किया। वह चुपचाप समस्त हाडाओं को आमेर के कोट के बाहर निकाल लेगये और तब उन्होंने बुधसिंह जी को खबर दी। उनकी नेक सलाह को शिरपर चढाकर बुधसिंहजी बूँदी को चलदिये। "इस तरह वह अपने २०० बीर हाडाओं को लेकर आमेर से चले आये परंतु पांचोलास में बूँदी की सीमा के निकट जयपुर के पांच उमरावों ने इन्हें घेर लिया। राजपूतों का राजपूतों से घमासान युद्ध हुआ आमेर के पांचों उमराव काम आये। ईसरदा, सरवाड (सेवाड) और भुवार (?) में इनकी जो छत्रियां हैं वे हाडा वीरों के पराक्रम की अबतक गवाही देरही हैं। चाचा जी इस लडाई में मरकर वीरगति को प्राप्त हुए और अब बुधसिंह जी की सेना इतनी कम रहगई कि इन्हें बूँदी जाने के बदले अपनी ससुराल बेगूं (बेघूँ) जाना पडा। इस तरह अपने अनेक नामी २ सरदारों को खोकर जयसिंह जी ने जो बडी महंगी सफलता प्राप्त की थी उसी से उन्हें अपना मतलब गांठनेका अवसर मिला और उन्होंने बूँदी के कामदार, करवर के जागीर दार सालिमसिंह जी के लडके दलेलसिंह जी को अपनी लडकी देकर बूँदी का राव राजा बना दिया।" इस विषय में टाड साहब के लेख का जो सारांश ऊपर दिया गया है वह प्रायः बूँदी के इतिहास से मिलता जुलता है। इस तरह अवश्य ही मुहकमसिंहोत दलेल सिंहजी ने बूँदी का राज्य पाया परन्तु कोटे वाले भी अपना मतलब गांठने से बाज न आये। उन्होंने बूँदी की कोठरियों को छोडकर बूँदी और कोटे के बीच में चंबल नदी तक अपनी सीमा बनाली। अब स्वामिविद्रोह करके और अपनी कुलपरंपरा को लात मारकर सालिम सिंह जी तो आमेर के चेले बन ही चुके थे उन्होंने भी बुधसिंह जी का सामना किया। बुधसिंह जी की असावधानी से उनकी सेना सालिम सिंह जी में

जा मिली थी इस कारण उन्हें **हार कर बेगूं जाना पड़ा**। और जयसिंह जी ने स्वयं बूँदी आकर संवत १७८७ में **दलेल सिंह जी को बूँदी का** राजा बना दिया। बना अवश्य दिया परन्तु २८ गांव बूँदी के लेकर अपने उमरावों को बांट दिये।

अध्याय ४.

बूँदी छूटगई।

उस समय दिल्ली के सिंहासन की बडी दुर्दशा थी। जिस सिंहासन पर बैठकर अकबर और शाहजहां जैसे बादशाह पचासों वर्ष तक शांति के साथ एक छत्र राज्य करने में समर्थ हुए थे उसी पर भांड की पगडीकी तरह दिन भरमें कई उतरते और कई चढते थे। कविराजा सूर्यमल्ल जी ने लिखा है कि दिल्ली के सिंहासन पर इस अवसर में **छः वर्ष में छः बादशाह** हुए। औरंगजेब के पुत्र शाहआलम बहादुर शाह के मरने पर फर्रुखसियर, उसे मार कर रफीउद्दौला, इस के मरने पर और, और के मरने पर और फिर शाहआलम का नाती, फिर शाह मुहम्मद। निदान उस समय दिल्ली की बादशाही डूब गई थी। **देश में बिलकुल अराजकता फैलगई** थी। "जिसकी लाठी उस की भैंस" वाली कहावत उस समय चरितार्थ होती थी। प्रजा लुट रही थी। वह गाजर मूली की तरह काटी जाती थी। स्त्रियों के सतीत्व भंग किये जाते थे और अनाथ अबलायें, अबोध, निःसहाय बालक पकड २ कर लौंडी गुलाम बनाये जाते थे। तेली तंबोली, धुने, जुलाहे—जिसके शरीर में बल हुआ, जिसे कुछ थोडासा भी साहस हुआ, जो सेना के लिये कुछ भी आदमी बटोर सका वही राजा बन बैठता था। ऐसे समय में जब दिल्ली के साम्राज्य का सत्यानाश हुआ तब असावधानी से बुधसिंह जी भी अपना राज्य खो बैठे तो आश्चर्य क्या है? यूरोप के इतिहास में परम प्रतापी नेपोलियन बोना पार्टी एक समय यूरोप भरको कंपाकर अंतमें अंग्रेजों की कैद में मरने पर भी वीरों की तरह पूजा जाता है। जो कारण ऊपर लिखे गये हैं वे ऐसे प्रबल हैं कि उन्हें

देखते हुए बुधसिंह जी के चित्त भ्रम होने का यदि विचार किया जाय तो उन्हें राज्य खोने का सर्वांश में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है । टाड साहब की भी यही राय है । वह कहते हैं कि "बुधसिंह जी ने अपना राज्य पाने का कई बार प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हो सके" । कुछ भी हो परन्तु बूँदी के इतिहास इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि उनकी जिस रानी ने उन्हें राज्य से उखाड देने का आमेर में :कारण : उपस्थित किया था वह अंत में एक बार उनकी सहायक हुई । रानी कछवाही जी ने पति का राज्य फिर स्थापित होने के लिये छः लाख रुपये देकर मलहार राव होलकर को बूँदी पर चढाया । उन दिनों जयसिंह जी और दलेल सिंह जी जयपुर में थे । मरहठों की सेना ने यह अच्छा अवसर समझ कर बूँदी घेरली और बुधसिंह जी का इस तरह एक वार फिर अधिकार होगया परन्तु राज्य से विरक्त, अनेक शोकों के कारण चित्तभ्रम बुधसिंह जी राज्य को न संभाल सके और जयसिंह जी ने फिर दलेलसिंह जी को बूँदी दिलवादी । जयसिंह जी ने अपने कलुषित मनका केवल इस तरह हीं परिचय न दिया बरन राना जी पर दबाब डाल कर बुधसिंह जी को बेगूं में भी सुख से नहीं रहने दिया । बेगूं वाले राना जी के अधीन थे इस लिये उनकी जागीर खालसे करने का प्रपंच रचा गया । इस तरह बेगूं से तीन कोस पर बाघपुर गांव में वैशाख कृष्ण ३ संवत् १७९६ को इनका **स्वर्गवास** हुआ ।

यद्यपि यह पहले बडी २ वीरता दिखला कर, वादशाह बहादुरशाहको साम्राज्य दिलाने का नाम पाकर पीछे से बडे २ कष्ट सहते हुए स्वर्ग को सिधारे, अवश्य ही इनके शासन में बूँदी का राज्य हाडाओं के हाथ से छूट गया था परन्तु ईश्वर को बूँदी में इनके वंश का राज्य रखना इष्ट था इस लिये आषाढ कृष्णा ३० को संवत् १७८६ में बेगूं वाली रानी साहिबा के गर्भ से महाराव राजा **श्री उम्मेदसिंह जी का जन्म हुआ** । इनका जन्म जयपुर में हुआ था । जिस समय बुधसिंह जी जयपुर में थे इनकी माता भी उनके साथ थीं । यही इस चरित्र के नायक हैं, और यही बूँदी राज्य के उद्धार करने वाले होगये हैं । अगले अध्यायों में इन्हींका चरित्र लिखने का यत्न किया जायगा । अभी तक जो कुछ लिखा गया है वह प्रसंगोपात्त लिखा गया है । इनके वंश का दिग्दर्शन कराने के लिये लिखा गया है ।

तृतीय खण्ड ।

बूँदीका उद्धार ।



अध्याय १.

जन्म से तेरह वर्ष ।

जिस समय महाराव राजा उम्मेद सिंह जी का जन्म हुआ इन के पिता का राज्य छूट गया था, नगर छूट गया था, घर छूट गया था और भाई बंधु सगे संबंधी छूट गये थे । एक बडे राज्य के स्वामी होने पर भी उनका कुटुम्ब एक दीनातिदीन की तरह मेवाड राज्य के अधीन बेगूं के ठिकाने के आश्रय से अपने घटते दिन पूरे कर रहा था । पिता फिर राज्य पाने, फिर छूट जाने और फिर राज्य पाने के चक्कर में पडकर नन्नानवैं के फेर में पडे हुए विपत्ति सागर में डूब रहे थे । न पास सेना थी, न हाथी थे और न उतने सेवक ही थे जो एक राजाधिराज के सुखकी सामग्री में अपेक्षित होते हैं । उस समय जयपुर जैसे बडे राज्य के स्वामी जयसिंह जी से शत्रुता होजाने के कारण आदमी २ इनका शत्रु बनगया था । जयसिंह जी से डरकर लोग इनकी सहायता करने में घबडाते थे । इनसे मिलने भेटने में घबडाते थे और इन्हें आश्रय देने में घबडाते थे । और तो क्या इनका मनही, इनकी बुद्धिही इनसे दुश्मनी साधकर इन्हें अधिक २ विपत्ति में डाल़ने के लिये गोते दे रही थीं । ऐसे समय में यदि इनके पुत्र का लालन पालन ठीक २ राजकुमारों की तरह न हुआ हो तो आश्चर्य ही क्या है ? परंतु अहा ! काल की गति भी कैसी विचित्र है । जो आज राजा है कल दरिद्री, जो आज धनी है कल रंक बन जाता है। ये सब कर्म के फेर हैं । इस पर शास्त्रकारों ने ठीक कहा है:-

"ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्मांडभाण्डोदरे, विष्णुर्येन दशावतार-गहने क्षिप्तः सदा संकटे; रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,

सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्म्मणे । " महाराव राजा उम्मेद सिंहजी के **बालवय** की कथा मुगल बादशाह **अकबर** के बाल चरित्र से मिलती है । बादशाह हुमायूँ का राज्य छूट जाने से उसने बालपन में जैसे कष्ट उठाये थे वैसे ही कष्टों का इन्हें सामना करना पडा था । उस समय पद भ्रष्ट हुमायूं की जैसी दुर्दशा थी वैसी ही राज्य भ्रष्ट बुधसिंह जी की थी इस लिये अंत में अकबर का उत्कर्ष देखकर कहना पडता है कि महारावराजा उम्मेद सिंहजी ने असाधारण प्रतिभा से असाधारण काम करके गया हुआ **राज्य पाने** के लिये ही ऐसे **घोर संकट** सहे । अकबर का चरित्र याद करके इनकी वीरप्रसू माता अवश्य मन में ढाढेंस देते हुए कहती होंगी कि:—

"आज हम लोग दु:ख के समुद्र में डूब रहे हैं तो क्या चिन्ता है ? जिस दिन मेरा लाल बडा होगा हम इस अथाह सागर को अवश्य पार करेंगे ।"

इस आशा से **मातृस्नेह** अवश्य घोर दु:ख के समय भी, कष्टों की ज्वाला शांत करने के लिये **अमृत वर्षा** करता होगा । इसी आशा से उम्मेद सिंहजी का परम संकट के समय और विकट विपत्ति के समय लालन पालन हुआ । यद्यपि माता चूंडावतजी पांडवों के वनवास के समय द्रौपदी की तरह घोर संकट सहने पर भी पति की छत्र छाया में, पुत्र का मुख देख कर अपने पहाड के बराबर कष्टों को रजकण के समान समझ ती थी परंतु **विपत्ति पर विपत्ति** पडना संसार का नियम है । जैसे सोने का मूल्य बढाने के लिये, उसे निर्मल करने के लिये वारंवार तपाकर लाल किया जाता है वैसे ही माता चूंडावत जी के लाल को भगवान ने सच्चा लाल करने के लिये केवल १० ही वर्ष की उमर में, उस उमर में जिसमें आजकल के लडके अच्छी तरह धोती बांधना भी नहीं जानते हैं **पितृसुख से वंचित** कर दिया । पितृहीन बालक की विधवा माता के लिये प्राणनाथ के उठ जाने से अब केवल दो कुमार ही जीवनाधार थे । वीर जननी सच्ची क्षत्राणी ने इन से देश का उद्धार और अपने **कुल का उद्धार** कराने के लिये ही आजीवन **सतीत्व** की रक्षा करते हुए विधवा धर्म पालन करते हुए **प्राण धारण** किया । यदि उनके पुत्र युवा होते, राज्य के स्वामी होते, विपत्ति

सागर में डूबते उतराते न होते तो निश्चय ही सती चूंडावत जी पति की चितामें अपना **शरीर होम कर** उनके साथ ही स्वर्ग को प्रयाण करतीं परंतु उन्हें हाडा वंश का और बूँदी राज्य का उद्धार करना इष्ट था इसलिये उनके अंतःकरण ने पति वियोग के घोर संकट के समय, अपना सच्चा छत्र टूट जाने के समय भी ढाढस देकर, मन को वज्र की तरह कठोर करके कह दियाः—

"प्राणनाथ ! यदि आप मुझ अभागिनी अबला को इस विपत्ति सागर में डूबते हुए छोड जाते हैं तो जाइये। स्वर्ग में जाकर सुख से वहां के आनंद का अनुभव कीजिये। जो काम आपसे नहीं बनपडा है उसे आपके ही दूसरे शरीर से करवा कर मैं भी आती हूँ। आप के कर्तव्य का पालन कराके मैं फिर आपके दर्शन करूंगी, आपके चरणों में लोटूँगी।"

माता ने पति के कर्तव्यों का पुत्र से पालन कराने के लिये शरीर धारण किया और प्यारे पाठक महाराव राजा उम्मेद सिंह जी के चरित्र में जो कुछ बातें पावेंगे वे सब, सच पूंछो तो **माता ही की बदौलत** हैं।

अवश्य ही पिता के देहान्त होने के समय उम्मेद सिंह जी के पास जब राज्य के नाम से एक इंच भी धरती नहीं थी फिर राज्याभिषेक क्या ? परंतु धर्म के अनुसार हिन्दुओं की चालने—भविष्य में राज्य के अधिकारी होने की आशा ने राज प्रासाद के बदले पर्णकुटियों में, राज्य के आडंबर और महोत्सव के बदले इने गिने आदमियों में १० वर्ष के बालक उम्मेद सिंह जी का वैशाख शुक्ला १३ (सर्व सिद्धा त्रयोदशी) को संवत् १७९६ में राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक हुआ और कुल परंपरा के अनुसार, स्वधर्म के अनुसार ब्राह्मणों का, चारणों का और स्वामिभक्त सेवकों का सत्कार हुआ। पिता के समय के बैर को भूलकर, वंश के रक्त के जोश खाने से कोटे के महाराव दुर्जनशल्य जी ने टीके का दस्तूर भी भेजा परन्तु इन्हें कुलगुरु के विना मंत्रदीक्षा कौन दे ? कोटे के महाराव जी ने इस समय पुराने बैर को कुलागत स्नेह में बदल दिया था इसलिये महाराव राजा उम्मेदसिंह जी के कुलगुरु **वल्लभ संप्रदायके** आचार्य गोस्वामी

गोपीनाथ जी के लिये कोटे से आने में किसी तरह की बाधा न थी परंतु किस के धड पर दो माथे हैं जो राज्य से निकाले हुए, पितृ हीन, सहाय हीन और वनवासी बालक को दीक्षा देने के लिये कोटे से वेगूं जाकर प्रतापी महाराज जयसिंह जी जैसे राजा से और बूँदी के दलेलसिंह जी से वैर वसावे, उन के कोपानल की आहुति बनै और वह भी किस आशा से? बस इस लिये गोस्वामी जी ने दीक्षा देने की साफ नाहीं करदी। उन्होंने कहला दिया कि:—

"आज कल चातुर्मास्य के दिन हैं इस लिये कोटा छोड कर कहीं न जाऊंगा।" इतना सुन कर राजमाता उदास हुई, अपने प्रारब्ध को दोष देने लगीं परंतु हताश न हुई। गुरु दीक्षा के विना कोई भी हिन्दू जब अपने को धर्म कार्य में योग्य नहीं समझता है तब राज माता अपने प्रिय पुत्र से इतने बडे कार्य का अनुष्ठान, मंत्रोपदेश बिना कैसे करा सकती थीं। उन्होंने अपने पुत्र पर कोटा नरेश का स्नेह जान उनके द्वारा **रामानुज संप्रदाय** के विद्वान् पंडित वेणीराम जी साठोदरा नागर को लिखवाया कि:—

"आप स्वयं पधार कर अथवा अपने पुत्र को भेज कर मेरे चिरंजीवी पुत्र का मंत्रोपदेश करो। आप हमारे कुलगुरु की तरह विषम दृष्टि नहीं है। आपके लिये राजा रंक बराबर हैं। मेरे पुत्र को भी अपने सेवकों में गिनिये। यह कल ही (शीघ्रही) शत्रुओं को मारकर बूँदी का राज्य लेगा। यदि न भी लिया तो जीवन पर्यन्त आपकी सेवा करैगा।"

इस पर समदर्शी वेणीराम जी को दया आई। उनके हृदय में शिष्य की विशुद्ध भक्ति देखकर सच्चे गुरु भाव का संचार हुआ। वे विद्वान् थे, महात्मा थे, हर्ष शोक और सुख दुःख को समान मानने वाले थे। वह जयसिंह जी के कोप और दलेलसिंह जी के आतंक से विलकुल न डरे। उन्होंने अपने वडे पुत्र गोविन्दराम जी को एक सहाय हीन, विपत्ति ग्रस्त किन्तु होनहार बालक को मंत्रदीक्षा देने के लिये वेगूं भेजा। तब ही से उनकी संतान वंश परंपरा से बूँदी नरेश की कुलगुरु होती चली आई है। यह

घराना बूँदी में बडा सम्मान भाजन माना जाता है। इनके वंशके लोगों में जो राजगुरु होते हैं वे **"भट्ट जी महाराज"** कहलाते हैं।

यद्यपि इस तरह इनकी मंत्र दीक्षा होगई परन्तु शिक्षा का क्या हुआ? जिसे दीर्घ जीवन में बडे २ काम करने थे, जिसे हाथी के पेट में से बूँदी निकाल कर वहां नया शासन स्थापित करना था उस की शिक्षा असाधारण होना चाहिये परन्तु यहाँ साधारण की भी सुविधा नहीं थी। न तो आज कलके कर्जनी "केडेटकोर" की तरह उस समय शस्त्र विद्या सिखाने का प्रबंध था और न विद्यादान के लिये सहसा कोई उत्तम गुरु ही उपलब्ध हो सकता था तो भी इन्होंने माता की प्रेरणा से माताही के निरीक्षण में **शिक्षा पाई**। अवश्य ही इन्हें स्वामिभक्त, राजभक्त शिक्षक भी मिले ही क्योंकि पांचों अंगुलियां एक सी नहीं होती हैं। जहां सौ बुरे हैं वहां संसार में पांच भले भी हैं परन्तु सच पूंछो तो माता चूंडावतजी ने पिता बन कर इनको सिखाया, पढाया। बूँदी के इतिहास लेखक "वंशभास्कर" के रचयिता कविकुल कमल दिवाकर कवि राजा सूर्य मल्लजी ने अपने ग्रंथ में इनकी शिक्षा का, इनकी दिनचर्या का अच्छा खाका खैंचा है। वह लिखते हैं कि:—

"वेगूं में अब बूँदीश घोडे की सवारी सीखते हैं, नीति सीखते हैं, धर्म सीखते हैं, तलवार बाजी में निपुण होते हैं, बंदूक चलाने में निपुण होतेहैं और बाण विद्या की शिक्षा पाते हैं। वह शस्त्र विद्या में अपने वित्त से अधिक अभ्यास कर रहे हैं और उन के मनकी उमंग अपनी सीमा को छोड कर ब्रह्मांड में भी नहीं समाती है। वह प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त में जागकर शौच स्नान से निवृत्त होनेके अनंतर संध्या वंदन करते हैं, गायत्री का १००० जप करते हैं, हरिनाम की माला फेरते हैं। शास्त्र की आज्ञा-नुसार वर्ष भरमें जितने व्रत होते हैं और जितने उपवास होते हैं उनमें से एक को भी नहीं छोडते हैं। उन्हें सदा सचाई से प्रेम है। न वह कभी मूढ खुशामदी गप्पियों का अपने पास फटकना पसंद करते हैं और न मद्यका संसर्ग ही उनके पास आने पाताहै। उन्हों ने इसे उठाकर वैष्णव धर्म बढाया

है । वह नित्य षोडशोपचार से भगवान् का पूजन करते हैं । वह पंच यज्ञ करते हैं । लघु भोजन करते हैं । समय २ पर शिकार खेलते हैं और महाभारत, स्मृतियां, भागवत और वेदादि शास्त्रों का मनन करते हैं । ''

समझे पाठक ! यह दश बारह वर्ष के बालक का हाल है । यह इन की शिक्षा का दिग्दर्शन है, किन्तु उनकी शिक्षा का सच्चा परिचय आगे के पृष्टों से मालूम होगा, क्योंकि आज कल के शिक्षितों की तरह उनके पास बी. ए. वा एम्. ए की सनद न थी जिससे उनकी योग्यता की जांच हो जाय ।

इस तरह से पितृहीन होने पर भी चाहे वह होनहार की आशा में अच्छी शिक्षा पा रहे थे परंतु दुष्टों से इनका इतना सा भी सुख न देखा गया । चाहे इनके सद्गुणों को देखकर बडे २ कर्मचारी, बडे २ शूरवीर उन के पास आकर बिना दाम के नोकर बन गये थे परंतु इनके उत्कर्ष की आशा दौलतसिंह हरदावत से न देखी गई । उस ने इन के लघु भ्राता दीपसिंह जी को बहंका कर **भाई २ में कलह** पैदा कर दिया । माता ने इस दुष्ट को निकाला और फिर कभी इन में खटपट न होने पावै इस लिये छोटे पुत्र को रानाजी के पास रखना चाहा परंतु सदा के वैरी से विपत्ति के समय सहायता की आशा करना और आकाश से दूध दुहना बराबर है । फल कुछ न हुआ । कुछ क्या इसका विपरीत हुआ । जयपुर नरेश जयसिंह जी जैसे कलुषित हृदय को बुधसिंह जी के स्वर्ग पधार जाने पर भी उन के दो बालक कांटे की तरह चुभते थे । वह कदाचित् समझते होंगे कि होनहार उम्मेदसिंह जी जब बडे होंगे तब कदापि अपने पिता का बदला लेने से न चूकेंगें क्योंकि वह भी राजपूत थे । वह जानते थे कि " पिताका बदला " बनिये के धन की तरह राजपूतों में संतान को धरोहर में, विरासत में मिलता है । राजपूत "पिता के बदले को" गया श्राद्ध की बराबर समझता है । इस कारण उन्हों ने राना जी पर दबाव डाल कर इन्हें **बेगूंसे निकलावा दिया** लाचार इन्हें **कोटे आना** पडा । वहां आये अवश्य परंतु "किस की माने सेर सोंठ खाई है " जो इन की खुला खुली रक्षा कर के जयपुर जैसे प्रबल राज्य से

बैर ठाने। बस इसी लिये महाराव दुर्जनशल्य जी ने इन्हें कोटे में न रखकर मधुकरगढ में निवास कराया।

"वंशभास्कर" में लिखा है कि व्यास दौलतरामजी के प्रयत्न से राना जी ने जब दीपसिंह जी को जागीर न दी तब उन के पुत्र प्रतापसिंह जी ने बलपूर्वक दिलवाई और उम्मेदसिंह जी के लिये घोडा शस्त्र और आभूषण भेजे, परंतु यह समझ में न आया कि जब दीपसिंह जी ने २९ हजार का पट्टा पालिया तब वह बडे भाई के साथ कोटे क्यों गये। परंतु सूर्यमल्ल जी ने ही आगे चलकर इस बात को खोल दिया है। उन के लेख से स्पष्ट होता है कि पिता जगत्सिंह जी ने पुत्र प्रतापसिंह जी की ढिठाई से चिढकर उन्हें कैद कर दिया था।

इस तरह १० वर्ष की उमर से १३ वर्ष की उमर तक उम्मेद सिंह जी ने कालयापन किया।

अध्याय २.

कार्यका आरंभ।

पहली जीत।

जिस समय महाराव राजा उम्मेदसिंह जी बेगूं में थे उनका **पहला विवाह गंगराट** पुर (गँगराड) राजा दलपति सिंह जी की कन्या चिम्मन कुंवरि जी से हुआ था। यह एक साधारण बात थी इसलिये इसका यदि यहां उल्लेख न किया जाता तो भी कुछ विशेष चिन्ता नहीं थी किन्तु बेगूं में एक ऐसी घटना होगई जिस से मालूम होता है कि केवल जयपुर की बदौलत बूँदी का राज्य ले बैठने वाले मुहकमसिंहोत हाडा दलेलसिंह जी कैसे क़ायर थे, कैसे क्रूर थे और सच पूछो तो कैसे हलके थे। मथुरा के राजा दैत्यराज कंस ने जिस तरह भगवान आनंद कंद श्रीकृष्णपर **कुवलयापीड** हाथी छोडा था उसी तरह उन्हों ने भी उम्मेदसिंह जी को पिसवा

देना चाहा । परंतु जो दशा वहां उस हाथी की हुई थी वही यहां हुई । उनकी आज्ञा से बूँदी का एक मतवाला हाथी बेगूं लाकर छोड दिया गया । उँनका इसमें उद्देश्य यही था कि बालक उम्मेद सिंह जी मस्त हाथी का तमाशा देखने जब आवैंगे तब सहज ही में मारडाले जायंगे। महाराज का इष्ट देव इस समय बडा सहायक हुआ और उस हाथी के साथ साथ आये हुए बूँदी के दो सरदार अपना मुंह बिगाड कर लौट गये। अवश्य ही इस तरह आगे इनके हाथ से बडे २ काम कराने के लिये भगवान ने इनके प्राण बचा लिये परंतु कुलकलंक दलेल सिंह जी तुम्हारा ओछापन संसार को मालूम होगया । दुनिया में रहकर शत्रुता होने से महात्माओं के सिवाय कोई नहीं बच सकता है परन्तु इस तरह निर्बल शत्रु को धोखा देना नीचता है, कायरता है और सच पूंछो तो वीर राजपूतों की रजपूती इसी में है कि वे पराक्रमी से भी पराक्रमी शत्रु को ललकार कर मारै । तुमने जैसे लालच से, बहंकावट से राज्य के असल अधिकारी का राज्य लेलेने में हाडा कुल की मर्यादा का भंग किया वैसे ही इस समय कहना पडता है कि ऐसी कायरता दिखाकर अपनी हंसी करवाई। खैर कुछ भी हो परन्तु इस कपट से उम्मेद सिंह जी **बाल बाल बच गये।**

मधुकरगढ में निवास करते समय अपने दुःख के दिन सुख के साथ काटते हुए भी उम्मेद सिंह जी ने अपना धीरज नहीं छोडा था, अपने क्षत्रियोचित कर्म नहीं छोडे थे और बूँदी लेने का विचार, बूँदी लेने का उद्योग नहीं छोडा था। वह तेरह वर्षके होने परभी पचीस वर्ष के युवा की तरह दिन रात इसी उधेड बुन में लगे रहते थे कि किस तरह हाथी का पेट फाड कर बूँदी निकालना चाहिये परन्तु न्योता बडे घर था। महाराज जयसिंह जी जैसे अनुभवी, पराक्रमी, राज्यलोलुप का सामना था। उन दिनों दिल्ली की बादशाहत बिलकुल डूब चुकी थी । मालवे की, अजमेर की और आगरेकी सूबेदारी इन्हीं के पास थी। केवल इतना ही क्यों जयपुरी जयसिंह जी का उस समय देश भर में दबदबा था। जब इन्द्रादिक देवताओं को दैत्यों के आतंक से बचने के लिये गिरि कंदराओं की शरण लेनी

पड़ी है तब यदि उम्मेदसिंहजी ने चार महीने इस तरह कोटे की शरण में काटे हों तो आश्चर्य क्याहै ? परन्तु भगवान दीन दयालु को इनकी दीनता पर दया आई । देश भर में अपना डंका बजा कर अपना राज्य बढाने के लालची, अनेक धर्मकार्यों से और जयपुर बसा कर अपना नाम अमर कर जाने वाले जयसिंह जी को घमंड होगया । अब उन्हों ने समझ लिया कि "संसारमें जो कुछ है वह मैं ही हूँ ।" भगवान को किसी का घमंड पसंद नहीं है । जो घमंड करता है वह एक न एक दिन अवश्य गिरता है वह भी गिरे और कवि राजा सूर्यमल्ल जी कहते हैं कि दुर्व्यसनो में पड कर गिरे। उन्होंने अब मद्यपान की मात्रा दिन दूनी और रात चौगुनी करदी। इस मद्य राक्षस ने बहुतों के घर घाले है, बहुतों को राजा से रंक बनादिया है । इसी तरह जयपुर की दुर्दशा हुई । यहां महाराज जयसिंह जी दिन रात शराब पीकर मस्त रहने से रमणी रमण के आसक्त हुए । इसी काम में आसक्त होनेसे उनके पास नई २ युवतियां, नया नया सामान और नई २ औषधियां उपस्थित होने लगीं । परंतु परिणाम इस प्रकार भोग विलास का बडा ही भयंकर हुआ । सूर्यमल्ल जी लिखते हैं कि:–

"इत कूरम नृप रोग विवश हुव देह विकसि कृमि पुंज परे ।
मास बहुत यह दु:ख सह्यो अरु गूद पलल तनु विकृत गरे ॥
इक अंगुल परिमित लंबे कृमि श्यामल पन सब देह धसे ।
त्वचलोहित पल मेदन खावत अस्थिन अंतर विविध बसे ॥
भस्म तल्प सोवत दुख भाजन नैक न पीडित नींद लहैं ।
जिमि विकसत तरबूज पक्यो इम विग्रह रंचन गाढ गहैं ॥
सुतहि मूत्र तथा मल मोचन निजकृत दुरितन चिंति करैं ।
अनुज विजय तिय मात सुतादिक मारिय ते सब दिठ्ठि परैं * ॥
इम अति कष्ट विकल कूरम नृप संचित अघ भर भूरि भज्यो ।
खख वसु शशि १८०० विक्रम शक इशगत विशद (आश्विन–
शुक्ला) चतुर्दशि देह तज्यो ।"

कवि राजा जी के शब्दों में जयसिंह जी की मृत्यु की दु:ख दायिनी कहानी लिखने के सिवाय मैं इस विषय में नहीं लिख सकता। मैं जयपुर के

* इस कथा का संबंध जयपुर के इतिहास से है । यहां लिखने की आवश्यकता नहीं

इतिहास से इस घटना की तुलना कर के इस विषय में निर्णय करने की भी आवश्यकता नहीं समझता क्योंकि जब उन बातों का इस चरित्र से संबंध नहीं है। जब यह घटना यहां प्रसंग आपडने पर लिखी गई है तब उसकी विशेष छान बीन करने से मुझे क्या मतलब। परंतु इतना अवश्य है कि जयपुर नरेश महाराज **जयसिंहजी का देहा**न्त होगया।

टाड साहब लिखते हैं कि–"जिस समय संवत् १९०० में अपने घराने के वैरी आमेर नरेश की मृत्यु हुई उम्मेद सिंहजी केवल तेरह वर्ष के थे। उन के कानों में ज्यों ही इस घटना की भनक पडी उन्हों ने अपने वीर हाडाओंको साथ लेकर **पाटन** और **गैंडोली** पर हमला किया और इन दोनो परगनों पर अपना **अधिकार** कर लिया। जब इस बात की कानों कान खबर प्राचीन हाडाओं तक पहुंची कि बुधसिंह जी के पुत्र अब जागृत हुए हैं सब के सब इकट्ठे हो २ कर उन के झंडे के नीचे आ खडे हुए और कोटे के दुर्जनशल्यजी ने हाडाओं का शुद्ध रक्त इस तरह उबला देखकर इनकी सहायता की।"

यद्यपि टाड साहब ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है परन्तु बूँदी के इतिहास से मालूम होता है कि महाराव दुर्जनशल्य जी ने महाराव राजा उम्मेदसिंह जी को जो सहायता दी थी वह **कोरी सहायता** थी। उन्होंने इन के चिर शत्रु जयसिंह जी को मरा जान उम्मेदसिंह जी को सहायता तो दी परंतु सेना की तैयारी के लिये **२ लाख रुपये** के आभूषण ले लिये। जेवर लेकर उन्हों ने इधर इनके लिये सेना सजाई और उधर वेनीराम नागर को जयपुर भेज कर जयसिंह जी के पुत्र महाराज ईश्वरी सिंह जी से कहलाया कि–"आप बूँदी उम्मेद सिंहजी को देकर कोटे पर अहसान कीजिये।" ईश्वरी सिंहजी भी पिता की तरह बूँदी का लालच न छोड सके। उन्हों ने उत्तर दिया कि "बूँदी अब हाथी के पेट में पहुंच चुकी। अब वह निकल नहीं सकती।" इसपर वेनीराम को क्रोध आगया। उन्हों ने जयपुर नरेश के आतंक का, उनकी शक्ति का और उन के राज्य वैभव का कुछ विचार न कर के निडर होकर कह दियाः–

"सिंह में इतनी शक्ति है कि वह हाथी का पेट फाड कर निकाल लेगा।" इतना कहकर वह चले आये। महाराज मुंह ताकते रह गये। वेनीरामजी के कोटे आते ही दुर्जनशल्य जी ने जोधपुर महाराज से सहायता मांगने के लिये सेनापति गोविन्दराम नागर को भेजा। परंतु एक वार जयपुर से मार खाये हुए जोधपुर वालोंका उम्मेद सिंहजी को सहायता देनेका साहस न हुआ। उन्हों ने जब गोविन्दराम जी को कोरा उत्तर देदिया तब इन्होंने उम्मेद-सिंहजी की ओर से **१ लाख रुपया** देना ठहराकर सूबेदार नव्वाब **फखरु-द्दौला** की सेना बूँदी पर चढवाई। उधर से इस तरह सेना की चढाई की खबर पाकर इधर से **कोटे** की सेना के साथ उम्मेदसिंहजी चढे। **शाहपुरे के राजा जी** भी इस काम में सहायक हुए। यद्यपि लडाई बहुत भारी हुई और दलेलसिंह जी के भागकर नेनवा के किले में जा घुसने से **बूँदी** में उम्मेद सिंह जी का **अधिकार** होगया परंतु समय बडा भयानक था। जिस नगर को इनके वडों ने रुच २ कर वसाया था, जिस किले को बनवाने में इन के पूर्वजों के परिश्रम की परिसीमा नहीं रही थी, जिसकी रक्षा के लिये अबतक असंख्य हाडाओंका रक्त पात हो चुका था, जहां के बालक, युवा, स्त्री, वृद्ध जी जान से उम्मेदसिंह जी को चाहते थे, जो बूँदी इन्हें प्राण से भी प्यारी थी उसी पर गोले बरसाकर, उसी की सेना को गाजर मूली की तरह काटकर अपना अधिकार जमाना पडा। इस घटना से यही सिद्ध होता है कि कुसंग में पडने से सज्जनों को भी कष्ट सहना पडता है। यदि बूँदी दलेल-सिंहजी के हाथ न पडती तो आज उसे ऐसा लोमहर्षण दृश्य—इतना घोर संकट क्यों देखना पडता। परंतु नहीं उस समय उम्मेदसिंह जी को अपनी प्यारी बूँदी पर चढाई कर के अपने प्रिय परिजनों पर अपने प्रिय प्रासाद पर गोले चलाने में बिलकुल भी आना कानी न करनी पडी। उन्हों ने सोचा कि गोह जैसे विषधर जंतुको नष्ट करने के लिये जब पीपल जैसा पेड जला देना पडता है, सर्पदंश से प्राण रक्षा करने के लिये जब अपने ही हाथ से राजपूत अपनी अंगुली काट डालते हैं और परिणाम में बालक की मर्म वेदना छुडाने के लिये जब माता स्वयं अपने प्राणप्रिय बालक का फोडा चीरते

समय का असह्य कष्ट सहलेती है फिर बूँद्री राज्य के, बूँदी की प्रजा के उपकार के लिये यदि हम उसपर गोले दागते हैं तो क्या चिन्ता है। उन्होंने गोले गोलियों के वार से बूँदी के किले को जर्जर कर दिया, उन्होंने कुलद्रोही दलेलसिंहजी के साथ देनेवाले हाडाओं की लाशों से, जयपुरियों की लाशों से जंगल के अनेक जंतुओं को तृप्त किया और उन्हों ने अपने कृपाण की तेज धारा से बूँदी के सैनिकों को इस तरह काट डाला मानो खेत में धान काटा जा रहा है। इस तरह उम्मेदसिंहजी ने **पहली ही बार** रणभूमि में **तलवार पकड** कर पहली ही बार **विजयश्री** लाभ करके अपने कार्य का श्रीगणेश किया।

जी जान से कट्टर शत्रु होने पर भी यद्यपि उम्मेदसिंह जी ऐसे न थे जो शस्त्रहीन, शक्तिहीन वैरी को मार डालते, उसे किसी तरह सताते परंतु बूँदी में इनका अधिकार होते २ ही दलेलसिंहजी ने प्राण भय से वहां से भाग कर नेनवां के किले की शरण ली। मार्ग में काटों से, पत्थरों से और कंकडों से उनकी स्त्रियों को जो कष्ट हुआ है वह अकथनीय है। उसे वही जान सकता है जो राजप्रासाद में सुख से कालयापन करते २ प्राण लेकर भागता है।

जिस समय बूँदी में इस तरह भयानक युद्ध की आग एका एक भभक उठी थी, जिस समय बूँदी को चारों ओर से उम्मेदसिंहजी ने उनके सहायकों ने घेर रक्खा था बूँदी के रक्षक सवाई ईश्वरीसिंहजी अपने महल में पडे २ युवतियों के रमण का आनंद नहीं लूटते थे। उन्हें इस आक्रमण की पहले से खबर लग चुकी थी। वह पहले ही जानते थे कि कोटे के बेनीरामजी नागर हाथी का पेट फाड़कर बूँदी निकालने वाला सिंह बनने का दावा कर गये हैं इसलिये उन्होंने दलेल सिंहजी की सहायता के लिये शिवदास खत्री को सेनाका सरदार बनाकर बडे ठाट के साथ सेना भेजी। भेजी अवश्य परंतु दलेल सिंह जी ने इकरार करके उस के भाई राजामल को दश हजार रुपये नहीं दिये थे। वह अपना वचन देकर चूक गये थे इस लिये उसने अपनी उस अधिकृत सेना से उनकी मदद देने का काम न किया। वह

उसी सेना को वरवाडे पर चढा ले गया जिसे ईश्वरीसिंह जी के पिता जयसिंह जी ने राजामल से छीन लिया था। वरवाडे के अधीश शिवसिंह राठोड का शिवदास से जैसा संग्राम हुआ उसके उल्लेख करने की यहां आवश्यकता नहीं है परंतु इसमें संदेह नहीं कि यदि दलेलसिंह जी अपने वचन को भंग करने का हलकापन न दिखलाते तो शिवदास की सेना आपहुंचने से उम्मेद सिंह जी को बूँदी लेने में कुछ कठिनता पडती।

खैर जो कुछ होना था सो होगया। बूँदी में पहली बार उम्मेदसिंह जी का डंका बजने लगा और इसतरह यहां की राजभक्त प्रजा को आशा हुई कि अब हमारा सच्चा स्वामी हमारे दुःख दूर करके हमें सदा की शांति का सुख प्रदान करैगा परन्तु इस समय प्रजाका सुख अधिक काल तक न टिकने पाया। बूँदी का राज्य लेने में सहायता देकर कोटे वाले **दुर्जनशल्य जी लोभमें** फंसे। बडे लोग ठीक कह गये हैं कि "लालच बुरी बला है।" बस यह भी इसी बलाके शिकार बन गये, अब इन्होंने न सोचा कि हमने बूँदी नरेश की सहायता करने में जो आयास उठाया है, हमने जिस कामके लिये जयपुर जैसे बलाढ्य राज्य से बैर बिसाया है और हमने जिस तरह उम्मेदसिंह जी का साथ देकर कुटुंब वात्सल्य दिखलाया है उस पर एक दम पानी फिर जायगा। ये बातें एक साथ ही धूल में मिलजायँगी। परंतु स्वार्थी पुरुष दोष को नहीं देखता है। बस इसी तरह उन्होंने इन बातों पर कुछ ध्यान न दिया। उन्होंने इन्हींके २ लाख रुपये से सेना सजाई थी, इस कारण सहायता के काम में नाम पाने के सिवाय उनकी एक पाई भी खर्च नहीं हुई थी परन्तु अहसान के बोझे से दबे हुए उम्मेद सिंह जी से कहा कि:—

"इस लडाई से हमारा सेनापति गोविन्दराम मारागया है, इस युद्ध में हमारा लाखों रुपया खर्च हुआ है और आपसे बूँदी जयपुर वालों के आगे दबैगी भी नहीं इस कारण केवल लोयचे के परगने पर अपना निर्वाह कीजिये।"

यह कहकर लालची दुर्जनशल्य जी ने उम्मेद सिंह जीके पसीना झार

परिश्रम से इनके शरीर का रक्त पात करने बाद लिये हुए राज्य में अपना अधिकार जमा लिया। यदि वह इतना ही अन्याय करते तो उपकार के बोझे से दबकर उम्मेद सिंह जी कदाचित् इसे सहन भी कर सकते थे परंतु उन्होंने इनकी प्यारी प्रजा को लूटा, इनके प्रिय परिवार, प्रिय परिजन का धन हरण किया, राज्य की, राजप्रासाद की नामी २ वस्तुऐं लेलीं और इसतरह इस बार उम्मेद सिंह जी का सब **परिश्रम व्यर्थ गया।** इस विषय में दुर्जनशल्य जी की दुर्जनता यहां तक बढ कर थी कि शाहपुरे के राजा जी से, जो केवल उम्मेद सिंह जी की प्रीति के कारण सहायता देने को आये थे, सहन न होसकी। उन्होंने दुर्जनशल्य जी से स्पष्ट कह दिया कि:—

"तुम बडे निर्लज्ज हो। तुम नीति, धर्म का त्याग करके स्नेह पर लात मार कर पराई थाली तकते हो। हमने समझा था कि तुम उम्मेदसिंह जी के ऊपर अपनी छत्र छाया रक्खोगे इसीलिये हम आयेथे।"

वह इतना कहकर चले गये। केवल वह ही न गये महाराव राजा उम्मेदसिंह जी भी **जोधपुर** नरेश अभय सिंह जी के **पास गये**। निज पराक्रम का हौसला रखकर बूँदी चाहने वाले उम्मेद सिंह जी से राज्य-लोलुप दुर्जनशल्य जी की ऐसी दुर्जनता कैसे सहन होसकती थी। अब उन्हें कोटे की सहायता लेकर संकोच हुआ, अपना जेवर नष्ट करके दुःख हुआ और कोटा नरेश की ऐसी स्वार्थपरता पर घृणा हुई। यदि कोटे ने उन पर इतना उपकार न किया होता तो वह कदाचित उसी समय दुर्जनशल्य जी को मजा चखा देते क्योंकि वह लडाई के समय इनके साथ थे वैसे ही इस कुकर्म के समय भी बूँदी में ही थे। वह दुर्जनशल्य जी पर इसलिये घृणा करके गये कि अब "पराये भरोसे बूँदी लेने का उद्योग न करैंगे। जब लैंगे जब अपने भुज बलसे लैंगे" क्योंकि राजपूत जाति तलवार का घाव सहसकती है परन्तु अपात्र का अहसान नहीं सहस-कती। दुर्जनशल्य जी ने अपने इस तरह के बर्ताव से सिद्ध करदिया कि वह एक वीर हाडा पर उपकार करने की योग्यता नहीं रखते हैं। सच्चा उपारक

नहीं है जिसे करके उपकारक, उपकृत से कुछ बदला न ले। उसे कभी स्वप्न में भी जतलावे नहीं कि मैंने उपकार किया है। वही सच्चा उपकारी है जो उपकार करके संकुचित होता है। दुर्जनशल्य जी जैसे स्वार्थ लोलुप उपकारी नहीं कहला सकते।

अध्याय ३.



माता का देहान्त।

इस तरह जयपुर नरेश के पादसेवी, उनके हाथ की गुडिया दलेलसिंह जी से बूँदी छूटगई, महाराव राजा उम्मेद सिंह जी कोटे की स्वार्थ परायणता देखकर स्वयं चले गये और दाल भात में मूसलचंद बनकर राज्यलोलुप दुर्जन शल्यजी ने बूँदी ले ली परंतु वह भी इसे बहुत समय तक अपने अधिकार में न रख सके। इस बीचमें राना जगत सिंह जी ने जयपुर पर क्यों चढाई की, मरहटों को एक करोड रुपया देकर उनकी सहायता से कैसे राना जी से जयपुर ने अपना पिंड छुडाया, मरहटोंके घेरे में पडकर राना जी को कैसे २ कष्ट उठाने पडे सो कहने की यहां आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन बातों का इस चरित्र से कोई संबंध नहीं परंतु यहां इतना लिखे विना काम नहीं चलैगा कि जयपुर से लडने में कोटेवाले महाराव दुर्जनशल्य जी रानाजी के सहायक थे इस कारण मरहटों की सेना ने जयपुर से लौटते हुए **कोटे आकर उसे खूब लूटा**। इस काम में जयपुर वाले ईश्वरीसिंह जी संयुक्त थे। उन्हीं की प्रेरणासे मरहटों ने कोटे पर चढाई की थी और उन्हीं की आज्ञासे भगेडू दलेलसिंहजी कोटे पर चढे थे। दोनों ने मिलकर कोटे वालों को खूब ठोका, खूब ही राज्य लूटा और खूबही बूँदी वाले उम्मेद सिंह जी के साथ लालच करने का मजा चखाया। लडाई खूब ही घमासान हुई। लाशों पर लाशें पडकर ढेर का ढेर लग गया। रक्त पनाले की तरह बहने लगा। घोडों की टापों से धूल ने उडकर सूर्य को ढांक लिया। इस तरह जब आकाश में बादल सा दि-

खाई देने लगा तब तलवारों की चमक बिजली का काम देने लगी। रणभूमि में कहीं " मारो ! मारो !! " और कहीं "मरा रे ! मरा !! " का शब्द, कहीं तोपों की गरज और कहीं बंदूकों की दनादन, कहीं बीरों का हुंकार, कहीं हाथियों की चिंघाड और कहीं घोडों की हिनहिनाहट के शब्द ने मिलकर बादल की गरज का समा दिखला दिया। घायल वीरों के लोहूसे जो बूँदें पडती थीं वे मानो रक्त की वर्षा थीं। इस संग्राम में मांसलोलुप पशु पक्षियों की खूब ही बन आई। उन्होंने बरसों की—महीनों की भूख थोडे ही समय में मिटाई। मरहटों के सरदार रानाजी सेंधिया का लडका जयाजी इस लडाई में मारा गया। इसपर सरदार बहुत क्रुध हुआ। उसने ईश्वरी सिंहजी को डांटा डपटा और इसकारण दलेल सिंह जीको लाचार होकर कापरैन पांच गांवों सहित इनकी भेट करना पडा। इस लडाई में अंत में कोटे की भारी हार हुई। कोटे से ईश्वरी सिंह जी ने और मरहटों ने मिलकर १६ लाख रुपया दंड लिया और चार लाख रुपया वार्षिक लेना ठहराया। यह घटना संवत् १८०२ की है। उसी समय मरहटों ने दलेल सिंह जी से पाटन का परगना लेकर होलकर, सैंधिया और श्रीमंत इसतरह तीन भागों में उसे बांटलिया। बूँदी के शेष परगनों पर और राजधानी बूँदी पर फिर दलेल सींह जी का अधिकार कराकर ईश्वरी सिंह जी जयपुर गये और मरहटे अपने देशको चले गये। इसतरह कोटे के **दुर्जनशल्यजी** को उम्मेद सिंह जीके साथ बुरा बर्ताव करने का अच्छा फल मिलगया। बूँदी लेने से उन्हें जो घमंड होगया था वह रेतीले पत्थकी तरह चकना चूर होकर मिट्टी में मिलगया।

जिन दिनों में कोटा इस प्रकारके घोर संकट में पड रहा था और जिस समय विपत्ति सागर में पडकर कभी डूबता और कभी उतराता था महाराव राजा उम्मेद सिंह जी को एक और ही विपत्ति का सामना करना पडा। वह महाराव दुर्जन शल्य जी से घृणा कर अजमेर चले गये थे। उनकी पितृसमान माता और उनके लघु भ्राता कोटे में पडे २ दिन काट रहे थे। जिन दिनों कोटे में युद्धका घमसान मच रहा था, अचानक

अपने बडे पुत्र की अनुपस्थिति में माता चूंडावत जी का देहान्त हो गया । अवश्य ही बडे पुत्र न सही तो छोटे पुत्र ही ने उनका शास्त्र से सारा संस्कार कर दिया परंतु महाराव राजा उम्मेद सिंह जी के इस समय दुःख का क्या कहना है । केवल दश वर्ष के बालक उम्मेद सिंह जी का लालन पालन करके जिस वीरप्रसू माता ने पिता के समान शिक्षा, रक्षा की थी, जो पिता की उपस्थिति में और अनुपस्थिति में पिता बनकर धर्म में, राजनीति में, लोक व्यवहार में और शस्त्र विद्या में उन्हें चतुर पंडित और दृढ बनाने में समर्थ होसकी थी, जो पति का कर्तव्य पुत्र से पालन कराकर खोई हुई कीर्ति, खोया हुआ राज्य पुत्रको दिलाने के लिये जीवित रहकर पति की चितामें अपना शरीर होमकर पति के साथ स्वर्गारोहण करने के महत्पुण्य से वंचित रही थी वही माता, वीर पुरुषों को, अपने पराक्रम से बडे २ राज्यों के दांत खट्टे कर डालने वाले उम्मेद सिंहजी को गर्भ में धारण करने वाली माता अब संसार में न रही । इससे बढकर इन्हें कौन सा दुःख हो सकता है । हाय ! आज माता नहीं है और वह भी किस समय छोड कर स्वर्ग में पति से मिलने चली गई जब उम्मेद सिंहजी परम पराक्रम दिखाने पर भी, सफल होने पर भी सुफल नहीं हो सके थे । माता गई और पुत्रसे उसका कर्तव्य पालन कराने से पहले ही, पुत्र को बूँदीके सिंहासन पर आसीन देखने से पहले ही चली गई । पुत्र को कर्तव्य दक्ष देखकर, बूँदी के पहले युद्ध में इन की असाधारण वीरता देखकर मानो पति के पास स्वर्ग में यह खबर करने को दौड गई कि—"अब आपका पुत्र आपके छूटे हुए राज्य लेने में जब समर्थ होगया है, जब वह आपके कर्तव्य पालन की शक्ति रखता है तब मुझे संसार में रहकर आपका वियोग सहने से क्या मतलब है ? बस इसी लिये मैं चली आई ।" कुछ भी हो परन्तु इनकी माता का देहान्त ऐसे समय में हुआ जब यह उनके अंत समय में उनकी बीमारी में सेवा करने के लिये मातृचरणों में उपस्थित न थे । मातृ वियोग का इन्हें जितना कष्ट था उससे भी बढकर इन्हें इस बातका दुःख था कि यह उनके स्वर्ग सिधारने के समय उनकी सेवा में

उपस्थित न थे । कच्ची उमर में, राज्यहीन उम्मेदसिंह जी यद्यपि निराधार रहगये थे, यद्यपि अपनी शक्ति, अपने पराक्रम, अपनी तलवार और अपनी बुद्धि के सिवाय, ईश्वर जगदाधार भक्तवत्सल के सिवाय उन्हें अब कहीं से सहारा न था, यद्यपि अब होनहार दुःखों की व्याकुलता के समय धीरज दिलाने वाली, साहस बढाकर राज्य पाने के उद्योग में प्रवृत्त करनेवाली माता नहीं रही थी परंतु यह इष्टदेव का भरोसा करके बिलकुल विचलित नहीं हुए । इन्हों ने पुष्कर जी में माता की और्द्ध्वदैहिक क्रिया की—उनका श्राद्ध किया । इस समय खर्च की तंगी भी कम न थी, अपने शरीर का दो लाख रुपये का जेवर कोटानरेश दुर्जनशल्यजी की दुर्जनतासे खो चुके थे । ऐसी अवस्था में, ऐसे कष्ट में भी इनका **नियम दृढ रहा,** जो शूर हाडा प्राणों की बाजी लगाकर इनके साथ थे पहले उन्हें खिलाकर आप भोजन करते, जो कुछ उनके खाने में आता उसे ही आप खाते । इस समय खाने पीने में राजा प्रजा का, स्वामी सेवक का भेद न था । बस यही कारण था कि जिस तरह कुंभला जाने पर भी सुगंधित पुष्पको भ्रमर नहीं छोडते हैं उसी तरह विपत्तिग्रस्त उम्मेदसिंह जी के सद्गुणों से मुग्ध होकर उनके शूर सामंतों ने उनका साथ न छोडा । इस बात की खबर पाकर मारवाड नरेश अभय सिंहजी उन्हें अपने पास ले आये ! और सोलह वर्षके नव युवा उम्मेद सिंह जी का उन्होंने बहुत ही सत्कार किया । अजमेर में ही संवत् १८०२ की अक्षय तृतीया को मारवाड के अंतर्गत रास के ठाकुर बखत सिंह जी की कन्या कुन्दन कुमारी जी से इनका **दूसरा विवाह** हुआ । विवाह अवश्य होगया परंतु मारवाड नरेश से इनको बूँदी विजय में बिलकुल सहायता न मिली ।

अपने वीरव्रत का पालन करनेके लिये मातृ शोक में पडे हुए उम्मेद सिंह जी नव वधू के साथ भोग विलास में पडकर अपने कर्तव्य को तिलांजुलि नहीं देना चाहते थे । उन्हें दिन रात इसी की चिन्ता लगी रहती थी कि बूँदी का उद्धार कैसे करना चाहिये । वह इस बार दूसरे का आश्रय नहीं लेना चाहते थे । इस बार उन्हों ने पक्की ठान ली थी कि " जब लूंगा

तब अपने ही भुज बलसे बूँदी लूँगा । " बस इसी प्रण का निर्वाह करने के लिये उम्मेद सिंह जीवीरव्रत के व्रती होकर अपनी नव वधू को भिनाय में विमाता की सेवा में नियुक्त कर आप बूँदी विजय का प्रयत्न करने लगे । वहां आमेर नरेश जयसिंह जी की भगिनी, बुधसिंह जी की रानी कछवाही जी जिनके कारण उम्मेद सिंह जी के पिता को विपत्ति सागर में डूबना पडाथा, भी थीं, उन्होंने केकयी की तरह अपने पुराने कामों से लज्जित होकर नव वर वधू को हृदय से लगाया और इस तरह अपने पति विरोध की और पति के अप्रिय करने की दहकती हुई आग को शीतल किया ।

अध्याय ४.



बूँदी में उम्मेद सिंह जी ।

कोटा विजय करके जयपुर नरेश ईश्वरी सिंह जी दलेल सिंह जी को साथ लिये हुए अपनी राजधानी को लौटगये थे। बूँदी की रक्षा, यहां का शासन, यहां का सब कुछ उनकी ओर से नंदराम खत्री के अधीन था । दलेल सिंहजी का और नंदराम का बूँदी की प्रजा के साथ कैसा बर्ताव था सो जानने का मेरे पास कोई साधन नहीं है परंतु यह बात दिनमणि सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट है कि बूँदी की प्रजा महाराव राजा उम्मेदसिंहजी को चाहती थी, इन्हें चिरकाल के लिये बूँदी के राजसिंहासन पर आसीन होकर प्रजा पालन करते हुए देखने की भगवान् इष्ट देव से प्रार्थना करती थी । यहां तक कि इस राज्य की अर्द्ध वनवासी प्रजा लूट खसोट में परायण मीने चाहते थे कि हम श्रीमान् की प्रजा होकर रहैं। मीने केवल चाहते ही नहीं थे बरन समय आपडने पर उन्होंने करके भी दिखला दिया । टाड साहब ने लिखा है कि:—

"कोटा विजय करके ईश्वरी सिंहजी ने उम्मेद सिंहजी पर आक्रमण करने के लिये बूढ लुहारी में नानकपंथियों की सेना जिस समय भेजी थी

तो पहाड और जंगल के मालिक मीनाओं ने, चाहे हाडाओं के हाथ से उनका राज्य से स्वामित्व जाताही रहा था परंतु बडा काम दिया था ।"

इस बूढ लुहारी के संग्राम से टाड साहब का मतलब किस युद्ध से है सो मुझे मालूम नहीं हुआ परंतु जिस मैदान की समर घटना का मुझे इस समय वर्णन करना है उसके विषय में टाड साहब लिखते हैं कि:—

"युवा उम्मेद सिंहजी के साहस और उनकी विपत्ति ने **मीनाओंका मन जीत लिया** था—इतना जीत लिया था कि इनके आते ही पांच हजार धनुर्धारी—तीर कमान लिये हुए इनके लिये इनके शत्रु से लडने को तैयार होगये। इस सहायता से, इस जंगली सेना से इन्होंने बीचडी के मैदान में अपने शत्रु का सामना किया। मीनोंने धावा मारकर शत्रुकी सेना का विध्वंस करडाला और उन्हों ने तलवार हाथ में लेकर बडी निर्दयता के साथ शत्रु को काट डाला। केवल इतना ही क्यों उनका नक्कारा निशान छीनलिया।"

यद्यपि टाड साहब ने इस लडाई का वर्णन बहुत ही संक्षेप से किया है, इसका अच्छी तरह परिणाम भी नहीं दिखलाया है और साथ ही दबलाने के संग्राम का हाल लिखकर उन्होंने अपनी कथा का सिल सिला आगे बढा दिया है परंतु बूँदी के इतिहास में इस युद्ध का विशद रूप पर वर्णन है। इसके अन्त में एक वार बूँदी फिर उम्मेद सिंहजी के हाथ आजाने का उल्लेख है और तव दवलाना के संग्राम का दिग्दर्शन किया गया है। मेरे अनुमान से भी बूँदी का इतिहास इस विषय में विशेष आदरणीय है क्योंकि बीचडी में उम्मेद सिंहजी का विजय होते ही जयपुर से इतनी शीघ्र सेना नहीं आ सकती है कि जिस में इन्हें बूँदी लेनेका अवसर न मिले। कुछ भी हो बूँदी के इतिहास में लिखा है कि जव उम्मेद सिंहजी भिनाय से चलकर अपने शूर सामंतों सहित हींडोली पहुँचे बारह गावों के मीने झुंड के झुंड तीर से, कमान से, कटारी से, बरछीसे, सजकर इनकी सेवा के लिये—इनके लिये, समर भूमि में कट मरने के लिये आ खडे हुए। इनके काले, पीले, सफेद साफों पर धोकडे के पेड की टेनियों की कलंगियां अजब बहार दे रहीं थीं। सांगा के आये, सिलह के आये, गूगा के आये, दामा के आये, देवा के

आये, जग्गू के आये और इसी तरह सब कुलों के मीनों का समाज जुटकर रणोत्सव की उमंग में अपने सदाके, अपने होनहार स्वामी के पास आ जुटा। हींडोली की प्रजाने इन्हें अपना चिरस्वामी समझ कर सोलह हजार रुपया भेट किया। इस तरह सज धज कर उम्मेद सिंहजी ने बूँदी की ओर कूच किया। वीर सुभटों को संग्रामका साहस दिलाने के लिये "सींधू" गाया जाने लगा। मारू रागने सैनिकों की नसें फडका दीं। और सबही लडाई के लिये मतवाले बनकर शूर मीने अपने ही मुहसे अपने पहुंचे चबाने लगे।

इस खबर को पाकर बूँदी से नंदराम खत्री पांच हजार सेना लिये हुए इनसे लडने के लिये निकल कर बीचडीके मैदान में आया। रण भूमि में आते ही दोनों ओर की सेना भिडगई। दोनों ओर से खूब लोह बजने लगा। उम्मेद सिंह जी की जितनी ही साहसी और जितनी ही निर्भय और जितनी ही प्राणों को तुच्छ समझकर तिनका मानकर लडाई में जूझ जाने वाली सेना थी बूँदीकी सेना उतनी ही अस्त्र शस्त्रों से सजी हुई थी। अवश्य ही दोनों ओर की संख्या लग भग बराबर होने पर भी बूँदी की सेना के लिये तोपों का बन्दूकों का बहुत कुछ सहारा था, परंतु मीने तीरंदाजों ने विना बंदूक के, विना तोप के केवल तीरों से बूंदी की तोपें बंद करदीं और इस तरह करदीं कि आज कलके युद्धपटु अंगरेजों से भी सुन कर आश्चर्य में पडे विना नहीं रहा जा सकता है। बूँदी की सेना के किसी गोलंदाज ने ज्यों हीं तोप चलाने के लिये बत्ती उठाई कि किसी मीने ने दूर ही से तान कर एक तीर ऐसा मार दिया कि उसे तोप दागे विना, भरी भराई तोप को योंही छोड कर अपने प्यारे प्राण योंहीं गवाँ देने पडे। तोप दागने की इच्छा मन की मनमें और बत्ती हाथ की हाथ में रह गई और उसके प्राणपखेरू उडकर सदाके लिये पलायन कर गये। बस इस तरह जब बूँदी वालों की तलवारें तरकारी की तरह खचा खच आदमियों के हाथ, पैर, शिर, काट रहीं थीं तब मीनों के तीर बूँदी वालों के शिर, भुज को धडसे अलग करके उनकी आकाश से बातें करा रहे थे। कहीं बरछी चलती थी, कहीं तलवार से तल-

चार की टक्करें होतीथीं । कहीं द्वंद्व युद्ध में कटारियां शत्रुका पेट फाड २ कर आँतें निकाल रहीं थीं और कहीं घूंसों हीं की मारसे जंगली मीने बूँदी की सेनाका चकना चूर कर रहे थे । कोई पडा २ कराहता था, कोई रोता था, कोई कटकर गिर जाता था और कोई गिरते २ फिर खडा होकर दो चार के शिर काट लेता था । बीचडी का मैदान नर रक्त से इस तरह भीग गया जैसे भादों के मेह से धरती तृप्त होती है । जगह २ खून भर गया । कहीं वीरों के हाथ, कहीं पैर, कहीं शिर और कहीं धड पडे २ तडपने लगे और इस तरह सच मुच **युद्ध का घमासान** मच गया । बडा ही दारुण संग्राम हुआ । इस समय बहादुर मीनोंने लडकर महाराव राजा उम्मेद सिंहजी के लिये वही काम किया जो रीछ बानरों ने भगवान् रामचन्द्र जी की सेवा में किया था । परंतु जिस तरह भगवान दशरथ नंदन के पराक्रम विना दुर्दमनीय राक्षस राज नहीं जीता जा सकता था, जिस तरह उस समर में बानरों की सहायता केवल निमित्त थी उसी तरह उम्मेद सिंहजी के और इनके शूर सामंतों के पराक्रम विना इस वार बूँदी में फिर इनका अधिकार होना असंभव था । यह युद्ध के नेता थे, यह तलवार चलाने में थे, ये शत्रु सेना को मार काट कर संहार करने में थे । इन्हींके हुंकार पर, इन्हीं का "मारो काटो ।" शब्द सुनकर, इन्ही की संग्राम भूमिमें गर्जना सुनकर मीने प्राण पन से लडते थे । परिणाम यह हुआ कि बूँदी का **सेनापति नंदराम** खत्री कायरता दिखा कर **युद्ध छोड भागा** । उसके पीठ दिखाते ही सेनाने भागना आरंभ कर दिया । बस इसतरह मैदान उम्मेद सिंहजी के हाथ आया । केवल मैदान ही क्यों इन्होंने अपने शूर सामंतों सहित बेरोक टोक **बूँदी**

खत्री कायरता दिखा कर **युद्ध छोड भागा** । उसके पीठ दिखाते ही सेनाने भागना आरंभ कर दिया । बस इसतरह मैदान उम्मेद सिंहजी के हाथ आया । केवल मैदान ही क्यों इन्होंने अपने शूर सामंतों सहित बेरोक टोक **बूँदी**

को संवत् १९०३ में **गद्दी विराजे**। इस तरह दुर्जनशल्य जी की सहायतासे बूँदी पाकर उसे छोड देते समय अपने भुज बलसे, अपनी तलवार के जोर से बूँदी लेनेका जो प्रण किया था उसका इष्ट देवकी कृपा से इन्होंने निर्वाह किया।

अवश्यही इन्होंने इस बार अपनी तलवार के जोर से बूँदी लेली परंतु इनके कुल शत्रु ईश्वरी सिंहजी इनका उत्कर्ष थोडा ही सह सकते थे। वह अपने पिताकी तरह बूँदी और कोटे को अपने जागीरदार बनाने की जब सनक में थे तब वह महाराव राजा उम्मेद सिंहजी के बूँदी लेलेने पर कैसे चुप रह सकते थे उन्होंने अपने पाद सेवी दलेल सिंहजी को उकसाया। उन्होंने कहा कि–"जाओ हमारी सेना से बूँदी लेकर उम्मेद सिंह जी को निकाल दो।" परंतु कायर दलेल सिंहजी का केसरी उम्मेद सिंहजी के सामने पडने का हौसिला न हुआ कुलद्रोहके निमित्त ग[illegible]कर और कुलनाश का कारण बन कर उनका हृदय दग्ध होगया था। वह पहले ही जयपुर नरेश के आगे कठ पुतली थे फिर एक बार के युद्ध में उन्होंने आंखों से उम्मेद सिंह जी का पराक्रम देखा, दूसरी बारके संग्राम में इनकी वीर कथा सुनी बस इसीलिये **दलेलसिंह जी हिम्मत हार गये**। उन्होंने समझ लिया कि राज्य का आनंद जब जयपुर नरेश लूटते हैं तब मैं पराक्रमी उम्मेदसिंह जी के सामने पडकर क्यों अपने प्राण खोऊं। बस इसी समझ से उनकी वीरता, उनका रहा सहा साहस पलायन करगया। वह केवल दूसरों के हाथकी गुडिया बने हुए राजा बनने के लोभ में पडकर पहले इधर उधर से बटोर कर यदि कभी लडने का साहस भी करते थे तो अब उम्मेदसिंह जी के डर ने उन्हें बिलकुल बलहीन करदिया। उन्होंने महाराज ईश्वरी सिंहजी से स्पष्ट कह दिया:–

"महाराज, मुझे बूँदी नहीं चाहिये। मैं ऐसा राज्य करके भयमें पडनेसे राज्य हीन ही अच्छा हूँ। आप स्वयं बूँदी में अपना राज्य स्थापित कीजिये। मैं बूँदी का दावा छोडता हूं।"

ईश्वरी सिंहजी इस बात से प्रसन्न हुए वा नहीं सो मैं नहीं कह सकता परंतु

उन्होंने दलेल सिंह जी से फारिगखती लिखवा ली। उन्हें केवल नैनवा और करवर जागीर में देकर फिर बूँदी लेने के लिये सेना सजाई। इस वार की चढाई वास्तव में बिकट थी। इस वार मानों बालक सूर्य को घेरने के लिये बादलों के दलके दल टूट पडे थे। इस वार मानों वन शार्दूल का विजय करने के लिये हजारों हाथी झुंड बांध कर उसपर चढ दौडे थे। ईश्वरी सिंहजी ने उम्मेदसिंहजी से लडने के लिये पचास हजार सेना भेजी और उनका सरदार राजामल और शिवदास खत्री का भाई नारायण दास बनाया। केवल इतना ही क्यों जयपुर राज्य में जितने वीर उमराव थे, जितने लडाकू सरदार थे और जितने रण पंडित थे वे सब इनके साथ दे दिये।

अवश्य ही ईश्वरी सिंह जी ने जब इतनी भारी तैयारी की है तब वह लडाई के मैदान में अपने कलेजे के फफोले फोडेंगे परंतु क्यों साहब आपको चिउंटियों पर पत्थर मारना क्यों सूझा है ? जाने रहो जिस जगह आप गीदड समझ कर मारने को तैयार हुए हो वहां पंचानन केसरी है। यदि आप में शक्ति है तो दिल्ली की बादशाहत लो। मुसलमानों से हिन्दुस्थान छुडा कर हिन्दुआनी डंका फिरसे बजाओ। अपने भाइयोंके और अपनी जातिके वीर राजपूतों के रक्त से पृथ्वी माता का तर्पण मत करो। इससे आप अपने ही हाथ, अपना ही शिर काट रहे हो। इस तरह जाति द्रोह करके, आपसमें काट मार करके राजपूत जातिका, हिन्दुओं का सर्व नाश मत करो।" इस तरह कडी २ सुनादेने वाला उस समय ईश्वरी सिंह जी को और उनके पिता जयसिंह जी को कोई न मिला। यदि उस समय वीर क्षत्रियों को ईर्षा ने, मद्यने और मुसलमानों की सेवा लोलुपताने न घेर लिया होता तो आज दिन हिन्दू जाति निर्जीव न दिखाई देती परंतु होनहार बडा बलवान् होता है।

अध्याय ८.

लोमहर्षण संग्राम।

बूँदी छूटगई।

आज महाराव राजा उम्मेद सिंहजी को बूँदीके सिंहासन पर विराजे केवल १६ दिन हुए हैं। आप इसी अवसर में कोटे से अपने भाई वहन इत्यादि को बुला चुके हैं। आपकी रानी भी आपके समीप ही है। अब आप राज्य रक्षा की, राज्य की उन्नति की, राज्य के सुधार की चिन्ता करना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि राज्य प्रबंध सुधर कर प्रजा का कल्याण हो, प्रजा सुख से रहने लगे परंतु भगवान को अभी प्रजा का सुख इष्ट नहीं है, अभी वह नहीं चाहते कि उम्मेद सिंह जी शांति से अपनी राजधानी में बैठकर अपना कर्तव्य पालन कर सकें। अभी वह फिर भी उम्मेद सिंह जी का पराक्रम देखना चाहते हैं। अदृष्ट वादियों के मतसे इसीलिये जयपुर नरेश **ईश्वरी सिंह जी** ने इस बार बडे जोर शोर से, बडे धूमधडाके से **बूँदी पर चढाई की** है। जयपुर के पचरंगी निशान के साथ पचास हजार—आधी लाख सेना में वहां के छटे हुए शूर सामन्त हैं, रण में कभी पीठ न दिखाने वाले वली वीर हैं, बडे २ मतवाले हाथी हैं, बडी २ तोपें हैं और एक लोम हर्षण संग्राम के लिये जिन २ सामग्रियों की आवश्यता होती है वे प्रायः सबही हैं। राहु जिस तरह समय पाकर सूर्य चन्द्रमा को ग्रस लेता है उसी तरह उम्मेद सिंह जी को ग्रस लेने के लिये जयपुर को इतनी बडी तैयारी करनी पडी है। शिकार के लिये चारों ओर से घेर कर वीर सैनिक जिस तरह शार्दूल को गिरि-गुहा में से निकालते हैं उसी तरह जयपुर उम्मेद सिंह जी को घेरना चाहता है। महाराज ईश्वरी सिंह जी अच्छी तरह जानते हैं कि चाहे उम्मेद सिंह जी को बूँदी का राज्य करते अभी इने गिने दिन ही हुए हैं परंतु पराक्रम की और उनकी शूरता की जब लडकपन ही में धाक पडती है तबही

उन्होंने इतनी बडी सेना जो दिल्ली पर चढाई करने में अपेक्षित थी बूँदी लेने के लिये भेजी क्योंकि वह अच्छी तरह जानते थे कि युद्ध के समय एक २ हाडा में कमसे कम एक २ हाथी के समान बल होजाता है । वह जानते थे कि उम्मेद सिंहजी के आश्रित बूँदीको लेलेना दाल भात का खाना नहीं है । उन्हें निश्चय था कि वीर हाडे यदि मारे भी जायंगे तो दश बीस को मारे बिना एक २ हाडा न मरैगा । बस इसी लिये उन्होंने इतनी सेना भेजी ।

भाद्रपद शुक्ला ७ की रात्रिमें पति पत्नी संसार सुख का रस लूटतें २ जिस समय शयन कर रहेथे, जिस समय काली घटा ने आकाश के चन्द्रमा को छिपाकर चारों ओर घोर अंधकार कर रक्खा था, जिस समय आकाश में बादल गरज २ कर पानी की बडी २ बूँदें गिरा रहे थे अचानक दासियोंने, नाजरों ने दौडते २ आकर रानी को जगाया । रानी ने उनसे विकट बैरी की चढाई का हाल सुनकर पतिको जगाया और जगाते जगाते कहा मानो गिरि गुहामें सोते हुए सिंह को जगाते २ सिंहनी ने कहाः—

"प्राणनाथ! अब सोते क्यों हैं ? अपने गंड स्थल में गजमुक्ता को धारण करने वाले मतवाले हाथियों का झुँड आरहा है । जिनका मांस खाने के लिये बन केसरी ने और मांस नहीं खाया है, जिनके लिये शार्दूल लंघन पर लंघन कर रहा है वे ही मतवाले मातंग आरहे हैं । आज ही आपकी बीरताकी परीक्षा का समय अनायास प्राप्त हुआ है । नन्हे २ हिरनोंके अपराधपर सिंह आंख उघाड कर भी नहीं देखता है, उसी की क्षुधा निवारण करने के लिये गजराजों का झुंड आता है । जागो नाथ ! जागो । जरा आँख उठा कर देखो तो सही । सोते क्यों हो ! हम आज आपकी बहादुरी देखना चाहती हैं । "

यह सुनकर प्राण नाथ अंगडाई लेते २ जागे । जागे तो सही परंतु आलस्य से उठकर बैठे नहीं । उन्होंने लेटे २ ही कहाः—

"चिन्ता क्या है ? दिन तो निकल ने दो । प्यारी ! फिर देखना मेरे हाथ । " बस तुरन्त ही मुर्गे की बांग सुनकर आप उठे । उठते ही

सेना की तैयारी होने लगी। शत्रु की चढ़ाई सुनकर, इन्होंने पहले ही अपने मित्रों के और अपने सहायकों के नाम पत्र भेज दिये थे। चारों ओरसे नामुर नर और हाडागण बूँदी में इकट्ठे होने लगे। नगर के बाहर मैदान में सेना के एकत्र होने के लिये झंडा गाड़ दिया गया। गाई के साथ अपनी गर्भिणी माता और प्रिय पत्नी को कोटे भेज दिया। आप हंसा घोड़े पर सवार हुए। अपने खासा घोड़ों में से पृथ्वीसिंहजी नाथावत को मृगछान, अमरसिंहजी राठोड़ को नटराज, भवानीसिंहजी को दिलख्वार, प्रयागसिंहजी को खग-राज महासिंहोत सरदार को तोफा गुलकरणसिंहोत मर्यादसिंहजी को जयनाद घोड़ा दिया। बूँदी के सब ही सरदार **दों २ तलवारें,** दो २ ढाल, दो २ तरकश बांध कर शत्रुओं पर चढने के लिये **सिंह नाद** करने लगे। इस समय संग्राम के लिये मतवाले बन कर ये लोग शिर ऊंचा किये हुए थे। लड़ाई के जोश में आकर इनकी नसें फड़कती थीं। उमंग के मारे मन उछल रहा था। चोपदारों की पुकार से, बंदीजनों के गान से, "सिंधू" राग के बजने से घड़ी २ पल २ **वीरोंका उत्साह** बढने लगा। मारू राग ने बजकर लड़ाके सैनिकों को रणोत्साह में ऐसा मतवाला किया कि बस वे मारने काटने, लड़ने, लड़ाने के सिवाय संसार की सब बातों को भूल गये। बस उन्हें यदि कुछ याद रहा तो इतना ही कि ईश्वर का नाम, प्राण की बाजी लगाकर विजय पाने की आकांक्षा और हाडाओं की **प्राचीन वीर कीर्त्ति**। इनकी सहायता के लिये पारसोली के राव पृथ्वीसिंहजी आये। मरवाड़ के अमरसिंहजी राठोड़ आये। इनमें से पहले उदयपुर का आश्रय और दूसरे कोटे की सेवा छोड़कर चले आये। जोधपुर से गजसिंहजी के पुत्र अमरसिंह जी राठोड़ आये। इनकी पत्नी गर्भवती थी तथापि रण में अपने हाथ दिखाने के लिये यह चले आये। सगतावत मानसिंहजी उदय-पुर से आगये। ५०० सेना सहित मर्यादसिंहजी आये। बस इस तरह **जयपुर की पचास हजार सेना** का सामना करने के लिये बूँदी में केवल १६ दिन के शासन बाद १२०० सेना तैयार हुई। अवश्य ही बूँदी की सेना जयपुरी सेना के आगे जरासी थी, और घंड से मटक्का सामना

था परंतु वह मटर नहीं किन्तु घडा फोड देने के लिये गोली थी। आगे चलकर पाठकों को मालूम होजायगा कि उसने जयपुरी पचास हजार वीरों के छक्के छुडाने में गोली नहीं! वज्र का काम दिया।

टाड साहब ने लिखा है कि—"जयपुर वालों ने बीचडी के मैदान में अपनी सेना का पराजय सुनकर खत्री नारायण दास के अधिकार में उम्मेद सिंहजी का दमन करने के लिये अठारह हजार सेना भेजी परंतु बीचडी के संग्राम में वहादुर उम्मेदसिंहजी का पराक्रम इन दिनों हाडा वीरों ने सुन लिया था इसलिये उनके झुंड के झुंड इस युवा राजा के झंडे के लिये इस निश्चय से आ उपस्थित हुए कि चाहे प्राण ही जांय तो कुछ पर्वाह नहीं परंतु स्वकुल रक्षा के लिये लडेंगे। जिस समय शत्रु सेना दवलाने पहुंच गई और जब युद्ध मचने का सुप्रभात होने में केवल चार ही पहर की देरी रह गई युवा उम्मेदसिंहजी ने सितूर जाकर भगवती महिषासुर मर्दिनी रक्तदंता के आगे साष्टांग प्रणाम करते २ प्रार्थना की:—

" भगवती, शत्रु का विजय करने की शक्ति दे। मैं आज तेरे चरणों में शपथ खाता हूँ कि या तो वैरियों का विजय करूंगा अथवा मरही जाऊंगा।"

"वस इसी प्रार्थना से, ऐसे ही उत्साह भरे शब्दों से और ऐसी ही प्रतिज्ञा से उत्साहित होकर वहादुर हाडे जहांगीर सम्राट् से राव रत्नजी को जो पीला झंडा मिला था उसके नीचे आ जुटे। इन्होंने ज्योंही दवलाने की घाटी पार की शत्रु सेना मैदान में इनका सामना करने को तैयार थी। इन हाडाओं के अनेक समुदायों में एक गोल के मुखिया स्वयं उम्मेद सिंहजी थे। यह स्वयं धात्रा करने में सब से आगे बरछा लिये हुए तैयार थे। इनकी शारीरिक शक्ति का, इनकी नेक नियती का असर बडा भारी था और इसी लिये इन्हों ने शत्रु सेना के दल के दल काटकर मैदान कर डाला। यह गोल बांधकर हमला करते थे और तोपों की मार से छिन्न भिन्न होने पर भी इनकी तलवारें खचाखच चलने लगतीं थीं किन्तु प्रत्येक आक्रमण में इनके वीर से वीर सामंत मारे जाकर वीर गति को प्राप्त होते थे। इनके मामा पृथ्वीसिंहजी सोलंखी काम आये। इनके वीर सामंत महाराजा

मर्याद सिंहजी हाडा काम आये और उस समय काम आये जब वह अपना चक्र आमेर के सेनापति नारायण दासजी का शिर काटने को चला रहे थे। नोरण के प्रयाग सिंहजी मारे गये और सब से बढकर उम्मेद सिंहजी के प्यारे घोडे के गोला लगा। ऐसी दशा में युद्ध करके इनके साथियों की, इनके भाई बंधों की पूरी सहायता मिलने पर भी अपनी आप हानि करना था इस लिये इनके उमरावों ने इनसे प्रार्थना की:—

"महाराज, यदि आपके प्राण बचैंगे तो किसी दिन बूँदी अवश्य हमारी है। आपही मारे जायंगे तो हमारी सब आशा मरजायंगी।"

टाड साहब के जो वाक्य ऊपर उद्धृत किये गये हैं उन से बूँदी के इतिहास का इतना ही अंतर मालूम होता है कि टाड साहब ने जयपुर सेना की संख्या जब अठारह हजार मानी है तब बूँदी के इतिहास लेखक पचास हजार मानते हैं। यदि टाड साहब की लिखी हुई संख्या ही ठीक मानली जाय तब भी **सेर की मनसे** तुलना है। कहां जयपुरकी अठारह हजार सेना और कहां बूँदीकी बारह सो। एक बात का और भी अंतर है। टाड साहब यह संग्राम दबलाने के मैदान में होना मानते हैं और बूँदीवाले अमरपुरा के पास। खैर! जो कुछ हो परंतु बूँदी के इतिहास में इस संग्राम का दिग्दर्शन इसतरह किया गया है कि जिस समय खत्री नारायणदास ने बूँदी नरेश को देखा एकाएक कछवाही सेना को आज्ञा दी कि बस **इन्हें घेरलो**। आज्ञा पाते ही बीर कछवाहों ने इनपर हमला किया। दोनो ओरके योद्धा इस तरह आपस में मिलगये जैसे **दूध में मिश्री** मिलजाती है। तलवारों से तलवारें खटाखट बजने लगीं। लाशों पर लाशें गिरने लगीं। बीरों के शिर कट २ कर कबूतरों की तरह कला बाजी कर २ के धरती पर गिरने लगे। बीर सैनिकों की दोनों हाथों से तलवारें चलने लगीं। अमरपुर का मैदान **मुरदों से भरगया**। रक्त की नदी बहने लगीं। दोनों ओर की सेनायें उसके दोनों किनारे बनगईं। सूर्यमल्लजी के लेख का यह केवल संकेत है। उन्होंने बीरता का वर्णन करते हुए बडे ही ओजवर्द्धक पद्य का आश्रय लेया है। वह पौराणिक ढंग का पद्य है। आज कल के लोगों को गद्यमें ऐसी

रचना कम पसंद है फिर मैं इस विषय को बढाना भी नहीं चाहता। मतलब यही है कि बूँदी की सेना **थोडी होने पर** भी जयपुर सेना से जान **झोंकक-र लडी।** जबतक प्रत्येक सैनिक के शरीर में प्राण रहा तबतक लडती रही। यदि बूँदी का एक सैनिक मरा तो सामने के दश पांच को मारकर मरा। महाराव राजा उम्मेदसिंहजी अनेक आघातों से घायल होजाने पर भी शत्रु सेना में से न डिगे। उनके प्यारे घोडे के गोला लगने पर भी न डिगे। जिस तरह उन्होंने इस संग्राम में अपने ही हाथ से नर मुंडों को गेंद की तरह उडादिया, जिस तरह उन्होंने अपने ही बाणों से अनेकों के शिर भुज काट डाले, उसे इतिहास के पृष्ठ देखने से मालूम होता है कि उन्होंने इस लडाई में अपना **असाधारण पौरुष** दिखलाया। वह प्राण देदेने पर भी वहां से न डिगते परंतु उनके साथियों ने भविष्य की आशा के लिये उन्हें वहां न ठहरने दिया। उन्होंने इन को **शपथ दिलादिया** और इस तरह जयपुर की हजारों सेना को चीरते हुए उम्मेद सिंहजी होनहार के भरोसे पर, ईश्वर के भरोसे पर अपने को डालकर चलेगये। चले अवश्य गये और बूँदी पर जयपुर नरेश का अधिकार भी होगया परंतु टाड साहब इस घटना का वर्णन करते हुए अंतमें लिखते हैं--उसी वाक्य के बाद लिखते हैं जो ऊपर उद्धृत किया गया है। उनका कथन है कि:--

"उम्मेद सिंहजीने अपने साथियों का परामर्श बडे दु:ख के साथ स्वीकार किया। इसतरह लडते २ ज्यों ही ये लोग घाटी के पास पहुंचे इन्होंने इन्द्रगढ का रास्ता लिया। अपने प्यारे घोडे को दम लिवाने के लिये ज्योंही यह उस पर से उतरे उसका दम निकल गया। उम्मेदसिंहजी उसके पास बैठकर बहुत रोये। हंजा घोडा उनकी इतनी ही प्रीति के योग्य था। यह इराक घोडा था। बादशाह से महाराव राजा बुधसिंहजी ने इसे पाया था। अनेक बडे २ संग्रामों में यह उनके साथ था। साथ क्या था वीर राजपूत का घोडा जैसा सच्चा साथी होता है वैसा ही सच्चा साथी था। यह युवा हाडा का बनावटी खयाल न था क्योंकि उन्होंने राज्य पाते ही पहला काम यही किया था कि दबलाना के मैदान में साथ देनेवाले का यादगार बनवाया।

यह यादगार * बूँदी के चौक में है। प्रत्येक हाडा इसकी बडी प्रतिष्ठा करते हैं। मैं यदि हाडाओं में रहता होता तो प्रत्येक सैनिक उत्सव पर इसे फूलों का हार पहनाता।"

इसके बाद टाड साहब ने बूँदी के इतिहास में जो कुछ लिखा है उसीसे माळूम होजायगा कि उम्मेद सिंहजी ने प्यारे घोडे को खोकर क्या किया। गोला लगने से **टाँग टूटजाने पर** भी हंजा अपने स्वामी को पीठ पर चढाये **तीन चार कोश** चलकर जब मरगया तब पास खाने के लिये मुट्ठी भर चने भी न होने पर यह झडबेरी के बेर खाकर इन्द्रगढ पहुंचे और पैदल चलकर पहुंचे। वहां के जागीरदार (देवसिंहजी) नाम के हाडा थे किन्तु हाडा होकर कछवाहों की नौकरी करते थे। इन्होंने उनसे अपने चढने के लिये घोडा मांगा परंतु कुल शत्रु देवसिंहजीने घोडा देना तो दूर रहा इनसे स्पष्ट कह दिया कि—"बूँदी खोकर क्या अब इन्द्रगढ का नाश करने आये हो?"—वीर क्षत्रिय तलवार का घाव सह सकते हैं किन्तु प्रतिपक्षी का बोल नहीं सह सकते परंतु वीर उम्मेद सिंहजीने इस वचन बाण को सहलिया। इसके घाव को मन का मनमें छिपाकर मन ही मन यह कहते हुए चलेगये कि—"अच्छा कुल शत्रु किसी दिन तुझसे इस बात का बदला लेलेंगे। अच्छा तैंनें अभी जहर खाया है तो कभी इसकी लहर भी सहैगा।" उन्होंने फिर इन्द्रगढ की सीमा में पानी भी न पिया। उन्होंने फिर किसी जंग में अपने साथियों की तलवारों से काम लेने का वचन देकर उनका संतोष करने के बाद उन्हें अपने २ गांव भेजकर आप रामपुर होते हुए मधुकर गढ चले गये। वह इस तरह चलेगये और युद्ध भी थोडे काल के लिये समाप्त होगया परंतु उम्मेद सिंहजी के विक्रम का परिचय देने के लिये कवि राजा सूर्य्य मल्लजी के लिखे हुए "वंश भास्कर" में से कुछ पद्य उद्धृत किये बिना मैं इस अध्याय को समाप्त करना नहीं चाहताहूँ। उन्होंने लिखा है कि:—

* यह मूर्त्ति हँजाकी नहीं है। तीर्थिया घोडे की है जो तीर्थ यात्रा में इनके साथ था। उस घोडे का चबूतरा उसी जगह बनाहै जहां वह मराथा।

"रच्यो नृप[1] यों रण पावसरूप, धपावत शत्रुनतें निज धूपें[2], लयो ढिंग जाय नरायनदास, प्रहारन मार रची चहुं पास (१) मरे भट भूपति के शत तीन ३००, भये शत पंचक ५०० घायल खीन, भज्यो गज खत्रियँको[3] लखिभार, भयो-तब कुँदि[4] रु[5] है[6] असवार (२) इते बिच कूरँम विक्रम[7] आय, दई तरवार घने कारि दांय[8], भयो तिहिं हंजक[9] है पदभिन्न, तऊ झपटाय हने अरि तिन्न (३) भिर्‌यो वह विक्रँम आनि बहोरि, लयो नृप कूरँमको सिर तोरि, यहै लखि कूरम [10]भैरव आनि, जुरयो नृप तें दलमारत जानि (४) महीपति उप्पर खग्गे[11] मुमोचें[12], खग्यो[13] कछु पंसुलि पै कटि कोचें[14], करी पुनि हंज हयँच्छट[15] चोट, कढयो कछु पैन रुक्यो नृप[16] घोट, (५) चली नृप की तपकी तरवारि, लयो वह भैरव मारँत[17] मारि, इते बिच कुर्म्म[18] मिल्यो महतौव[19], दये शर चारि चटद्दँत[20] चाप (६) लगे नृपके दुँव[21] दारित दंशे[22], लगे हय के दुँव[23] दाहिन अंसें, रुक्यो नहिं रंच तऊ नृप ओज, चल्यो अरि मारत फारत फोज (७) तहां पुरँ[24] पीलपती चहुवान, भिरे दुँवे[25] थान तथा सुरतान, नरूहँर[26] ज्यों हरनाथ तृतीय।इन्हें नृप रुक्कियँ[27] गाढ गरीवें[28], उभै चहुवानन झारिय खग्गँ[29], करे तिनके शिर भूप अलग्ग तथा सहि नौरँव[30] की तरवारि, लयो हरनाथँहु[31] को हय मारि ९ धनी इम जैपुर बीरन नारि, करी नृप जोगिनि कंकनँ[32] झारि"

---

१ उम्मेदसिंहजी । २ तलवार । ३ नारायण दास खत्री । ४ कूदकर । ५ और । ६ हय (घोडा)। ७ विक्रम सिंह कछवाहा (जयपुर के सरदार)। ८ पेच (दाव) ९ हंजा घोडा । १० भैरव सिंह कछवाहा (जयपुर के सरदार)। ११ खड्ग । १२ मारा । १३ घुसा । १४ कवच । १५ घोडे के कंधे पर । १६ उम्मेदसिंहजी का घोडा। १७ मारते को मार लिया ।१८ कूर्म । कछवाहा । १९ महताबसिंह कछवाहा । जयपुरके सरदार । २० चटचटाते हुए। २१ दो । २२ कवच फोडकर । २३ दाहिने कन्धे पर २४ जयपुर के सरदार । २५ थान सिंह ।२६ नरूके सरदार जयपुर के । २७ रोका २८ दृढता से । २९ नरूके । सरदार। ३० जयपुर के सरदार हरनाथ सिंह । ३१ योगिनी। विधवा अथवा जोगिनी। ३२ चूडियां फोडकर ।

अध्याय ६.



हारने पर भी न हारे।

गत अध्याय में टाड साहब के उल्लेख से और बूँदी के इतिहास से पाठकों को विदित होगया होगा कि जयपुर की कम से कम **बीस गुनी सेना** का सामना करने में अपना प्यारा घोडा खोकर, अपनी सारी सेना कटवाकर, अपने बडे २ पराक्रमी सामंतों के नष्ट होने के अनंतर महाराव राजा उम्मेद सिंह जी अवश्य हारे और आगे फिर किसी युद्ध में इसका बदला लेलेने के विचार से हारे परन्तु यह लडाई **जयपुर के लिये भी बहुत भारी पडी**। उसकी सेना नष्टप्राय होगई, उसके बडे २ वीर विक्रम सामंत मारे गये और सच पूंछो तो इने गिने हाडाओं के विक्रम से उसकी ऐसी दशा हुई जो कभी भूलने की नहीं है। बस इसी लिये जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह जी को उम्मेद सिंह जी पर जो क्रोध हुआ उसे वह न संभाल सके। वह चाहते तो सेना भेज कर इन्हें मधुकरगढ में जा सताते परन्तु इस बार उन्होंने एक प्रपंच से इनका दमन करना चाहा क्योंकि यह जानते थे कि उम्मेद सिंह जी इस समय सेना हीन होजाने पर भी शक्ति हीन नहीं हुए हैं और साथ ही इनका बूँदी लेने का अभी साहस नहीं टूटा है। यह बुझ जाने पर भी आग की चिनगारी है। जिसतरह आग की एक छोटी सी चिनगारी बडे २ जंगलों को जला डालती है उसी तरह यह बूँदी लेने में जयपुर की सेना का विनाश करेंगे इसलिये उन्होंने इसबार प्रपंच रच कर कोटा नरेश **दुर्जनशल्य जी को मिलाया**। उनसे कहलाया कि— "हमें उम्मेद सिंह जी पर दया आती है इस लिये आप उन पर करुणा करके हमारे पैरों पडवादो। हम नित्य दो सो रुपया दिया करेंगे। आप बीच में पडकर उनसे स्वीकार करवादो।" यदि इन रुपयों को दुर्जनशल्य जी उम्मेदसिंह जी के पास भेजते तो अवश्य ही यह इन्हें लौटा देते और साथ ही दुर्जनशल्य जी पर क्रुद्ध भी होते परन्तु उन्होंने इसीलिये रुपये भेजने

का साहस न करके वह जयपुर से लेकर कई महीने तक अपने **खजाने में जमा** करते रहे । इस बात से दुर्जन शल्य जी के **मन का पतलापन** सिद्ध होताहै । उन्होंने इस तरह स्वार्थ वश कुछ भी किया परन्तु बूँदी राज वंश के **चिर शत्रु मेवाड के रानाजी** उम्मेदसिंह जी का बल विक्रम, इनका असीम साहस सुनकर मुग्ध होगये । जब उन्होंने इनके अतुलनीय पराक्रम का संवाद सुना, जब उन्होंने जाना कि संग्राम में गोलों की और तलवारों की गहरी मार पडने पर भी रणभूमि से पीठ न दिखाने वाला इनका प्यारा घोडा मारागया है तब उन्होंने सोने के सामान से सजा हुआ एक बढिया घोडा भेजा, एक बढिया तलवार भेजी और बढिया २ वस्त्रोंसे संयुक्त एक * शिरोपाव भेजा और कहलाया कि--"इसे प्रेम पूर्वक ग्रहण कीजिये ।" मैं इस विषय में अधिक नहीं कहना चाहता पाठक स्वयं दुर्जनशल्य जी के वर्ताव की राना जी के वर्ताव से तुलना करके देखलें । इनमें दुर्जनशल्य जी एक जुदे राज्य के स्वामी होने पर भी बूँदीके छुट भैया थे और राना जी की बूँदी राज्य के साथ अनेक पीढियों से शत्रुता चली आतीथी ।

जिस समय महाराव राजा उम्मेदसिंह जी राज्य हीन होकर आगे की चिन्ता में पडे २ रानपुर में अपने दिन बिता रहे थे इनकी कीर्ति, इनका बल विक्रम देश देशांतरों में व्याप्त होरहा था । इनके सद्गुणों से मोहित होकर वीर क्षत्रिय विना मांगे और [illegible] इच्छा न होने पर भी इन्हें अपनी लडकियां देते थे । ऐसी विपत्ति के सम[illegible] [illegible]डे में घिरा हुआ सिंह जैसे आदरणीय होता है वैसे ही यह भी वीर पुरुषों के सम्मान भाजन थे और इसी कारण इन्हें बरात चढाकर बुलाने के बदले बनेडे के राठोड राजा राम सिंह जी ने अपनी कन्या बखत कुमारि जी का बनेडे से रानपुर को डोला + भेजा । इस तरह उम्मेद सिंह जी का **तीसरा बिवाह** संवत् १९०२ में मार्ग शीर्ष शुक्ल ३ को रानपुर में हुआ ।

---

* शिरसे लेकर पैर तकके सारे वस्त्र । + पालकी ।

तीसरी नववधू पाकर भी उम्मेद सिंह जी विषयासक्त न हुए। इन्होंने अपनी रानी जी को कोटे अपने भाई के पास भेज दिया क्योंकि वह जानते थे भोगविलास में रत हो जाने से अपने कठिन व्रत पालन में और अपनी घोरतपस्या में विघ्न पडैगा। इस प्रकार से जब यह भेज भाज कर निश्चिन्त हुए—अकेले हुए तब इन्होंने फिर बूँदी विजय के प्रयास में वडा भारी आयास उठाने का संकल्प किया। इनके संकल्प की जब कोटेके महाराव दुर्जनशल्य जी को खबर हुई तो उन्हों ने वेही दो सो रुपये नित्य के लोभसे, जिन्हें वह जयपुर से इनके नाम पर पाते थे, इन्हें रोका। उन्होंने कोयले के प्रतिष्ठित जागीरदार अजबसिंहजी माधानी को इनके पास भेजकर कहलाया कि—"आप इस प्रकार से राज्य न पासकैंगे। आपको चंबल नदी पार करना भी कठिन होगा। आपने अभी तक (अच्छी तरह) तलवार का स्वाद नहीं चाखा है आपकी सेना जरासी और जयपुर की शक्ति अपार है। सिंहों का अपराध करके यदि खरगोश जीना चाहै तो नहीं जी सकता इसलिये हम आपके लिये मरहटों को सहायता पर बुलवाते हैं।" इस पर उम्मेद सिंहजी को चचा * दुर्जनशल्य जीके मीठे वचन का भरोसा हुआ। वास्तव में ये वचन हित से भरे हुए थे, ये महाराव राजा उम्मेदसिंहजी के लिये पथ्य थे इसी लिये उन्होंने कुछ समय के लिये अपने संकल्प को रोक रक्खा परंतु क्या दुर्जन शल्य जी ने इनकी सहायता के लिये मरहटों को बुलाने का प्रयत्न किया? नहीं और इसीलिये "वंश भास्कर" में लिखा है कि "इनके नाम पर दो सो रुपये नित्य जयपुरवालों से पाने के लालच में पडकर इन्होंने रोका।" चाहे यह अनुमान सत्य हो परंतु इसके सिवाय उन्होंने एक वार के अतिरिक्त, जिसका वर्णन तीसरे खंड के दूसरे अध्याय में है कभी उम्मेद सिंहजी की सहायता न की।

जिस सहायताका वर्णन इस खंड के दूसरे अध्याय में किया गया है उसे वहां न बतला कर टाड साहब जयपुरी सेना का अमरपुर के मैदान में

* कुटुंब में पीढियों के हिसाब से चाचा।

उम्मेद सिंहजी से युद्ध होकर इनके हार जाने बाद उल्लेख करते हैं। मैं नहीं कह सकता हूँ कि उन्होंने ऐसा क्यों लिखा है परंतु पूर्वापर विचार करने से मुझे जो मालूम हुआ वही सिल सिला मैंने ग्रहण किया है। उन्होंने लिखा है कि:-

"कोटे के जिन दुर्जनशल्य जी ने ईश्वरीसिंहजी और उनके सहायक आप्पा सेंधिया से कोटे की रक्षा में बहुत वीरता दिखाई थी, इसबार सदा की अपेक्षा उम्मेद सिंह जी की सहायता के लिये अधिक कमर कसी। कोटा नरेश की सभा के—अध्यक्ष और उनके—प्रधान सेनापति भाट जो स्वयं युवा हाडा की वीरता पर बहुत उत्तेजित हो चुका था उम्मेद सिंहजी को उनके पिताका राज्य फिर दिलाने के लिये तलवार लेकर तैयार हुआ। इसके अनुसार कोटे की समस्त सेना इसी भाट के अधिकार में उम्मेदसिंह जी के भाई बंधों और मित्रों के साथ होकर बूँदी लेने को तैयार हुई। निरंतर के—अनेक वार के आक्रमण से बूँदी का कोट पहले ही छिन्न भिन्न हो चुका था इस कारण इस वार इन्हें बूँदी लेने में अधिक कठिनता न पडी। तारागढ किले पर मार करने में भाट सरदार पर गोली लगी और यह गोली भी उसकी सेना के किसी दुष्ट के हाथ से लगी। भाट मारा गया परंतु उसपर कपडा डालकर उसकी मृत्यु छिपा दी गई। इन आक्रमण करने वालों ने भारी हमला किया और इसतरह दलेल सिंहजी के भागजाने पर सिंह की उम्मेद पूरी होगई। उम्मेद सिंह जी अपने पूर्वजों की गद्दी पर जा बिराजे। दलेल सिंहजी ने आमेर जाकर अपने मालिक की शरण ली। जयपुर नरेश ने खत्री केशवदास के अधिकार में बूँदी पर तुरंत ही सेना भेजी और जिस समय उम्मेद सिंह जी अपने राज्य की रक्षा के लिये संभलने भी नहीं पाये थे बूँदी पर फिर ढूंढार का झंडा आ उडा। इस बार लज्जित होकर दलेल सिंहजी ने राज्य लेने में कलंक का टीका अपने शिर पर न लगवाया। अब उम्मेद सिंह जी फिर कभी मेवाड में और कभी मारवाड में भटकने लगे किन्तु उन्हों ने अपना राज्य पाने के लिये युद्ध करने का संकल्प न त्यागा।"

बूँदी-के इतिहास में कोटे की भाट के अधिकृत सेना की सहायता से उम्मेदसिंहजी के बूँदी पाने का उल्लेख नहीं है। खत्री केशवदास के अधिकार में जयपुर की चढाई होकर उम्मेदसिंहजी के हाथ से फिर बूँदी छूटने का वर्णन नहीं है। हां बूँदी के इतिहास से मालूम होता है कि इस घोर संकट के समय भी अमरपुरा युद्धका वर्णन करके इन्हें सुनाने वाले एक चारण को इन्होंने बहुत धन दिया अपनी सवारी का घोडा दिया, मोतीका चौकडा दिया, हाथों के कडे दिये, उसके डेरे पर जाकर उसका सम्मान किया और उसे वचन दिया कि जब हम फिर बूँदी के सिंहासन पर बैठेंगे तब तुम्हें हाथी देंगे।" इसके बाद मधुकर गढ छोड कर भैंसरोडगढ की सीमा पर शिकार खेलते २ फिर बेगूँ गये। उन दिनों इस ओर बहुत भारी अकाल पड रहाथा। इन्होंने भी खर्च-से तंग आकर अपना दरियाव नामक हाथी अपने पुरोहित दयाराम के साथ बिकने के लिये उदयपुर भेजा। विना राज्य के वर्षों से यह कष्ट पारहे थे। इनके साथ खर्च भी राजसी था इस कारण इन्हें बहुत तंग आकर "मरता क्या न करता" इस सिद्धान्त के अनुसार **गैडोली लूटनी पडी** क्योंकि उस समय भारी अकाल था। इन जैसे विपत्ति ग्रस्त को उधार भी मिलना कठिन था। वहां से चल कर रण थम्भोर की सीमा में होकर खंडार में जाबसे।

अध्याय ७.

बूँदीका उद्धार।

जिस समय महाराव राजा उम्मेद सिंहजी इस तरह बूँदी उद्धार की चिन्ता में पडे हुए दिन काट रहे थे, जिस समय यह सैर शिकार से और शास्त्र चिन्तन से जी बहला कर सदा अपनी इष्ट सिद्धि के लिये भगवदाराधन में लग रहे थे इनके पुरोहित दयाराम ने जो इनका हाथी बेचने के लिये

उदयपुर गया हुआ था एक उद्योग किया । उन्हों ने रानाजी को सलाह दी कि आपके भानजे माधव सिंहजी का स्वत्व मारकर ईश्वरी सिंहजी जयपुर के राजा बन बैठे हैं इसलिये उन्हें अपना स्वत्व दिलाने के लिये और महाराबराजा उम्मेदसिंह जी को बूँदी दिलाने के लिये जयपुर पर चढाई करना चाहिये । इस बात में शाहपुरे के राजा भी सहमत हुए और होलकर की सहायतासे और मरहटा मल्हार राव के पुत्र खंडूजी की मदद से जयपुर पर चढाई की गई । इस युद्ध में उम्मेद सिंहजी भी संयुक्त हुए । राजमहल में लडाई अवश्य ही गहरी हुई पर इस युद्ध में जयपुर वाले हारे नहीं । ईश्वरी सिंहजी विचलित न हुए और इसलिये उम्मेद सिंहजी को लौटकर फिर कोटे के राज्य में मधुकर गढ आजाना पडा । यहां प्रसंग आपडने पर लिख देना चाहिये कि कोटे वालों ने चाहे उम्मेद सिंहजी को और तरह की सहायता न दी हो परंतु उन्हों ने अवश्य ही इनके कुटुम्ब को कोटे में आश्रय दिया और इन्हें कोटे के राज्य में रहने दिया । यह महाराव दुर्जनशल्य जी की उदारता है कुटुम्ब वात्सल्य है, दानाई है । यह उनका प्रशंसनीय कार्य है और इसके लिये वह धन्यवाद के योग्य हैं ।

जयपुर नरेश महाराज ईश्वरीसिंहजी अभी तक जिससे भिडते थे उसीसे जय लाभ करते थे इसलिये अवश्य ही उनके दिन सीधे थे और साथ ही विजय भी उनके चरणों में लोटती थी परंतु जिस तरह जगत् के जीतनेवाले को भगवान कामदेव ने पुष्पों के बाणों से जीत लिया उसी तरह वीर पुरुषों का शिकार करनेवाले पराक्रमी ईश्वरी सिंहजी एक अबला के नयनों का शिकार बन गये । बात यह हुई कि जिस केशव दास कामदार की बुद्धि से ईश्वरीसिंहजी इतने बडे २ काम करते थे उसी की चुगलियां खा खाकर लोगों ने उनका मन इस से फेर दिया । लोगों ने कहा कि यह माधवसिंहजी को जयपुर और उम्मेद सिंहजी को बूँदी दिलाना चाहता है और इसलिये इस के नाम छिप २ कर चिट्ठियां आतीं जातीं हैं । यद्यपि यह बात झूँठी निकली परंतु फिर भी ईश्वरी सिंहजी ने उसे अमात्य पद से अलग कर के मरहटों के पास विकालत पर भेज दिया और इस का पद हरगोविन्द नाटानी को दिया । इसे अपना अमात्य बनाने में चाहे

ईश्वरीसिंहजी का यह मतलब नहो परन्तु उसकी एक युवती लडकी पर वह आसक्त होगये। उन्होंने इसे अपने पास बुलाया, अपने पास रक्खा और इस रमणी के रमण में मतवाले होकर सब काम काज भूल गये। हरगोबिन्द ने, उसके पुत्रों ने इसका कैसा बदला लिया और इस कुकर्म से **ईश्वरीसिंह जी** की राजेश्वरता कैसे नष्ट भ्रष्ट हुई सो आगे के अध्याय से मालूम होगी परन्तु समझ लेना चाहिये कि यहींसे, इसी दिन से उनके पतन का उनके **गिराव का आरंभ** हुआ। वह युवती रात्रि में इनके महलों में छिपकर आती थी और दिन में अपने घर रहती थी किन्तु इन्हें दिन भर उससे आंखें लडाये बिना चैन नहीं पडती थी इसीलिये उन्होंने जयपुर के विशाल राजप्रासाद में एक ऊँचा बुर्ज बनवाया। बस इसके बाद दिन भर उस बुर्ज में बैठकर उस युवती से आंखें लडाना और रात भर उसे अपने अंक में रखकर **इसके साथ रमण करना** उनका राज्य प्रबंध से भी बढकर काम था।

दिल्ली के अस्तप्राय बादशाह से बाईस लाख रुपया दंड लेने बाद जिस समय मरहटों की सेना को लेकर मल्हारराव होलकर जयपुर राज्य के अंतर्गत निवाई नामक गांव में आये उम्मेद सिंहजीने उनसे कहला भेजा कि **"बूँदी हमें दिलाओ"**। इस बात को सुन कर होलकर ने इनको बुलाया। यह सं. १९०५ में चैत्र शुक्ला १२ को गये और उन्होंने इनकी **तीन कोश तक पेशवाई** (अगवानी) करके बडा सत्कार किया। उन्होंने केवल इतना ही न किया बरन् ईश्वरी सिंहजी से कहलाया और जोर देकर कहलाया कि:--

"अब बूँदी उम्मेद सिंहजी के लिये छोडदो।"

इनदिनों में चाहे ईश्वरीसिंहजी बहुत ही जोरों पर थे परन्तु क्या मरहटों के प्रताप को सह सकते थे, क्या इनके आंतक के आगे उनकी कुछ चल सकती थी? जो होलकर दिल्ली के बादशाह की नाडी में बोलता था, जिसके आगे बडे २ घबडाते थे उससे ईश्वरीसिंहजी सामना करते? कदापि नहीं। हरगिज नहीं! बस इसीलिये उन्होंने भगवान की शपथ खाकर कहा कि:--

"मैं उम्मेद सिंहजी के लिये बूँदी खाली कर दूँगा । आप दक्षिण की ओर कूंच कीजिये ।"

मैं नहीं कह सकता हूं कि होलकर को दक्षिणकी ओर टाल कर ईश्वरीसिंहजी समय ही टालना चाहते थे वा नहीं परन्तु ईश्वरी सिंह जी के कथन पर विश्वास करके जब मल्हाररावने दक्षिण जाते समय बूँदी के राज्य में आकर उम्मेदसिंहजी की बूँदी में दुहाई फेरने के लिये अपना कामदार भेजा तब बूँदीवाले लडने को तैयार हुए । मल्हारराव यदि चाहते तो यहां की सेना को कुचल कर उसी समय उम्मेद सिंहजी का डंका पिटवा देते परंतु "चोर को मारने के बदले उन्होंने चोर की माको मारना उचित समझा ।" उन्होंने इसलिये **जयपुर पर चढाई** की । इस चढाई में महाराव राजा उम्मेद सिंह जी अपने शूर सामंतों सहित साथ थे और शाहपुरा नरेश साथ थे । इनका डेरा जयपुर के निकट वगरू में हुआ और जब ईश्वरी सिंहजी न समझे तब **गहरी लडाई ठन-गई** । युद्ध के लिये अभी सारी सेना नहीं गई । अभी गये होलकर सेना के नायक गंगाधर भट्ट आठ हजार सेना लेकर । सेना की चढाई सुनकर जयपुर की सेना लडाई के मैदान में आई और एक ही धावे में गंगाधर राव के पैर उखड गये । इस के भाग जाने पर भी इस बार ईश्वरी सिंह जी के मन में गहरा दगदगा था । इस बार वह समझे थे कि लडाई में इतने बलवान शत्रु से पार पाना कठिनहै इसलिये उन्होंने अपनी सहायता के लिये भरतपुर से सूर्य मल्लजी जाट को बुलाया । उनसे कहलाया कि:—

"यदि आप न आयंगे तो हम शत्रु से हार जायं गे ।"

सूर्य मल्लजी आये और दोनों ओरके बहादुरों ने बडीही बहादुरी दिखाई इस युद्ध का वर्णन बडा ही ओज वर्द्धक है । बूँदी के इतिहास में खूब विस्तार से लिखा हुआ है परंतु मलहाररावकी सेना में इसवार आगे पडकर लडने वाले मरहटे थे । उन्हींके बल विक्रम से इसवार विजय हुआ था । अवश्य ही महाराव राजा उम्मेद सिंहजी ने इस युद्ध में भी अमरपुरे के संग्राम की तरह अपने हाथों की सफाई से रण देवी को वीर मुँडोंकी बलि

चढानेमें कसर नहीं रक्खी और साथ ही इन्होंने अपनी गोलियों के ओलों से शत्रु सेना को भाड के चने की तरह भून डाला परंतु इसवार जब वह औरों के साथ चढे थे तब इतिहास कर्ता मरहटों के ही यश का गान करेंगे। मैं इसी विचार से इस विषय का विस्तार नहीं करना चाहता हूँ। इस का परिणाम यह हुआ कि **जयपुरकी हार हुई।** हार हुई और गहरी हार हुई। और लाचार होकर ईश्वरी सिंहजीको **बूँदी छोडनी पडी।** उन्होंने मरहटों के दबावसे ही उम्मेद सिंहजी के डेरे पर आकर **इन्हें टीका** दिया, हाथी, घोडा, सिरोपाव और आभूषण दिये और इसतरह **वर्षों का झगडा** मिटगया।

अमरपुरे के संग्राम के अनंतर उम्मेद सिंहजी ने होलकर की सहायतासे बूँदी क्यों कर प्राप्त की, "हाथी के पेटमें से सिंहने" किसतरह फाडकर बूँदी निकाली—इसका वर्णन टाडसाहब ने जिस तरह लिखा है उसका यहां उल्लेख करके बूँदी के इतिहास की उनके लेखसे अब तुलना करना चाहिये। टाड साहब ने लिखा है कि:-

"उम्मेदसिंहजी फिर राज्य हीन होकर इधर उधर भटकने लगे। कभी सहायता के लिये मेवाड गये और कभी मारवाड परन्तु इन्होंने अपना राज्य छीन लेनेवाले से **संग्राम करने का विचार न छोडा** और अपना पैतृक राज्य पाने के लिये यह निरंतर, बे रोक उद्योग करते रहे। इसी विचार से यह विनोदिया (?) गये जहां रानी **कछवाही जी** इनके पिता की रानी, इनके सब संकटों की जड रहतीं थीं। अब उनके **मन में भी घृणा थी** और जगत् भी उनसे घृणा करता था। अब समय निकल जाने वाद शोक किया करती थीं कि मैं ही अपने पति के, अपने और अपने घराने के **नाशका कारण** हुई। उम्मेद सिंहजी उनसे जाकर मिले और इस भेट से उनकी **आत्म निन्दा का** कष्ट और भी बढ गया। उम्मेद सिंह जी के कष्टों ने, इनके पराक्रमने और इनकी संग्राम निपुणता ने, जो कछवाहीजी के बनावटी लडके को गोद लेकर गद्दी का वारिस बनाने की दुष्ट लालसा से पैदा हुए थे उनके हृदय में शोक, पश्चात्ताप

और सहानुभूति जागृत करदी । कछवाहीजी ने अपने कामों की मरम्मत करने को बुधसिंहजी के पुत्र के लिये दक्षिण से सहायता मांगने को जाने का संकल्प किया । जब वह नर्म्मदा के किनारे पहुंची वहां एक शिला-लेख गडा हुआ था । जिस पर लिखाथा कि कोई भी स्त्री जाति नर्म्मदा के पार न जावै क्योंकि यह भी सिंधु नदी की तरह "अटक" है । उन्होंने सच्ची राजपूतानी होकर उस खंभे के टुकडे टुकडे करडाले । उसे नर्म्मदा में फिकवादिया । उन्होंने सोचा कि जब जंग नहीं है तब रोकटोक की क्या आवश्यकता है । वह इसतरह चलकर मल्हारराव होलकर के डेरों में पहुंची । भारत वर्ष के एक बहुत प्रभावशाली हिन्दूराजा जयसिंह की बहन लुटेरोंके झुंडके मुखिया गडरिये से प्रार्थी हुई—नहीं उन्होंने विपत्ति ग्रस्त उम्मेदसिंहजी को बूँदी दिलाने के लिये उसे **अपना भाई बनाया** । मल्हारराव यद्यपि उच्चकुल में उत्पन्न नहीं हुए थे परंतु उनमें ऐसे गुण अवश्य थे । उन्होंने कछवाहीजी की सब बातें स्वीकार कीं । बूँदी के इतिहास में नहीं लिखा है कि इस काम में उच्च कुल की राज कुमारीका आमेर के होन हार नरेश के साथ संबंध ठहरने में मेवाड के राना ने क्यों कर सहायता दी । उनमें केवल अपने ही नरेश के उत्कर्षका वर्णन है । कुछ भी हो परंतु हमैं (टाड साहबको) (होलकर की वीरता पर ध्यान दिये विना ही) संदेह है कि यदि उन्हें रानाजी से चौसठ लाख रुपये जो उन्होंने ईश्वरीसिंहजी को निकाल कर रानाजी के भानजे माधव सिंहजी को गद्दी दिलाने के लिये घूस लेना ठहराये थे न मिलते तो मल्हार राव अपने झुंड को लडाई के लिये न चढाते ।"

" कुछ भी हो परंतु बूँदी के इतिहास कहते हैं कि कछवाही रानी ने बूँदी छुडाने के लिये सेना भिजवाने के बदले मरहटों को जयपुर पर चढवाया । समय इनके अनुकूल था । ईश्वरी सिंहजी की बदचलनी से उनके शत्रु खडे होगये थे । उन्हीं लोगों ने बूँदी और मेवाड से मिलकर काम करने का अवसर साधा क्योंकि उन शत्रुओंका इनके साथ गुप्त व्यवहार था ।"

आमेर नरेश ने ज्योंही मरहटों की चढाई की खबर सुनी वह अपनी राजधानी छोडकर रणभूमि में बाहर निकले किन्तु सेना की संख्या उन्हें जितनी बतलाई जाती थी उतनी न निकली और इस बात की ईश्वरीसिंहजी को उस समय खबर हुई जब वह बगरू के मैदान में आकर घिर गये। उन्हें समय निकल जाने पर विदित हुआ कि धोखा दिया गया है। उन्हें मालूम होगया कि एक दीवान को मार कर दूसरा नियत करने में मैंने जो विश्वास किया है उसका मुझे बदला मिलगया। जयपुर के भाट ईश्वरी सिंहजी के गिराव का कारण इस तरह कहते हैं:—

"जब ही छोडी ईसरा, राजकरण की आस। मंत्री मोटा मारिया, खत्री केशवदास।"

उनके दीवान के पुत्र हरसहाय और गुरुसहाय ने सेना की संख्या झूंठ मूंठ अधिक बतलादी और कच्ची सेना से, दुर्बल शक्ति से आक्रमण करने पर उत्तेजित किया। शत्रु सेना की संख्या अधिक होने पर उसका सामना करना पागलपन है। उन्हें अपने ही एक जागीरदार के दुर्ग की शरण लेनी पडी। दश दिन के घेरे के बाद ईश्वरीसिंहजी केवल बूँदी छोड देने ही पर विवश न हुए बरन उन्हें उम्मेद सिंहजी के राज तिलक करने उपरान्त यह लिख देना पडा कि मैं और मेरे उत्तराधिकारी बूँदी से सब तरह स्वत्व छोडते हैं।"

बूँदी के इतिहास "वंशभास्कर"के आधार पर, टाड साहब के लेख का भाषान्तर करके इस अध्याय में मैंने जो कुछ लिखा है उसमें से जयपुर के इतिहास संबंधी बातों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे यहाँ प्रसंग वश लिखी गई हैं और उनका इस चरित्र से कुछ संबंध नहीं है किन्तु एक विषय में टाड साहब के मत का "वंशभास्कर" कर्ता के मत से **धरती आकाश का सा अंतर** है। बूँदी के इतिहास कर्ताओं ने लिखा है कि उम्मेद सिंहजी ने स्वयं उद्योग करके मरहटों की सहायता प्राप्त की और टाड साहब कहते हैं कि रानी कछवाही जीने होलकर को अपना भाई बनाकर जयपुर पर उसकी सेना चढवाई। टाड साहब अपने लेख में जब बूँदी के इतिहास का संकेत करते हैं तब मैं मानसकता हूँ कि उन्हें कहीं से ऐसा

लेख प्राप्त हुआ होगा परंतु मैं जहां तक जानता हूँ बूँदी के इतिहासों में "वंश-भास्कर" और "वंशप्रकाश"—ये दोनो बहुत प्रामाणिक ग्रंथ हैं और बहुत ही छानबीन के पश्चात् तैयार किये गये हैं इस लिये मैं इस जगह इन्हीं पर अधिक भरोसा करता हूँ। मरहटों की सेना चढवाने में बूँदी के इतिहासवालों ने रानी कछवाही जी के उद्योग करने की घटना बुधसिंह जी के चरित्र में लिखी है। उसका उल्लेख मैंने इस पुस्तक के दूसरे खंड के चौथे अध्याय में किया है। उस प्रसंग पर टाड साहब ने इस बात का उल्लेख न करके यहां कियाहै और बूँदी के इतिहास वालोंने यहां न लिखकर वहां लिखा है। इससे अनुमान होता है कि बूँदी के इतिहास के मत से रानी कछवाही जीने मरहटों की सेना चढवाने में अपने पति की सहायता की और टाड साहब के मत से उन्होंने पुत्र उम्मेद सिंहजी की सहायता की। इन दोनों में कौन ठीक है और कौन ठीक नहीं है- सो जानने का मेरे पास कोई साधन नहीं इस लिये मैंने अनुक्रम से दोनों के मत यथास्थान लिख दिये हैं। दोनों लेखोंकी तुलना करके पाठक स्वयं विचार करलें।

कुछ भी हो परंतु दोनों इतिहासों से निश्चय है कि महाराव राजा उम्मेद सिंहजीने इसबार मरहटों की सहायता से **बूँदी** प्राप्तकी और **स्थिररूप पर प्राप्तकी**। इस बार की ली हुई बूँदी फिर कभी उन के हाथ से और उन की संतान के **हाथ से न निकली**। इनके पिता के समय में और इन के समय में कुल छः सात बार बूँदी छूटी और इतनी ही बार ली गई। इस तरह सब मिलाकर संवत् १७७६ से संवत् १८०५ तक के **तीस वर्षों में छः सात बार बूँदी** छूटी। ये ही तीस वर्ष बूँदी राज्य के लिये यहां की प्रजाके लिये और यहां के राजकुल के लिये घोर संकट के थे। जिस समय जयपुर जैसे प्रबल शत्रुका विरोध था, जब जयपुर जैसा बलाढ्य राज्य बुध सिंहजी को और उनके पुत्र को जड से उखाड कर फेंक देने के लिये इनके पीछे पडा हुआ था तब यह उम्मेद सिंहजी जैसे बहादुर, राज नीति कुशल, शांत पुरुष का ही काम था। यह इसी लिये पैदा हुए थे। गत अध्यायों में उम्मेद सिंहजी के बल विक्रम का वर्णन हुआ है यह अठारह वर्ष

की उमर तक का है। आजकल राजा और राजकुमार जब इस उमर तक पूरी सी सूरत नहीं संभालते हैं अथवा सूरत संभालने से पहले ही बिगड जाते हैं तब उम्मेद सिंहजी ने तेरह वर्ष की उमर से आरंभ करके अठारह वर्ष की उमर में—केवल पांच वर्ष के घोर परिश्रम से, भारी पराक्रम दिखा कर **बूँदी का उद्धार** कराया। बीर हाडाओंका फिर झंडा बूँदी पर उडाया और सदा के लिये उडाया।

अध्याय ८.



उम्मेदसिंहजी का राज्याभिषेक।

महाराव राजा उम्मेद सिंहजी के बूँदी राज्य शासन का वर्णन आरंभ करने पूर्व मरहटों के दबाव से जयपुर नरेश को जो एक और बात करनी पडी थी उसका उल्लेख करना यहां आवश्यक है। महाराज ईश्वरीसिंहजी को बूंदी छोड कर लिखावट लिखदेनी पडी, उम्मेदसिंहजी के लिये राज तिलक के निमित्त हाथी घोडे सिरोपाव और आभूषणादि दस्तूर भेजना पडा, स्वयं इनके डेरे पर जाना पडा और "चुगेगी या पकड चुगाऊँ" इस कहावत से जो कुछ मल्हाररावजी ने कहा था करना पडा। इसतरह सब कुछ हुआ परंतु एक घटना ऐसी हुई जिससे फिर भी, ऐसी दशा में भी ईश्वरी सिंहजी के मन की, लोभ की थाह मिले बिना नहीं रह सकती। उन्होंने "हाथी देकर अंकुश पर झगडा" करने के लिये बूंदी राज्य में से **गैंडोली का परगना** किसी को देना चाहा। इस बात की जब मल्हाररावजी को खबर हुई तब उन्होंने फिर ईश्वरीसिंहजी को दबाया। उन्होंने ईश्वरीसिंहजी से स्पष्ट कह दिया और कह कर उन्हें चुप कर दिया:—

"वसुमति बुंदिय देश की लेशहु तुम्हहि मिलैन, कोविद रहत करार में ठेले हड्ड ठिलैन,"

बस ईश्वरीसिंहजी ने चुप होकर अपना विचार छोड दिया । उन्होंने बूंदी से अपना थाना उठाने के लिये सरदार भेजे । ईश्वरीसिंहजी ने कार्त्तिक शुक्ला १२ को बूंदी छोड देनेका करार किया था । उसी के अनुसार मार्ग में ठहरते ठहराते मल्हाररावजी उम्मेदसिंहजी के साथ **बूंदी** आये । जिसदिन इनकी सेना दबलाने के पडाव से चली इन्हें **अच्छे शकुन** हुए । इन सबने नगर के बाहर आकर डेरा दिया । उम्मेदसिंहजीने उस दिन नगर के समस्त ब्राह्मणों को भोजन करवाया । इस ओर जब ब्रह्म भोज होरहा था तब दूसरी ओर जयपुर के सरदार हरनाथ सिंहजी नरूका के साथ मल्हाररावजीने अपना सरदार संतू किला तारागढ खाली कराने के लिये भेजा । अवश्य ही इन्हें अब किला छोड देने में कुछ आना कानी नहीं करना चाहिये था परंतु पराई थाती निगल जाने पर भी लोभी बनिये को पराया माल देने में जैसे छाती फटती है इसी तरह इनकी छाती फटने लगी । किले के सिपाहियोंने कहा कि "हम चढा हुआ वेतन लेकर निकलैंगे ।" इस पर मल्हाररावको फिर तोपों पर जंगी चढानी पडी । संतू ने हरनाथ सिंहजी को पकडलिया और इसतरह **हाडाओं की विजय पताका** बूँदी के किले पर फहराकर तारागढ के किले पर से आकाश के तारों से बातें करने लगी । नगर भर में और राज्य भर में **उम्मेदसिंहजी की दुहाई** फिरगई । **कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी**—उसी सर्व सिद्धा त्रयोदशी को संवत् १९०५ में वेद विधि से महारावराजा उम्मेदसिंहजी का **राज्याभिषेक** हुआ । देश की प्रथा के अनुसार, कुल की चाल के अनुसार और शास्त्र की विधि के अनुसार जो २ कार्य, जो २ उत्सव एक महाराजाधिराज के राज सिंहासन पर विराजते समय होते आये हैं वे सब ही हुए । आज बूँदी में बडा आनंद था, आज यहां की प्रजा, यहां का राज कुल, यहां के राजकर्मचारी फूले अंग नहीं समाते थे । वर्षों तक घोर विपत्ति सहने के बाद भगवान ने इनकी **इष्ट सिद्धि** करके आज का शुभ दिन दिखाया था । वास्तव में बूँदी राज्य के लिये वह दिन बहुत ही बढकर है।उस दिन प्रतिवर्ष बूँदी में बहुत बडा उत्सव होना चाहिये । जो उत्सव १९६ वर्ष पहले उसदिन हुआ था वही प्रति

र्ष होना चाहिये। उस मंगल दिवस को चिरस्मरणीय रखने के लिये उस दिन प्रति वर्ष कुछ न कुछ उत्सव अवश्य होना चाहिये। उस दिन बूँदी का उद्धार हुआ था। उस दिन नगर वालों ने हाट, बाट गली कूँचों को, अपने२ घरों को सजाया था। उस दिन राजा के महलों से लेकर गरीब की झोंपडी तक में आनंद था। राव नारायणदासजी ने जिस जगह राजमहल में समर कंद जैसे बलवान सूबेदार को मारा था वही जगह राज्याभिषेक के लिये तैयार की गई थी। वहीं वेद विधि से होमादि होकर राज्याभिषेक हुआ। शास्त्र की जो विधि हुई उसका वर्णन करके इतिहास के पृष्ठ रंगने से आज कल के लोग प्रसन्न न होंगे इसलिये एक बात लिखकर मैं अपनी लेखनी को आगे चलाऊंगा। वह बात यही कि शास्त्र कार्य के बाद विजयी मल्हाररावजी ने और मित्र शाहपुरानरेश ने महारावराजा उम्मेदसिंहजी के तिलक किया और अपने पूर्वजों के राजसिंहासन पर आसीन होते देखकर इन्हें अंतःकरण से वधाई दी। इनके बाद जिन २ रजवाडों के वकील यहां उपस्थित थे उन्होंने, सबने यथाक्रम तिलक किया। सब लोगों ने महारावराजा उम्मेदसिंहजी को नजरें कीं, न्योछावर की। जो उन दिनों यहां मेहमान थे उन सब को दूसरे दिन भोज दिया गया। जिस तरह तिलक करने में होल्कर, जयपुर नरेश के भाई माधवसिंहजी और शाहपुरानरेश आदि थे वैसे ही प्रेमपूर्वक नजरें करने में भी थे। उम्मेदसिंहजी ने होलकर की कुटुंब सहित **पहरावनी** की और एक हाथी, दो घोडे तथा सिरोपाव दिया। उन्हें आभूषणों में **वही सिर-पेच** दिया जो महाराव राजा बुधसिंहजी को बादशाह शाहआलम से मिला था। उनकी सेना के अफसरों का और उनके सैनिकों का खूब सत्कार किया और इसतरह अपनी उदारता करके सबको **लखलूट** खर्च से प्रसन्न करदिया। वे सब अपने २ देश को लौट गये।

इन्होंने इस तरह केवल महमानों का ही सत्कार न किया वरन अपने साथ के जिन सर्दारों ने, जिन भाई बंधों ने, जिन कर्म चारियों ने और जिन प्रजा जनों ने **विपत्ति के समय** इनका साथ दिया था उनका इन्होंने जागीरों से, इनामों से, वस्त्रों से, आभूषणों से, घोडों से और जो जिस योग्य हुआ उसे वही देकर **सत्कार** किया। प्रजा में डुगडुगी पिटवादी कि:--

"अब कोई किसी को न सताने पावेगा। सब लोग आनंद से रहैं। सताने वाले को अवश्य दंड दिया जायगा और सब के जान माल की पूरी रक्षा की जायगी।"

बस इसको सुनकर सब लोग **आनंद में मग्न** होगये। इसके अनंतर जब सब महमान बिदा होगये तब उन्होंने "जय श्रीकृष्ण" की जगह **"जय श्रीरंगनाथजी की"** कहना, कहलाना प्रचलितकिया। राज्य की मुहर में, कागजों में और जहां २ आवश्यकता थी वहां २ सर्वत्र **श्रीरंगनाथ**जी का नाम लिखा लिखाया जानेलगा। इसका कारण पाठक पहले ही जानचुके हैं। कारण यही है कि विपत्ति के समय जयपुर वालों से डरकर **वल्लभ संप्रदाय** के आचार्य गोस्वामी गोपीनाथ जी इन्हें मंत्र दीक्षा देने नहीं आये थे और उनके न आने पर इन्होंने **रामानुज संप्रदाय** की दीक्षा ली थी इसलिये इस प्रकारसे इन्होंने उसी का प्रचार किया। तब से बूँदी के सब नरेश इसी संप्रदाय के अनुयायी होते चले आये हैं। इन्होंने केवल इतना ही न किया वरन इनके पूर्वजों के समय में जिन २ लोगों को जितनी २ भूमि दान में मिलीथी और उसे इस राज विप्लव के समय दलेलसिंहजी ने अथवा जयपुर वालोंने खालसे कर लिया था उसे फिर देकर हजारों लाखों ब्राह्मणों से आशीर्वाद लिया। इसमें उन्होंने किसी संप्रदायके, किसी **मता-मत के पक्षपात** पर बिलकुल ध्यान न दिया। भूमि वालों को खोज २ करके, बुला २ करके उन्हें **अपनी २ भूमि** देदी। उनके हाथसे उनके पिताके हाथ से राज्य छूट जाने के समय शत्रुओं ने जो भूमिदान करदी थी उसे भी खालसे न किया। उनका यह कार्य अधिक प्रशंसा के योग्य है।

टाड साहब लिखते हैं कि—"जिस समय बूँदी में राज्याभिषेक का उत्सव हो रहा था जयपुर में दलेलसिंहजी का देहान्त होगया। वहां उनकी चिता जल गई। राजा ईश्वरीसिंहजी भी इस तरह का अपमान सहकर बहुत दिन न जी सके। जहर देने से उनका देहान्त होगया और इस तरह उनकी मृत्युके साथ जयपुर का बूँदी और कोटा लेने का विचार भी समाप्त हो गया।"

अध्याय ९.

कोटे वालों का प्रपंच।

जिस समय बूँदी में महारावराजा उम्मेदसिंहजी का शासन आरंभहोने से नगर और राज्य में **शांतिकांड का** बाजा बज रहाथा **मारवाड में एक नया कलह** खडा हुआ। वहां के नरेश महाराज अभयसिंहजी का अपने ही भाई बखतसिंहजी से मन मुटाव हो गया। बडे लोग ठीक कहगये हैं कि "दुनिया में भाई के बराबर हितु नहीं है और उसके बराबर कोई शत्रु भी नहीं।" बस यही दूसरी बात इन भाइयों के विषय में चरितार्थ हुई। अभयसिंहजी के छोटे भाई बखतसिंहजी **बादशाही सेना** लेकर मारवाड पर चढ आये। छोटे भाई की धृष्टता देखकर बडे भाई घबडा उठे। उन्होंने अकेले सामना करने में अपने को अयोग्य समझा इस कारण महारावराजा उम्मेदसिंहजी को लिखा कि:—

"होलकर को सहायता के लिये साथ लेकर आप शीघ्र आइये।"

इस बात पर होलकर का इनसे पत्राचार हुआ, दोनों की आपुस में सलाह हुई और दोनों ही अपनी २ सेना सज कर सहायता के लिये गये।

इन दोनों ने उन दोनों से मिलकर आपुस का झगडा निपटाया और इस तरह दोनों सगे भाई इन दोनों की बदौलत दोनों सेनाओं की मारकाट तथा खून खराबी से बच गये। लडाई सच मुच ही बच गई परंतु इस जगह भी उम्मेदसिंहजी को सहसा अपनी **वीरता दिखाने** का अवसर मिलगया। घटना इस तरह हो पडी कि एक शिवसिंहजी नामक राणावत सरदार इन दिनों इनके पास रहते थे। उन्हों ने किसी समय किसी कारण कान्हावत राजसिंहजी के पिता को मार डाला था। **"बाप का वैर"** लेना राजपूतों को विरासत में मिलता है वीर राजपूत "बापके घातक" को मारने में कदाचित् गया श्राद्ध से भी बढकर कर्तव्य समझते हैं यही राजसिंह जी इस समय मारवाड की सेना में थे। चाहे अपने स्वामी के मित्र की सेना में ही सही परंतु बाप के घातक को देखकर राजसिंहजी का खून उबल उठा।

उनके शिरपर हत्या सवार होगई और इसी लिये उन्होंने शिवसिंहजी जिस समय महारावराजा के डेरे पर आ रहे थे गोली से मारडाले। "मार कर भाग जाना और खाकर सो रहना" इस नीति के अनुसार अपने पितृघाती का बध करके राजसिंहजी भागे तो सही परंतु भाग कर भी अपने प्राण न बचाने पाये । जिस समय अपने आश्रित और अपने सेवक शिवसिंहजी का बध उम्मेदसिंहजीने सुना आप **संध्या बंदन** कर रहे थे । चाहे वह उस समय संध्या करते थे और अचल आसन से ईश्वराराधन करते थे परंतु मित्र का घात सुनकर उनका आसन डोल उठा । भगवान् हरि जिस तरह ग्राह के ग्रास से गज को बचाने के लिये स्वर्ग को छोडकर, गरुड को छोडकर पयादे दौड आये थे उसी तरह इन्होंने भी पीताम्बर पहने, एक काछ खोले हुए ही, घोडे पर सवार होकर **उसका पीछा किया** । पीछा क्या किया यह घोडा फटकारते हुए **मारवाड की सेना में जा घुसे** । उन्होंने उस समय यह न सोचा कि मैं अकेला हूँ और मारवाडी हजारों हैं। उन्होंने यह न सोचा कि मैं अस्त्र शस्त्रों से पूरा २ सज्जित नहीं हूँ । वह बेधडक होकर जा घुसे और उन्होंने भागते हुए **राजसिंह का शिर काट लिया** । उस समय हजारों होने पर भी मारवाडियों से कुछ करते धरते न बना। चाहे वे लोग इस समय मुँह ताकते रहगये परंतु "पीठ पीछे की जुहार" करने के लिये उम्मेदसिंहजी के लौट आने बाद उन लोगोंने **लडाई ठान दी** । उम्मेदसिंहजी भी ऐसे समय में हटने वाले मनुष्य न थे । इन्होंने भी युद्ध का डंका बजाया । दोनों ओर से जिस समय संग्राम चेतने की अनी पर आगया होलकर ने बीच में पडकर, शांति पाठ करके बचा दिया । इस तरह दोनो का झगडा मिटाकर दोनो अपने २ देश को लौट गये । इनके बाद दोनो भाइयों ने क्या किया सो इस इतिहास से संबंध नहीं रखता है ।

उम्मेद सिंह जी अपनी सेना सहित बूँदी को लौटे । लौटकर उन्होंने चोरों का–डकैतोंका **दमन किया** । लुचों लफंगों को, चोर उठाईगीरोंको, डकैतों को कडी २ सजा देकर मोम बनादिया । दलेलसिंहजी के होते हुए भी, जयपुर की सेना होते हुए भी जो लुच्चे लफंगे राजाहीन बूँदी समझ

कर दीन प्रजा को सताते थे उन्हें मार कूट कर **सीधा कर दिया**। उनमें कई एक का अपराध क्षमा करदिया, कई एक को कडा दंड दिया और जिस जगह राजनीति के अनुसार जैसा करना उचित था वैसा करके प्रजा को प्रसन्न किया, दुष्टों पर अपना दबदबा जमाया और तीस वर्षकी गई हुई शांति को फिर स्थापित करके **अराजकता** मेटदी।

इस तरह शांति स्थापन करने के लिये अविश्रांत परिश्रम, पसीना झार परिश्रम करते २ गये बीते मन मुटाव को मिटाने के लिये, गई बीती बात को सचमुच गई वीती कराकर फिर से **कोटा बूँदी का पैत्रिक स्नेह** दृढ करने के लिये अपने दुःख के साथियों से मिलने भेटने के लिये यह **कोटे गये** और वहां से मिल भेटकर लौट आये। यद्यपि महाराव दुर्जन शल्य जी ने इनका राजोचित सत्कार किया परंतु उनका मन उम्मेद सिंहजी से प्रसन्न न था, वह इनका उत्कर्ष देखकर राजी नहीं होते थे और भीतर ही भीतर उनका मन जलता था इसलिये उन्होंने एक नया **बखेडा खडा** करने का प्रपंच रचा। दलेलसिंहजी तो उनदिनों मर ही चुकेथे। उनके पुत्र कृष्णसिंहजी नैनवां में पड़ेहुए अपने दिन काट रहेथे। दुर्जनशल्यजी ने सचमुच ही सज्जन शल्य बनने के लिये उनको उकसाया। उनके नाम पत्र लिखकर समझाया कि:—

"पडे क्याहो ? जरा सचेत होकर फिर तलवार पकडो। हम तुम्हारी सहायता पर हैं। यदि तुम कायरता छोडकर मर्द बनजाओगे तो हम तुम्हें फिर **बूँदी दिलादेंगे**। तुम्हें बूँदी दिलाने के लिये होलकर क्या उसके भी मालिक पूना नरेश श्रीमन्त नाना जी पेशवा से सहायता लेंगे।"

इस पत्र को पाकर जब एक ओर कृष्णसिंहजी की जीभ लपलपाने लगी तब उन्होंने दूसरी ओर श्रीमन्त के दीवान रामचन्द्र को पत्र लिखकर फोडा। उसकी मल्हार रावसे शत्रुता थी। इस आपुस की शत्रुताने, आपुस के द्वेष ने ही मरहटों के साम्राज्य को आकाश में चढा कर रसातल में पहुंचाया है। सच पूंछो तो भारतवर्ष भर में अपनी इक डंकी वजाकर बीर मराठे आपुस की फूट से ही गिरे हैं और इतना ही क्यों भारत का सत्यानाश-देशका

सर्वनाश इस **फूट की बदौलत** ही हुआहै। विदेशियों का देशमें राज्य स्थापित करने का मुख्य कारण फूट है। परदेशियों को फूट ही इस देश में अच्छा मेवा मिलाहै। महाराव दुर्जनशल्यजी ने इसी फूट से लाभ उठाकर एक नया प्रपंच खड़ा किया। उन्होंने दीवान रामचन्द्र को लिखा कि:—

"**मल्हारराव आपका** शत्रु है। यदि उसका काम उलट कर उसे नीचा दिखाना हो तो एक काम करो। मालिक की दृष्टि से उसे गिराना हो तो एक काम करो। उसने जयपुर को दबा कर उम्मेदसिंहजी को बूँदी दिलाने में बहुत बडी भूल की है। यदि आप उनसे छीनकर बूँदी **मुझे दिलादो** तो केवल मैं ही नहीं जयपुर क्या सब ही राजा आपके अधीन होजायँगे। यदि आपको यह कार्य करना इष्ट हो तो उदयपुर नरेश **महाराना जगतसिंहजी** को भी अपने में मिलालो क्योंकि उनके बिना श्रीमंत इस बात को स्वीकार न करेंगे।" रामचन्द्र इस बात को सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने महाराना को मिलाने की कुटिल नीति का समर्थन किया। चाहे फल इसका कुछ भी न हुआ परन्तु उन्होंने जब इस काम में सफलता न पाई तब एक दूसरा उद्योग किया जिसका वर्णन समय पडने पर आगे चल कर किया जायगा।

जिस समय इन पर इसतरह के प्रपंच रचे जारहे थे यह अपने राज्य के सुधार करने में जी जान से लगे हुए थे। यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि हमसे अपनी प्रजा प्रसन्न होगी, यदि हम से अपने सरदार उमराव राजी होंगे और यदि हमारे राज्य में आंतरिक शांति होगी तो बाहरी आक्रमण हमारा कुछ भी न कर सकेगा। जो काम इस अध्याय में पहले लिखे जा चुके हैं उनका संपादन इसी उद्देश्य से करने के सिवाय राजा प्रजा का एक मन करने के लिये इन्होंने एक काम और किया। इनके चचा जोधसिंह जी के साथ चैत्र शु० ३ को गणगौरी के तालाब में डूब जाने से बूँदी में यह त्योहार बंद होगया था। इसके बंद होजाने से दशहरे के सिवाय इस राज्य में ऐसा कोई उत्सव नहीं रहा था जिसपर जुलूस की, ठाटकी, राजसी दबदबे के साथ राजा की सवारी देखकर राजा के उत्सव में अपना उत्साह

संयुक्त करने का प्रजा जनों को अवसर मिलै इसलिये इन्होंने जिस वर्ष में इनका राज्य अटल रूपपर स्थापित हुआ उसके कुछ मास बाद अर्थात संवत् १९०६ में इन्होंने एक **नया उत्सव** स्थिर किया। उस वर्ष की श्रावण शुक्ला ३ और शुक्ला ४ को इन्होंने **तीज यात्रा** के नाम से भगवती पार्वती की मूर्ति बनाकर बडे ठाट से निकालना आरंभ किया। इनका स्थिर किया हुआ बूँदी के हाडाओं का यह जातीय त्योहार अब तक प्रचलित है। बूँदी की तीज राजपूताना में बहुत प्रसिद्ध है। उस दिन तीज माता के साथ श्रीमान् बूँदीनरेश की सवारी बडे धूमधाम से निकलती है। बूँदी राज्य की प्रजाके सिवाय दूर २ के लोग देवी के दर्शन करने और श्रीमान् की सवारी देखने आया करते हैं।

जब उम्मेद सिंहजी बूँदी में एक नया जातीय त्योहार स्थिर कर चुके तब इन्होंने **दक्षिण यात्रा का** संकल्प किया। यह यात्रा दक्षिण प्रान्त के तीर्थ सेवन के लिये थी, होलकरसे मिलने के लिये थी और पूना नरेश श्रीमंत का साक्षात करने के लिये थी। संवत् १९०६ के भाद्रपद शुक्ल में आपने अपने लघु भ्राता दीप सिंह जी को और कई एक अच्छे अच्छे शूर सामंतों को साथ लेकर दक्षिण की ओर गमन किया। इन्होंने बेगूं में एक रात्री बसकर उज्जैन में श्राद्धपक्ष भर निवास किया। उसी तीर्थ में पूर्वजों के लिये पिंडदानादि शास्त्र विहित कर्म किये। वहां से चलकर जब यह नवरात्रि की अष्टमी को नर्मदा नदी के किनारे पर पहुंचे तो होलकर के चौकीदारों ने इनसे पार उतरने का कर मांगा। इन्होंने कर वर कुछ न दिया। उनको पिटवाकर, उनकी नावें छीनकर यह पार उतर गये। वहां से चलकर यह श्री ओंकारेश्वर के दर्शन को गये। वहां से बुरहानपुर में ज्योतिर्लिंग के दर्शन करते और विश्वकर्मा की छवि निहारते हुए औरंगाबाद जाकर गोदावरी में नहाये। वहां से होलकर राज्य के बापगांव में पधारे। उस समय वहां मल्हाररावजी तो नहीं थे क्योंकि वह पूना गये थे परंतु उनके पुत्र खंडूजी ने इनका बडा सत्कार किया। बडी दूरतक इनकी अगवानी (पेशवाई) की। यह वहां इस तरह जब कुछ काल तक रह लिये तब मल्हाररावजी भी लौट आये।

इस तरह जब उम्मेदसिंहजी होलकर से मिलने भेटने में लगे हुए थे तब इनके पास खबर पहुंची कि इनका नियत किया हुआ कामदार हरजन जी हाडा इन्हीं की **प्रजा को सतारहा है** । वह प्रजा को लूटता है, साहु-कारों पर मिथ्या दोष लगाकर उनका धन हरण करता है, चोरोंसे, लुटेरों से मिलकर प्रजा को लुटवाता है और इस प्रकार से प्रजा का और **राज्य का सर्वनाश** कर रहा है। सुनते ही इन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। इन्होंने उसी समय अपने पास के सरदारों में से भजनेरी के जागीरदार शेरसिंहजी को भेजा। उन्होंने यहां आकर माटूंदे में हरजनजी को घेर लिया। घिरे हुए हरजन जी ने कोटे को पत्र लिख कर महाराव दुर्जनशल्यजी से सहायता मांगी। उधर **कोटेवाले** किसी प्रपंच से बूँदी लेने के लिये ललचा रहे थे इसलिये उन्होंने उम्मेदसिंहजी बिना मैदान सूना पाकर अपना मतलब गांठने को हरजन जी की सहायताके लिये सेना भेजी। सेना अवश्य आई परंतु उसे खाली हाथों लौट जाना पडा क्योंकि शेरसिंहजी ने कोटे की सेना के आने से पहले ही **हरजनजी को पकड कर** तारागढ़ में कैद करलिया था। कैद होने से उसका घमंड चूर २ होगया और तब शेरसिंहजी ने सुन्याय से यहां की दुःखित **प्रजा को शांत किया** और उसका संतोष किया।

इन्हीं हरजनजी के पुत्र **दलेलसिंहजी** दक्षिण यात्रा में महारावराजा उम्मेदसिंहजीके साथ थे। यह वह दलेलसिंहजी न थे जो जयपुरके पादसेवी होकर बूँदीके राजा बन बैठे थे। उनका इनदिनों देहान्त हो चुका था। किन्तु यह बूँदी के कामदार हरजनजी के पुत्र थे। पिता के कैद होजाने की जब दक्षिण में इनके पास खबर पहुंची तो इन्होंने **एक नया** प्रपंच रचना चाहा। इन्होंने उम्मेदसिंहजी से किसी काम के बहाने से दो दिन की छुट्टी लेली। ले तो ली परंतु यह कहीं गये नहीं। उम्मेदसिंहजी इन्हें अपने साथ लेकर होलकर सहित पूने जाना चाहते थे किन्तु यह उनके साथ गये नहीं। उन्होंने उम्मेदसिंहजी की अनुपस्थिति में दीपसिंहजीको बहकाने का प्रयत्न किया। चाहे उन्होंने इस काम में कोई बात उठा न रक्खी परंतु दीपसिंहजी उनके चंगुल में फसे नहीं। बस इसी कारण दलेलसिंहजी को वहांसे भागकर कोटे में

दुर्जनशल्यजी की शरण लेनी पडी। उसने वहां जाकर दीपसिंहजी को बूँदी का राज्य दिलाने का लालच देकर कोटे बुलाया परंतु उन्होंने अपने ज्येष्ठबंधु उम्मेदसिंहजी की सेवामें वह असल पत्र भेज दिया और इस तरह दलेलसिंहजी के कुकर्म पर घृणा की।

जिस समय उम्मेदसिंहजी मल्हारराव होलकर के साथ पूना गये तो मरहटा सेनापति नानाजी के चचा **सदाशिवराव**जी ने इनका बडा सत्कार किया, इनकी पेशवाई की और दश दिन तक इन्हें अपने यहां रखकर इनकी खूब पहुनई की। यह वहां से चलकर सितारा गये। वहाँ मरहटों के **प्रधान अमात्य नानाजी** थे। इन्होंने एक कोश तक इनकी अगवानी करी। उन दिनों सितारे के राजा साहूजी (पराक्रमी शिवाजी के भतीजे) का देहान्त हो चुका था इसलिये संभाजी के पुत्र **राजारामजी** को सितारे का राज मिला। इन्होंने उम्मेदसिंहजी का बहुत सत्कार किया और इन्हें अपना **आधा सिंहासन** बैठने के लिये दिया।

जिस समय उम्मेदसिंहजी दक्षिण यात्रा करके होलकर से, पेशवा से मिलने भेटने में लगे हुऐ थे **कोटे के महाराव** दुर्जन शल्यजी अपने **प्रपंच से खाली न** थे। ऊपर इसी अध्याय में यह लिखा जा चुका है कि उन्होंने पेशवा के अमात्य रामचन्द्र राव को मिलाकर रानाजी की सहायता से बूँदी लेने का मनसूबा गांठ रक्खा था। इसी मतलब को साधने के लिये उन्होंने उम्मेदसिंहजी को बूँदी में न पाकर अपना **वकील उदयपुर** भेजा। महाराना जगत्सिंहजी यद्यपि बहुत चतुर आदमी थे परंतु इस वकील की लच्छेदार बातों में आगये। उन्होंने कोटे वालों की बहकावट से **श्रीमन्त पेशवा** के नाम पत्र लिखा कि:--

"होलकर ने उम्मेदसिंहजी को बूँदी दिलाने में बडी भूल की है। यदि आप **बूंदी का राज्य कोटे** वालों को दिलादेंगे तो हम सब राजपूताने के राजा आपके आधीन हो जायंगे।"

इस बात का अवश्य ही श्रीमन्त पर कुछ असर उस समय न हुआ परंतु कोटे वालों की बहकावट से कुलशत्रु दलेलसिंहजी के पुत्र कृष्णसिंहजीने **राजा**

छिना **बूँदी पाकर** राजधानी पर चढाई की । उन्होंने आकर नगर घेर लिया और गोले बरसा २ कर वह कोटके कंगूरे उडाने लगे । उनकी ऐसी ढिठाई देखकर बूँदी के सेनापति संग्रामसिंहजी सोलंखी और मौजीरामजी कायस्थ से न रहा गया । इन्होंने तुरंत ही युद्ध करने के लिये नक्कारे पर चोब दिलवाई । बस देर क्या थी ! रण में मरने मारने पर सिपाहियों को मतवाला करनेवाला जुझाऊ बाजा बजने लगा । कृष्णसिंहजी को आशा थी कि लडाई के समय कोटे से सहायता के लिये **सेना आवैगी** परन्तु फौज के नाम से जब एक **चिडिया भी न आई** तब बूँदी की सेना के पहले ही हमले में कृष्णसिंहजी के **पैर उखड गये** । इस घटना के कुछ समय बाद अर्थात् संवत् १९०७ के श्रावण में उम्मेदसिंहजी सितारे से चलकर प्रसन्नतासे **बूँदी आ पंहुंचे** ।

अध्याय १०.

होलकर का जयपुरसे संग्राम ।

जयपुर का रनवास ।

यद्यपि **उदयपुर नरेश** ने और कोटा वालोंने बूँदीनरेश के विरुद्ध रामचन्द्रराव को चिट्ठी लिखकर उसे उभारा था परन्तु पीछे उन्हें इस **प्रपंच की थाह** मालूम होगई इसलिये उन्होंने दयाराम जी पुरोहित को बुलाकर उनसे ठहराव हो जाने के अनंतर महारावराजा उम्मेदसिंहजी के **राज्यासन पर विराजने के दस्तूर में** हाथी, घोडा, वस्त्र, अलंकार और शस्त्र आदि सामग्री भेजी । केवल इतना ही नहीं वरन उनके पूर्वज महाराना संग्रामसिंहजी की बादशाह बाबर से, मांडू के बादशाह से और ऐसे २ प्रबल शत्रुओं से रक्षा करने में राव नारायणदासजी ने जो मेवाड राज्य पर अहसान किया था उसे स्मरण करके पूर्व प्रथा के अनुसार गणगौरी पर, दशहरे पर और नरेश की वर्ष गांठ पर दस्तूर भेजना आरंभ करके बूँदी मेवाड का **टूटा हुआ संबंध** फिर जोड दिया ।

इस घटना के बाद भी उम्मेदसिंहजी सुख से बूँदी में बैठने न पाये। पेशवा की ओरसे भारत विजय करने के लिये निकली हुई होलकर और सेंधिया की सेनाओं में से होलकर की सेना ने चंबल नदी के तटपर आकर पडाव डालदिया। इस बार होलकर की सेना के अधिपति मल्हाररावजी के पुत्र खंडूजी थे। घटना संवत् १८०७ के कार्तिक मास की है। चातुर्मास्य भर विश्राम लेकर पुराने राजा जैसे देश विजय के लिये चढाई किया करते थे इनकी यात्रा भी इसी प्रकार की थी। अपनी सजी हुई सेना को लिये हुए **उम्मेदसिंहजी भी इन खंडूजी के साथ हुए**। आगे बढते हुए जब इनकी सेना ने **नैनवा का घेरा** देकर तोपें दागना आरंभ किया तब दलेलसिंहजी के पुत्र कृष्णसिंहजी **तोपों की मारसे** घबडा गये। वह यहांतक घबडा गये कि अपने रनवास को भी न संभाल सके। वह उधर अपने प्राण लेकर भागे और इधर उम्मेदसिंहजी ने नैनवां के परगने भर पर अपना अधिकार करके खोया हुआ हिस्सा फिर प्राप्त कर लिया। तब से नैनवां, करवर और समीधी इन तीनों पर इनका अधिकार होगया।

इसबार होल्कर और सेंधिया श्रीमन्त पेशवा का राज्य बढाने की इच्छा से दिग्विजय करने के लिये निकले थे। सेंधिया के कामों से इस चरित्र का इस गहु संबंध नहीं है इस लिये उसके विषय में लिखने की आवश्यकता भी नहीं परन्तु होल्कर ने उम्मेदसिंह जी सहित जयपुर पर चढाई की।कवि राजा सूर्य मल्ल जी कहतेहैं कि "महाराज ईश्वरीसिंहजी ने अपने प्रधान अमात्य खत्री केशवदास को मारडाला था। इसी का वैर लेने को **होलकर ने इन पर चढाई** की।" केशवदास के मारने का और ईश्वरीसिंहजी के मरने का जो वर्णन टाड साहब ने किया है उसे मैं पहले लिख चुकाहूँ परन्तु उन्होंने जिस लडाई से इस बात का संबंध बतलाया है कवि राजा सूर्यमल्लजी ने उससे नहीं बतलाया। उनके मत से होल्कर की जयपुर पर यह **दूसरी चढाई** थी। खैर कुछ भी हो परन्तु इनके मत से संवत् १८०७ में जब उम्मेदसिंहजी को साथ लेकर मल्हारराव होलकर के पुत्र खंडूजी जयपुर पर चढे तब इस चढाई से घबडा कर ईश्वरीसिंहजी ने **उम्मेदसिंहजी को पत्र लिखा** कि:—

"हम पहले ही आप का राज्य छोड चुके हैं । हमने ठहराव के विरुद्ध आपके साथ कोई काम नहीं किया है फिर आपने किस अपराध पर होलकर को क्रुद्ध कर दिया है ? केशवदास ने हमारी आज्ञा का भंग किया इसलिये हमने उसे मरवा डाला है । "

इस पत्र को सुनकर इन्होंने होलकरतनय को समझाया परंतु खंडूजी समझे नहीं । उन्होंने दंड लिये बिना वहां से हटना स्वीकार न किया क्योंकि वह भी पूरे **राज्यलोलुप** थे । अपना राज्य बढाने और अपना कोश भरने के सिवाय न्याय अन्याय से उन्हें कुछ मतलब न था । उम्मेदसिंहजी की **न्यायभरी सलाह** को फिर वह क्यों मानने लगे । उन्हों । स्पष्ट कहादिया कि:—

"ईश्वरीसिंहजी ने बिना अपराध **मंत्री मारडाला** इन्हें **घमंड बहुत** होगया है इसलिये हम नानाजी की आज्ञा से इनका **दर्पदलन** कर इनसे दंड लेने आये हैं । मनमाना रुपया लिये बिना यहां से न डिगेंगे ।"

उम्मेदसिंहजी ने यही बात ईश्वरीसिंहजी को लिखवादी । उन्होंने लिखवा दिया कि:—

"आपने चुगलखोरों के बहकाने से केशवदास को मार कर बडा अनर्थ कर डाला । आपके इस घमंड ने ही आप पर विपत्ति लाने का काम किया। ये लोग आपको मारने नहीं आये हैं । **मरहटे धनके लोभी** हैं । इस कारण दंडका रुपया देकर इनसे अपना पिंड छुडाओ ।"

ईश्वरीसिंहजी ने दंडका रुपया देना पसंद न किया । उन्होंने कहा कि "लडकर मर जायंगे परंतु दंडके नाम पर एक कौडी भी न देंगे ।" अवश्य ही ईश्वरीसिंहजी **लडाई में कच्चे** नथे परंतु गत अध्यायों से पाठकों को विदित होगया होगा कि वह **दुर्व्यसनों में** पडगये थे । बस वही उनके विनाश का कारण हुआ । उन्होंने अपने कामदार हरगोविन्द नाटानी से **जिसकी लडकी** को उन्होंने **अपने गले का हार** बना रक्खा था सेना मांगी । नाटानी इस अपमान से पहले ही दुःखित था । उसे अब **बदला लेनेका** अवसर मिलगया उसने कहाः—

"अन्नदाता, सेना की आप क्यों चिन्ता करते हैं? दश लाख सेना मेरी जेबमें है। जब चाहें तब ले लीजिये। मरहटे बडे डरपोक होते हैं। जब आप चढाई करेंगे तब ही वे लोग डर के मारे आपके पैरों आ पडेंगे! आप आमेर के छत्रधारी अधीश हैं और वे भिखारी ब्राह्मण के नौकर! भीख का टुकडा खाने वाले आप जैसे समर्थ के आगे क्या ठहर सकेंगे? कछवाहों की तलवार चमकते ही डर जांयगे! कहां आप जेठ के सूर्य हैं और कहां वे अंधेरी रात के जुगनू!"

इस तरह की वातें बनानेसे जब **ईश्वरीसिंहजी धोखे में आगये** तब नाटानी ने जयपुर की सारी सेना अपने पुत्र हरि नारायण के साथ शेखावाटी में किसी बहाने से भेज दी। उसने केवल इतना ही न किया वरन होलकरतनय को पत्र लिखकर शीघ्र बुलवाया। उम्मेद सिंहजी सहित खंडूजी ने आकर जयपुर के पास झलाना कुंडपर डेरे डाले। जब इस बात की ईश्वरीसिंहजी को खबर हुई तब उन्होंने नाटानी को बुलाकर उससे दश लाख सेना मांगी। उस से कहा कि:—

"लाओ अपने जेब में से दश लाख सेना। मैं उसी के भरोसे बीस दिन से निश्चिन्त हूँ। शत्रु पास आ पहुंचा। अब निकालो अपने जेब में से!"

इसपर हर गोविन्द ने सूखा सा मुँह बनाकर कहा:—

"अन्नदाता, मेरे **जेब में तो चूहे लग गये**। उन्हीं ने काटकर सारी सेना तितर बितर कर डाली।

यह कहकर नाटानी अपने घर भाग गया। अब ईश्वरीसिंहजी अपने कुकर्म पर और नाटानी का भरोसा करने पर पछताये। पछताये अवश्य परंतु अब होलकर जैसे प्रबल शत्रुका सामना करने में वह असमर्थ थे। दंड देकर मान भंग करवाने से,शत्रु के हाथ में पडकर अपनी दुर्दशा करवाने की अपेक्षा उन्होंने **मरजाना ही अच्छा** समझा, अपना प्राण रहते हुए अपने राज्य में दूसरों का अधिकार देखने से उन्होंने मरजाना ही अच्छा समझा। इस तरह मरजाना चाहे शास्त्रके अनुसार वडा पाप है, चाहे लौकिक दृष्टि में भी कायरता है क्योंकि वह इतने पर भी तलवार बजाकर निकल सकते थे,रणभूमि में

मरकर वीरगति को पा सकते थे, परंतु उन्होंने जो कुछ अच्छा समझा सो समझा । उन्होंने चुपचाप **विषपान करके** शयन किया और सोते समय बूँदी नरेश को एक पत्र में लिखाः—

"ईश्वर का लेख कभी मिटता नहीं है । केशवदास को जहर का प्याला पिलाकर जैसा किया था वैसा पालिया ।"

दिन निकलने के साथ ही सारे नगर में और शत्रु सेना में खबर फैलगई कि महाराज ईश्वरीसिंहजी ने विष खाकर जान दे डाली । खंडूजी और उम्मेद सिंहजी दोनों जयपुर में गये । पौष कृष्णा ९ संवत् १८०७ को **ईश्वरीसिंहजी मरगये** और कृष्णा १० को ये दोनों नगर में गये । होलकर तनय के परामर्श से बूँदी नरेश ने महलों में जाकर प्रबंध किया । सब जगह होलकर की चौकियाँ बैठगईं । इसी झमेले में जब ईश्वरीसिंहजी के शव को पडे २ छः पहर होगये तब उनका अंत्येष्टिकर्म करवाया गया । जयपुर के खजाने पर नाला होलकर का पडा था इसलिये उनकी क्रिया के लिये रुपया उसीने दिया । उनका जयनिवास बाग में दाह कर्म हुआ किन्तु हायरे पराधीनता ! एक बडे **राज्य के स्वामी को पराई पूँजी के** कफन और लकडियोंमें जलना पडा । भावी बडी बलवती होती है । सूर्यमल्लजी कहते हैं कि ईश्वरीजिहजी के हाथसे **एक और भी कुकर्म** भारी हुआ था । उन्होंने एक मुसलमान महावत (फीलवान) पर कृपा करके उसे अपना मंत्री बनादिया था वह पराई स्त्रियोंकी लज्जा लूटकर बडी अनीति किया करता था । एक दिन ईश्वरीसिंहजीने औरोंके नाहीं करने पर भी उस **मुसलमान को श्रीगोविन्ददेवजी के मंदिर के भीतर** बुलाकर उसके साथ शराब पिया था । कुछ भी हो परंतु ईश्वरीसिंहजी की ईश्वरताका और उनके दबदबे का बुरी तरह अंत हुआ । **जैसा करता है वैसा पाता है** । "यह खूब सौदा नकद है इस हाथ दे इस हाथ ले ।"—उन्होंने केवल महावत को ही हाथी पर चढाते २ अपने माथे पर न चढाया वरन ऐसे २ अनेक नीचों को बडे-२ पद देकर अपना सर्वनाश किया । एक वेश्या ने इनका सहगमन किया और रानियां और खवासिनें जब महलमें पडी २ पति

वियोग पर रो २ कर रोने के गगन भेदी नाद से लोगों के कलेजे फाड २ कर टुकडे कर रही थीं **खंडूजी को एक कुबुद्धि** ने आ घेरा । उन्होंने काम पीडित होकर, अपनी पापवासना तृप्त करने के लिये कहा:—

"हम सुनते हैं कि जयपुर के महलमें **बहुत सुन्दरियां** हैं। उनमें से जो २ अच्छी होंगी उन्हें हम मँगवाकर उनसे **विषय सुख** लूटेंगे।"

खंडूजी की ऐसी नीचता उम्मेदसिंह जी से **सहन न हो सकी।** वह जिस समय ऐसी असह्य वेदना से क्रोध में आकर **खंडू का शिर** काटने के लिये खड्ग उठाकर प्रतिज्ञा कर रहे थे कि—"हमारे जीते ऐसा काम कभी न होने पावैगा। जयपुर की जो बहू बेटियां हैं वे हमारी ही हैं। आज खंडू ने इन-पर मन चलाया है तो कल हमारी पर भी चलावैगा।" जयपुर के राज प्रासाद में समस्त रानियों ने, खवासिनों ने और समस्त स्त्रीवर्ग ने **बारूद बिछाकर जलजाने** का प्रबंध कर लिया। वह अपनी लज्जा और अपना धर्म खोकर अवश्य ही जीना नहीं चाहतीं थीं इस लिये उन्होंने इतना बडा साहस किया। राजपूत रानियों के लिये ऐसा साहस कोई नई बात न थी क्योंकि इतिहास इस बात की गवाही दे रहे हैं कि अनेक राजपूत महिलाओं ने प्राण को तलवार की धार की अनंत ज्वाला में झोंककर, पुरुष वेश से शत्रु सेना को मारकर मरकर स्वधर्म की रक्षा की है, स्वधर्म रक्षा के लिये असंख्य राजपूत रमणियां पति की **चिता में जलकर सती होगई** हैं फिर ऐसी भीड के समय मरने की इसतरह तैयारी करना उनके लिये कोई बडी बात न थी। वे मरने को जब तैयार हुईं तब नाजिरों ने दौडकर, ईश्वरीसिंहजी के भाई उनके उत्तराधिकारी माधव-सिंहजी के वकील ने भागकर और नगर के अच्छे २ साहूकारों ने आकर **उम्मेदसिंहजी की शरण ली** और इन्हें इस बातपर जैसा कोप हुआ उसे पाठक ऊपर पढ चुके हैं। इन्होंने खड्ग हाथ में लिये हुए, मल्हारराव-जी के और खंडूजी के संकोच को बिलकुल तिलांजुलि देकर, अपने राज्य की, अपने शरीर की और अपने स्वार्थ की कुछ पर्वाह न करके लाल २ आँखों से कडक कर होलकर मल्हाररावजी से कहा:—

"आपको पूना नरेशने **हिन्दू धर्म की रक्षा के** लिये भेजा है किन्तु आप के पुत्र **खंडूजी की बुद्धि भ्रष्ट** होगई । वह जयपुर नरेश की रानियों को पकडकर अपने घर में डालना चाहते हैं । हजार जयपुर ने हमारा नाश किया हो और हजार आपने हमारा उपकार किया हो परंतु जयपुर की और हमारी लज्जा एक है, उनकी और हमारी इज्जत एक है इसलिये हाडों की समर भूमि **में लाशें पडे बिना** वह ऐसा काम कभी नहीं करने पावेंगे । हमारी बहन बेटियां यहां के महल में हैं और यहां की हमारे यहां हैं । यदि आप यह कहो कि हमने तुम पर अहसान किया है तो **अपनी बूँदी लेलो** । हमने अधर्म के लिये राज्य नहीं लिया है । आप जानते हैं कि भाई से भी मित्र अधिक होता है । ईश्वरीसिंहजी आपके मित्र थे इसलिये उनकी स्त्रियां **खंडू की मातायें हुई** । अब देखो खंडू की दुष्टता जो माताओं पर मन चलाता है ।"

इस तरह की जोश भरी बातें सुन कर मल्हाररावजी के **हृदयपर बडा प्रभाव** पडा । प्रतिभाशाली के प्रण का प्रभाव पडना कोई बडी बात नहीं है । मल्हाररावजी ने इनके जोश से समझ लिया कि **स्वधर्म रक्षा के लिये** उम्मेदसिंहजी खंडूजी को मारेंगे और आप भी मर मिटेंगे इसलिये उन्होंने हँसकर इन्हें अपनी छाती से लगा लिया और खंडूजी को इस खोटे विचार के लिये बहुत कुछ फटकार कर सब को–इनको शांत कर दिया । इस तरह उम्मेदसिंहजी के कोप करने से **जयपुरके जनाने की इज्जत बचगई** और जयपुर राज्य ने और वहां की प्रजाने इस स्वधर्म प्रीति पर, इस हाडाओंकी टेक पर उम्मेदसिंहजी को बहुत धन्यवाद दिया । होलकर के कहने से इन्होंने महल में जाकर रानियों को, रनवास की स्त्रियों को समझाया, अपनी ओरसे कहलाया कि–"जब तक **हमारे धड पर शिर रहैगा** आपकी ओर कोई अंगुली भी नहीं उठा सकता है ।" पहले होलकर ने **पांच करोड** रुपये दंडमें मांगे थे परंतु उम्मेदसिंहजी ने जब उन्हें समझाया तब **एक करोड** से अधिक न लिया और होलकर मल्हाररावजी ने उदयपुर से माधवसिंहजी को बुलाकर **जयपुरका राज्य** दिया । राज्य देकर इन

से भी पचीस लाख रुपया लेलिया। इसके बाद होलकर अपनी सेना लेकर दक्षिण की ओर चले गये और महारावराजा उम्मेदसिंहजी ने बूँदी पधार कर प्राचीन रीति के अनुसार **जयपुर नरेश माधवसिंहजी** के लिये **टीके का दस्तूर**—राज्यासन पाने का दस्तूर भेजा। इसतरह जयपुर के शत्रु की सहायता के लिये जाने पर भी उम्मेदसिंहजी ने जयपुर की रक्षा की, राजपूत रमणियों के धर्म की रक्षा की, खंडूजी को बडे भारी कुकर्म से और होलकर को बडी भारी बदनामी से बचाया।

गत अध्यायों में होलकर मल्हाररावजी का बूँदी नरेश पर खूब स्नेह दिखलाया गया है परंतु टाड साहब इस स्नेह को और इस कृपा को शुद्ध नहीं समझते। उनके विचार से **होलकर** ने इतनी कृपा दिखाकर **अपना मतलब** खूब गांठ लिया था। वह लिखते हैं कि:—

"चौदह वर्ष तक इधर उधर भटकने बाद संवत् १८०९ में उम्मेद-सिंहजी ने अपने पूर्वजों का राज्य पाया। इस अवसर में एक "हरामखोर" राजगादी पर बैठा रहा। लडाई झगडों से इसके अच्छे २ रत्न खोगये और इसीके साथ और २ कारणों से अंतमें वह गादी लग भग **रुई के ढेर** के समान रहगई। होलकर राज्य के संस्थापक मल्हारराव बुधसिंहजी की रानी के भाई और उम्मेदसिंहजी के मामू अवश्य बने परंतु उन्होंने अपनी जाति का गुण न छोडा। उन्होंने सताये हुए की रक्षा करने के लिये शस्त्र ग्रहण नहीं किये जैसा वीर राजपूत जाति में होता है वरन राज्य का एक हिस्सा लेने के लिये। यही उनके भाई वा मामू बनने की उदारता का एक निःसंदेह प्रमाण है। इसीके अनुसार उन्होंने चंबल के किनारे पर पाटन कस्बे और जिले का अधिकार मांगा और पा लिया।"

अपनी पुस्तक में इसतरह का उल्लेख कर के टाड साहब इसी जगह एक टिप्पणी देकर लिखते हैं कि:—

"उन दिनों में जब मरहटे देशको बिगाड रहे थे इसतरह के देश विजय की एक संयुक्त पूँजी स्थापित की गई थी। इसी के अनुसार **पाटन तीन हिस्सों में** बांटी गई। एक इनमें से पेशवा का, दूसरा सेंधिया का और

तीसरा होलकर का, परंतु पेशवा का हिस्सा नाम मात्र का था **और** इस हिस्से को पूना राज्य की सेवा करके होलकर ही लेते थे। सन १८१७ में जब देशभर में शांति स्थापित हुई पाटन का बहुत दिनों से खोया हुआ और बहुमूल्य परगना, बूँदी नरेश को मिलगया। इससे यहां के राजा और प्रजा को बडा हर्ष हुआ।"

इस तरह टाड साहब ने लिखकर अवश्यही **होलकर का स्वार्थ** दिखलाया है और यह स्वार्थ सच्चा भी हो सकता है परंतु इससे जिस काम में उन्होंने उम्मेद सिंहजी की सहायता की उसके लिये उनकी प्रशंसा न करना नहीं बन सकता है।

अध्याय ११.

भाईकी बहकावट।

देवसिंहजी का वध।

संवत् १८०९ में माघ शुक्ला १३ को महारावराजा उम्मेदसिंहजी के महाराज कुमार **अजितसिंहजीका** जन्म हुआ। इनके जन्म से पहले रानी ऊदावतजी के लिये गर्भ के अष्टम मास में शास्त्र विधि से राज्य व्यवहार के अनुसार सीमंत का उत्सव किया गया। जन्म होने पर शास्त्र की विधि से और राज्य व्यवहार से उत्सव हुआ। आज बूँदी में हर्ष का पार न रहा। राज्य और राज भक्त प्रजा में आनंद छा गया। साधारण गृहस्थ के पुत्र होने पर उसके माता पिता को और उसके नातेदारों को जो आनंद होताहै वह व्यक्ति गत आनंद है क्योंकि उससे देशकी उन्नति अवनति का विशेष संबंध नहीं है किन्तु राजा के पुत्र होने का समस्त प्रजाको आनंद होता है। राजकुमार के जन्म लेने से भारत वर्ष की राजभक्त प्रजा समझती है कि आज हमारा रक्षक, हमारा प्राणदाता पैदा हुआ है। कैसी भी विपत्ति पडने पर वह अपने प्राणों की कुछ पर्वाह न कर हमारे प्राण बचावैगा। बूँदी की प्रजा अनेक वर्षों से घोर संकट सहकर

जब उम्मेदसिंहजी के शासन में सुख से रहने लगी थी तब इनके पुत्र होने पर उसे दूना हर्ष होना चाहिये था और हुआ भी। पुत्रोत्पत्ति के हर्ष में उम्मेदसिंहजीने बडा पुण्य किया। ब्राह्मणों को खूब दान दिया, नौकरों को खूब इनाम दिया, चारणों को, रावों को, भाटों को खूब पारितोषिक दिया। और सूर्यमल्लजी लिखते हैं "**लाखोंही लुटादिया।**"

जिस वर्ष महाराजकुमार अजितसिंहजी का जन्म हुआ उसी साल महारावराजा उम्मेदसिंहजी ने अपने लघु बंधु **दीपसिंहजी का** सावर के राजा शक्तिसिंहजी सकतावत की कन्या से **विवाह किया।** विवाह किया और दोनों भाई परस्पर बडे ही स्नेह के साथ रहने लगे। एक बार पहले जब यह पूना में थे तब इन्हें **लोगों ने बहकाया** था परन्तु उस समय यह उनके चंगुल में न फंसे थे इस बार न मालूम क्यों फँसगये। संवत् १८१० की वैशाख शुक्ला १४ को यह शिकार का बहाना करके बूँदी से **कोटे चले गये**। वहां के महाराव दुर्जनशल्यजी ने इनका बडा सत्कार किया, इन्हें कुंवर पदेके महल में टिकाया और बडा ही प्रेम दिखलाया। इनके कोटे जाने की खबर पाकर उम्मेदसिंहजी ने इन्हें समझाने के लिये इन्हें लिवालाने के लिये, अपने मुख्य मंत्री को भेजा। उसने बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु इनके मनको न भाया। मुख्य मंत्री मन मारकर बूँदी लौट आया। दीपसिंह जी जब इसीतरह कुछ काल कोटे में व्यतीत कर रहे थे तब इन्द्रगढ के महाराजा **देवसिंह जी** को, जिनका स्वामिद्रोह पाठक पहले पढचुके हैं अपनी **कुटिलता की मात्रा** बढाकर दूनी चौगुनी करने का अवसर मिला। उन्होंने ठीक अवसर साधकर दीपसिंहजी के नाम पत्र लिखा। पत्रमें लिखा कि:—

"**भाई के टुकडोंसे** पेट क्यों भरते हो? जरा बहादुरी दिखाकर दुनिया में अपना नाम करना हो, यदि बूँदी के राजराजेश्वर बनकर छत्रधारी होना हो, यदि चमरों और मोरछलों से "बढ़े जाओ मिहर्वान" की पुकार सुनकर अपने को कृतकृत्य करना हो तो मेरे पास शीघ्र चले आओ। आप के भाई का आप पर बिलकुल भी स्नेह नहीं है और उनकी बिलकुल

भी आप पर कृपा नहीं है इसलिये मेरे पास चले आओ। बूँदी का राज्य भोगने के लिये मैं जैसा कहूं वैसा करो। "

दीपसिंह जी का मन पहले ही न मालूम क्यों उखड गया था। इस पत्र को पाकर वह आकाश के पुष्प लेने की तरह **मृगतृष्णा** में फंसे। यह पत्र उनके बोदे मन पर खूब असर कर गया। पत्र पाते ही वह मन मोदक बनाते, मनोराज्य का मिथ्या सुख लूटते, भोग विलास की आशा ही आशा में **इन्द्रगढ पहुंचे**। वहां जाने पर देवसिंहजी ने उनके कान भरकर खूब पक्का कर दिया। लुहार की धौकनी में जैसी हवा भरी जाती है वैसी ही निकलती है उसी तरह इनके कान में जैसी देवसिंहजी ने फूंक मारी थी वैसी ही बात उनके मुखसे निकलने लगी। वह इन्हींके बहकाये हुए **जयपुर गये**। वहां के महाराज माधव सिंहजी ने अपना कामदार भेजकर इनकी पेशवाई की, जब यह महाराज से मिलने गये तब अपने सिंहासन के कोने पर इन्हें बिठलाया, इन्हें पचास हजार की जागीर समेत उकडोद नगर दिया और इसतरह बडे सत्कार के साथ रक्खा।

इस तरह दीपसिंहजी बडे भाई से, पिता के समान अपने पराक्रम से राज्य का उद्धार करके दीपसिंहजी को विपत्ति से निकालने वाले बडे भाई से **रूठकर** इन्हीं का **राज्य छीनने** की मृगतृष्णा से जयपुर की शरण में चले गये थे परन्तु राजनीति परायण बहादुर उम्मेदसिंहजी को इस बात से बिलकुल भय न था। हां! **भ्रातृस्नेह** के कारण उन्हें **खेद अवश्य** था परन्तु वह अच्छी तरह जानते थे कि ऐसे बंधुविरोध से, ऐसे लफंगों के बंहकाकर प्रपंच रचने से राज्य नहीं जा सकता है। जिस राज्य की अब नीव गहरी लगगई है वह सहसा उखड नहीं सकताहै। वह भली भांति जानते थे कि राज्य उखड ने के कारण ये हैं:—

"विक्रोशंत्यो यस्य राष्ट्रात् ह्रियंते दस्युभिः प्रजाः, संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स नतु जीवति।"

जब वह जानते थे कि हमारे राज्य में राजा राज और प्रजा चैन है, जब हमारे राज्य में चोरों से, लुटेरों से प्रजा नहीं सताई जाती है, जब सर्वत्र शांति

का निवास होने से हम औरों की तरह जीते हुए भी मरे नहीं हैं तब हमारा राज्य क्यों जायगा ? हजार शत्रु खडे होने पर भी, हजार प्रपंच रचे जाने पर भी जब हमारी प्रजा हमें जी जान से चाहकर हमारे लिये जान माल देने तक को तैयार है तब हमारा राज्य क्यों जायगा ? बस इसीलिये यह इन दिनों राज्य की उन्नति के कामों में, प्रजाके उपकार के कामों में और हिन्दूधर्म की वृद्धि के कामों में लगे हुए थे । इसी कारण बूँदी की सदा बाहरी आक्रमण से और भीतरी अशांति से रक्षा करके यहां की प्रजा में भक्ति रसका पवित्र संचार करने के लिये इन्होंने यहां के राजप्रासाद में संवत् १८११ की जेष्ठ कृष्णा ११ के दिन शुभ मुहूर्त में **श्रीरंगनाथजी की स्थापना** की । इसी वर्ष कार्तिक शुक्ला पष्ठी को खवास गुमानरायजी ऐ खवासीने पुत्र शिवसिंहजी और संवत् १८११ की माघ शुक्ला १२ को रानी ऊदावतजी से **दूसरे महाराज कुमार** बहादुर सिंहजी का जन्म हुआ ।

ये घटनायें उस समय की हैं जब क्रूर **सिराजुद्दौला** की निर्दयता से १४३ अंगरेज कलकत्ते की **कालकोठरी में** दम घुट २ कर मर गये थे, ये उस समय की बातें हैं जब मुसलमानों के राज्य की इतिश्री करके **लार्ड क्लाइव** ने बंगालके नव्वाब सिराजुद्दौला को **प्लासी** के मैदान में हराया था । उन बातों के लिखने की यहां आवश्यकता नहीं परंतु जो लोग उस समय के इतिहास से जानकार हैं वे समझ सकते हैं कि महारावराजा उम्मेद-सिंहजी ने देश व्यापी राष्ट्र विप्लव के समय—भयानक अराजकता के समय अपना राज्यस्थापित किया । भारत के इतिहास के उस समय के काले पृष्ठों को पढकर यदि कोई उम्मेदसिंहजी के शासन में उसी समय शांति स्थापन की घटना का इस चरित्र में पाठ करेंगे तो वे लोग समझ जायंगे कि किस कठिन, भयानक समयमें इन्होंने अपने आतंक से अपनी राजनीति से और अपने बुद्धि बल से, अपने बल विक्रम से काम निकाल कर सफलता पाई । बस दोनों इतिहासों से इन्ही बातों का परिणाम निकालने के लिये ऊपर दो एक घटनाओंका संकेत किया गया है ।

खैर कुछ भी हो बूँदी के इतिहास "वंश भास्कर" और "वंश प्रकाश" में लिखा है कि इस अवसर में महारावराजा उम्मेदसिंहजी जब प्रजापालन के

कामों में दत्त चित्त थे तब **इन्द्रगढ के जागीरदार** देवसिंहजी ने अपनी पहली कुचालोंसे संतुष्ट न होकर कुलद्रोह करते २ पेट न भरने से और अपना मतलब न गंठने से जयपुर में **दीपसिंहजी के नाम पत्र** लिखा। उसमें लिखाः—

"अब आपसे डर कर उम्मेदसिंहजी आप को बुलाने के लिये आपके पास अपना अमात्य भेजेंगे परंतु आप उनके मनाये से मत मानना। जरा धीरज रखिये। हमने दक्षिणियों से प्रयत्न किया है। हम आपके लिये पूना नरेश को कुछ रुपया देकर आपको बूँदीका राजा बना देंगे।"

संयोग वश यह चिट्ठी दीपसिंहजी के पास पहुंचने के बदले उम्मेदसिंहजी को मिल गई। उन दिनों दक्षिणियों की सेना बूँदी के पास होकर जयपुर को जारही थी। मल्हाररावजी, रघुनाथरावजी, नानाजी आदि बडे २ मरहटे सरदार उम्मेदसिंहजीके पाहुने थे। उस समय हाथ आते ही इन्होंने यह **चिट्ठी इन लोगोंको दिखलाई**। इन्होंने उसे पढकर उम्मेदसिंहजी को सलाह दी किः—

"अब देवसिंहजी को मारडालना ही अच्छा है। नहीं तो वह कुछ और उपद्रव खडा करके हजारों वीरों को कटवायंगे।"

इस बात को सुनकर वह उस समय संवत् १८१४ में तो चुप होगये परंतु फिर अवसर पाकर जब करवर गये तब इन्द्रगढसे **देवसिंहजी** और उनके पुत्र दौलतसिंहजी महाराव राजा उम्मेदसिंहजी की सेवा में उपस्थित हुए। आकर ये लोग **बडी चापलूसी** की बातें बनाने लगे। देव सिंहजी ने श्रीमान् से निवेदन किया किः—

"आप स्वामिधर्म का खूब पालन करते हैं। हम आपके नौकर हैं। जो कुछ आज्ञा हो करने को तैयार हैं।"

देवसिंहजी की इसतरह कपट भरी बातें सुनकर शांति की मूर्ति उम्मेदसिंह जी अपने क्रोध को न रोक सके। उन्होंने, देवसिंहजी का, दीपसिंहजी के नाम पत्र, जिस पत्रका अभी वर्णन हुआ है मंगवाकर इन्हें **दिखलाया**। दिखलाकर बोलेः—

"क्यों रे नराधम, इसतरह स्वामिद्रोह करके और कुल नाश करके हमारा सेवक बनता है ? देख तेरी करतूति ! मैं कितने वर्षों से तेरे अपराधों-पर ध्यान नहीं देता था ? तैने उस गाढी भीडके समय घोडा न देकर जो जो कटु वाक्य कहे थे उन्हे मैं भूलगया था क्योंकि तुझ जैसे मेडकों पर शस्त्र चलाने में मेरी शोभा नहीं है परंतु अब तेरा मरना ही भला है । तू यदि जियेगा तो देशमें, कुलमें, राज्यमें और राजाओंमें फूट फैलाकर न मालूम कितने शिर कटा देगा ।"

वस इतना कहकर उसी क्षण **देवसिंहजी का शिर काटलिया ।** उनके पुत्र ने लडने के लिये जब तलवार निकाली तो उन्हें कैद करके बूँदी भेज दिया और उसी समय **इन्द्रगढ में बूँदी नरेश** का अधिकार होगया। एक वार बूँदी की सेना के हार जाने बाद दूसरी लडाई में विजय होकर खातोली में अधिकार हुआ । अणवोरे और ढीपरी में अधिकार हुआ और इन्होंने ढीपरी तथा इन्द्रगढ में किले बनवाये । तीन वर्ष बाद इन्होंने दौलत सिंहजी के मरने पर देवसिंहजी के भाई **भक्तरामजी को इन्द्रगढ** लौटादिया ।

ऊपर जो कुछ देवसिंह जी के विषय में लिखागया है वह बूँदी के इतिहास से किन्तु टाड साहब लिखते हैं कि-—

"एक बदला लेने के कामसे उम्मेद सिंहजी के **चरित्रमें दाग** लग-गया । चाहे यह काम बडी बहादुरी, बडी बुद्धिमानी का ही क्यों न हो, चाहे राजपूतों के इतिहासमें निर्दोष ही क्यों न समझा जाय परंतु इन्हें जब राज्य पाये आठ वर्ष बीत चुके थे, जब दबलाना की हार के बाद इन्द्रगढ वाले से निर्दयता का काम बना वह भूल जाने के योग्य था अथवा क्षमा करने के योग्य था, जब एक मुद्दत बीत जाने पर भी उसे दंड नहीं दिया गया तब यदि उम्मेदसिंहजी जैसे उदार नरेश ने बदला लेने की नीति परित्याग करके बुद्धिमानी की नीति ग्रहण की होती तो हम प्रसन्न होते किन्तु इस **ओछे राजपूत** (देवसिंह) ने अपने मालिक की आवश्यकताओं पर ध्यान न दिया, उस समय अपने को न धिक्कारा किन्तु उसका मन बहुत

हलका था । उसने अपने कर्तव्य पर ध्यान न देकर जिस मनुष्य (उम्मेदसिंह जी) को वह एक बार सता चुका था उसे ही फिर उसकी बडी हिम्मत पर धिक्कारा, उसकी क्षमा शीलता पर घृणा की और उसे ऐसे समय में जो बहुत नाजुक था और जिसके लिये क्षमा नहीं की जासकती है फिर सताकर क्रुद्ध कर दिया । उम्मेदसिंहजी ने अपनी वहन की सगाई के लिये जयपुर नरेश माधवसिंहजी के पास **नारियल** भेजा । उन्होंने इस दस्तूर का राज दर्बार में उस प्रतिष्ठा के साथ स्वागत किया जो राजपूताना की एक अति प्रसिद्ध जाति के लिये उचित है । उन दिनों इन्द्रगढ के देवसिंह जी भी वहां उपस्थित थे । माधवसिंह जी ने सम्मान पूर्वक देवसिंह से संकेत करके कहा:—

"बुधसिंह जी की बाई की क्या बात ? "

"इसपर यदि देवसिंह अपने राजा का हित साधता तो उसके लिये अच्छा अवसर था किन्तु उसने उनकी निन्दा करके अपने मालिक को नाराज कर दिया । थोडे ही समय में उस बाई का विवाह मारवाड नरेश के साथ होजाने से यह सिद्ध होगया कि उसने विलकुल झूठी निंदा की थी परन्तु उस समय **नारियल लौट आने** से बूँदी का इतना अपमान हुआ था जिसे राजपूत लोग कभी क्षमा नहीं कर सकते हैं । "

"संवत् १८१३ में जब उम्मेदसिंहजी वीजासनी माताके दर्शन करने गये तब इन्होंने करवर में देवसिंहजी को **बुलाकर मारडाला** । इस तरह हरामखोरों का और कुलद्रोहियों का उन्होंने मैदान साफ करडाला । मानों इनके धुऐं से आकाश भी अपवित्र न होने पावै इसलिये उम्मेदसिंह जी ने इसके टुकडे २ करवा कर तालाव में गिरवा दिया । उसकी जागीर इन्द्रगढ उसके भाई को देदी गई । "

"पन्द्रह वर्ष तक प्रबंध की गडबड में उम्मेदसिंहजी का ध्यान लगा रहा किन्तु इन सब वातों के होते हुए भी एक घटना का विचार इनके हृदय को वेधता रहा । वह यही थी कि इन्होंने बदला लेने का काम जो केवल परमेश्वर के अधिकार में है छीनकर अपने हाथमें लेलिया यद्यपि इस

न्याय के लिये किसी ने चूं तक न की, यद्यपि वह (उम्मेदसिंह जी) मानते रहे कि कुलद्रोही देवसिंह जी को अपने किये का फल मिलगया। उनकी उदार और बीर आत्मा देश की चाल के अनुसार चाहे इस काम को उचित समझती हो परंतु उनकी बुद्धि को तब ही **संतोष हुआ** जब उन्होंने अपना राज्य छोडकर अपने जीवन के शेष दिन धर्म के कामों के लिये भारत वर्ष भर की लंबी चौडी यात्रा करके, अपने विश्वास के अनुसार पवित्र देवस्थानों के दर्शन करके **यात्रियों के वेश में** बिताये।"

टाड साहब का लेख जितने अंश में बूँदी के इतिहास से मिलता जुलता है, जहां थोडा बहुत अंतर है वहां की बातों पर सम्मति देने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं किन्तु उन्होंने **जयपुर की सगाई** का वर्णन ऐसा लिखा है जिसका बूँदी के **इतिहास में**, सूर्यमल्लजी जैसे विना लाग लपेट के सच्चा लिखने वाले इतिहास लेखक के लेख में **पता नहीं** है। फिर मैं नहीं कह सकता कि टाड साहब ने इस वात को कहां से पा लिया। मेरा जहां तक विचार पहुंचता है यह घटना किसी ऐसे रजवाडे के इतिहास से लीगई है जिसका बूँदी से द्वेष रहा हो क्योंकि यदि **यह बात सत्य होती** तो उसी समय जयपुर बूँदी का, **घमशान युद्ध हो** जाता, चाहे इस युद्ध में हाडाओं के रक्त की नदी ही क्यों न बह जाती परंतु जिन बीर हाडाओं ने अपनी हानि लाभ का रंचक भी विचार न करके कभी मुसलमान **बादशाहों को बेटी न दी** वे कभी, हजार डूब जानेपर भी जयपुर से ऐसा अपमान सहकर **जीते न रहते** और जब देवसिंहजी बूँदी के एक छोटे से जागीर दार थे तब वे भी उसी क्षण अपने किये का फल पाते। इसके सिवाय देवसिंहजी का उम्मेदसिंहजी से हजार द्वेष होने पर भी वह हाडा थे ऐसी वात से केवल बूँदी पर ही कलंक नहीं किन्तु उनपर भी कलंक लगता था इसलिये उन जैसे प्रपंची की जीभ से भी ऐसे वाक्य कभी नहीं निकल सकते थे इस कारण में इस **घटना को सत्य नहीं मानता** हूँ।

साहब बहादुर के लेख में एक और वात मेरे **जी को खटकती** है। वह देवसिंहजी का वध करने पर **निष्कलंक उम्मेदसिंहजी** के विमल

चरित्र पर धब्बा मानते हैं। जब निर्दोष ईश्वर है, संसार में उसके सिवाय कोई बे ऐब नहीं है, जब शरद पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा भी कलंक से शोभा पाता है तब यदि राज्य के संस्थापक में कोई दोष आगया हो और यदि उसने राजनीति की रक्षा के लिये कोई काम कर डाला हो तो **चन्द्रमा के कलंक की** तरह वह भी **शोभा देने**वाला है। भारत वर्ष में अंगरेजों का राज्य स्थापित करनेवाले लार्ड क्लाइव **और** वारन हेस्टिंगस ने कितने कपट किये थे परंतु क्या कोई अंगरेज उनकी चालों को कपट गिनते हैं, उनपर कलंक लगाते हैं अथवा किसी ने उनपर कलंक लगाकर उनके किये हुए काम को उलट दिया है। नहीं उनके प्रपंच की बदौलत देशभर में राज्य स्थापित होगया। उसमें उनका भी दोष नहीं। समय पडने पर राज्य संस्थापकों को विवश होकर करना पडता है इसलिये यदि उम्मेदसिंहजी ने राज्य की रक्षा के लिये देवसिंहजी को मारडाला हो तो भी कोई दोष नहीं किया। परंतु जब टाड साहब स्वयं जयपुर की घटना को सत्य मानते हैं तब प्रिय पाठक सोचें कि ऐसे **कुल द्रोह के लिये क्या दंड** था?

जो कुछ हो परंतु इतना निश्चय है कि यदि देवसिंहजी झूंठी चापलूसी न करते, यदि दीपसिंह जी वाले पत्र का कपट उम्मेदसिंहजी के आगे न खुला होता तो उन्होंने गाढी भीड के समय घोडा न देने पर जैसे देवसिंहजी का अपराध जाने दिया था उसी तरह फिर भी यह उन्हें दंड न देते परन्तु वह जानते थे कि मेरा बुढापा पास है, मुझे पुत्र को राज्य देकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करना है, मेरे पीछे से, मेरे समक्ष ही यह दुष्ट नये २ उपद्रव खडे करके **खूब खराबी** करैगा, इस राज्य की जड पक्की न जमने देगा इसलिये देवसिंहजी के झूंठ बोलने पर उनका तुरंत **शिर काट लिया**। शिर अवश्य काट लिया परन्तु उनके भाई को जागीर देदी। उन्होंने इस काम में उसी नीति का पालन किया जो मनीपुर के राजा को दंड देकर एक बालक को गद्दी देने में ब्रिटिश गवर्नमेंट द्वारा काम में लाई गई है। इस घटना से उसमें बडा अंतर है। दोनों की तुलना करके अच्छी बुरी का निर्णय करना पाठकों के हाथ में है।

अध्याय १२.

सेंधिया से बतबढाव।

भाईको क्षमा।

संवत् १८१९ में जब **जयाजी सेंधिया** के पुत्र जनकूजी अपनी वीर वाहिनी (सेना) को लेकर दक्षिण से जयपुर जाते हुए मैंसरोडगढ आ पहुंचे तब खबर पाकर महारावराजा **उम्मेदसिंहजी इनसे मिलने के लिये गये**। वहां जाकर सेंधिया से कहा कि:—

"यहाँ से बूँदी बहुत निकट है। वहां चल कर हमारी ओर से पहुनई स्वीकार कीजिये।"

जब इन दोनों का इस तरह प्रेमालाप हो रहा था तब ही इन्द्रगढ वाले **देवसिंह जी की** पत्नी का निवेदन पत्र सेंधिया के नाम पहुंचा। उस चिट्ठी को पढ कर जनकूजीने उम्मेदसिंहजी पर दबाव डाला। इनसे कहा कि:—

"आप हमारी सहायता पाकर दुःख कूप से निकले हैं। **हमारी सलाह** विना यदि आप कोई काम करेंगे तो उसमें आपका **भला न होगा**। अब जो अपने राज्य के स्वामी बने रहना है तो उन्हें **इन्द्रगढ देदीजिये**।"

यह सुन उम्मेदसिंहजी को **क्रोध आया**। वह कोई काम दबकर करना पसंद नहीं करते थे। जयपुर की रानियों पर जब खंडूजी ने अत्याचार करना चाहा तब उन्होंने जिस तरह **आंखें दिखाकर** स्पष्ट कहदिया था उसी तरह उन्होंने इस बार भी कहदिया। इन्होंने साफ साफ कह दिया कि:—

"हमने इन्द्रगढ के विषय में जो कुछ किया है वह आपके अन्नदाता पेशवा से पूछकर किया है। इस पर भी आप बुरा मानते हैं तो आप को अधिकार है। आप को आपुस के **प्रेमपर कुठार** चलाकर हितमें अहित

करना है तो आप खुशीसे **बूँदी पर** चढाई कीजिये। हम भी हाडाहैं। इस तरह **लडाई से डरने वाले नहीं** हैं। हम भी रणभूमि में हाथ दिखाने को तैयार हैं। आप निश्चय जानिये। जब तक प्रत्येक **हाडा का शिर** धड से अलग न हो जायगा तब तक बूँदी की ओर आप आंख उठाकर भी न देख सकैंगे। हम रण में पीठ दिखाने वाले नहीं हैं।''

यह कहकर उम्मेदसिंहजी **बूँदी चले** आये। आपुस का विरोध देखकर मल्हाररावजी ने और नाना जी के भाई ने जनकूजी को तथा उम्मेदसिंहजी को समझा दिया। दोनो में इस तरह **मेल होगया**। दोनों की लडाई के लिये तैयारियां योंही रहगई।

आगे की घटना का यद्यपि बूँदी के इतिहास से और उम्मेदसिंहजी के चरित्र से विशेष संबंध नहीं है परंतु **रणथम्भोर किले का** पहले बूँदी के नरेशों से संबंध रहा है, क्योंकि रावराजा सुरजन जी का दिया हुआ ही बादशाह अकबर ने यह किला पाया था इसलिये प्रसंग आ पडने पर उसके विषय में यहाँ कुछ लिख देना अनुचित नहीं है। सात वा दश शर्तें लिखवाकर रावराजा सुरजनजी ने जब से यह दुर्ग बादशाह को दिया तब से अबतक इसकी क्या स्थिति रही सो कहने से यहां कुछ मतलब नहीं है परंतु इतना अवश्य है कि रणथंभोर जैसे दुर्गम दुर्ग की अटल कीर्ति सुनकर **मरहटों का** भी उसे लेने के लिये **जी ललचाया**। जनकूजी सेंभिया जब इसी चढाई में जयपुर से दंड लेकर लौटे तो उन्होंने रणथंभोर पर घेरा देदिया। कहते हैं कि तीन वर्ष के घेरे से—तीन वर्ष की लडाई से भी यद्यपि किला टूटा नहीं परंतु अब किले वाले घबडा उठे। उन्होंने जयपुर नरेश माधवसिंहजी को लिखा कि:—

''कछवाहे बादशाह के नौकर हैं इसलिये हम यह किला आप को दे देंगे। आप तुरंत अपनी सेना भेजकर इसपर अपना **पचरंगी झंडा** उडालें। हम यहाँ से निकल कर आप के लिये किला खाली कर देंगे, आपका झंडा उडवा देंगे परंतु मरजाने पर भी रणथंभोर में **मरहटों को न घुसने** देंगे।''

को अपने किये का—अपने पूर्वजों के किये का फल मिल गया । इस बात का इन चरित्रों से कुछ संबंध नहीं है । प्रसंग मात्र आपडने पर यहां संकेत किया गया है । यदि श्रीमान् महाराव राजा रामसिंहजी जैसे राजर्षि के चरित्र लिखने का अवसर मिला तो पाठक उसमें इस बात का विस्तार से वर्णन पावेंगे ।

अध्याय १३.

सेंधिया से संग्राम ।

जयपुर में युवराज ।

समय बडा विचित्र है । वह सिंह को बकरी और बकरी को सिंह बनादेता है । वह राजा से रंक और रंक से राजा करदेता है । जो जयपुर अबतक मरहठों से पिटते २ और उन्हें दंड में रुपया देते २ हैरान हो चुका था अनेक बार की चढाई में जिस जयपुर को मरहठों ने छिन्न भिन्न कर डाला था उसे ही समय आने पर शत्रु को दुर्बल देखकर उसका राज्य छीन लेने का हौसिला हुआ । जयपुर की ऐसी ढिठाई मरहठों से सहन न होसकी । उन्होंने इसीलिये जयपुर पर चढाई करने का मनसूबा किया और इसीको सुनकर महाराज माधवसिंहजी घबडाये । उन्होंने घबडाकर—भयभीत होकर महाराव राजा उम्मेदर्सिहजी को लिखा:—

"यातो मरहठोंको समझा बुझाकर उनका कोप निवारण कीजिये अथवा युद्ध के समय हमें सहायता देने के लिये अपनी वीरवाहिनी—(सेना) भेज-कर हमपर कृपा कीजिये ।"

इस चिट्ठी को पढकर महारावराजा उम्मेदर्सिहजी असमंजस में पडे वा नहीं सो नहीं कहा जासकता है परंतु वह विचार में पडे होंतो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि एक ओर से मरहठे जब इनके उपकारक मित्र थे तब दूसरी ओर माधवर्सिहजी इनके सगे थे, सजातीय थे और स्नेही थे । इस कारण इनके मनको दुविधा हुई होतो कुछ आश्चर्य नहीं परंतु इतिहासों में इस बात का उल्लेख नहीं है । कुछभी हो "वंशभास्कर" में सूर्यमल्लजी ने लिखा है

कि इस खबर को सुनकर महाराव राजा उम्मेदसिंहजी ने संवत् १८१८ में अपने पाटवी महाराजकुमार अजितसिंहजी के साथ पांच हजार सेना जयपुर की सहायता के लिये भेजी । इस चढाई के समय महाराजकुमार का वय यद्यपि केवल नौ वर्ष का था, यद्यपि यह निरे बालक थे परंतु शूरवीर पिता के पुत्र थे, पराक्रमी हाडावंश के कुलकमल थे, शस्त्र विद्या सीख चुके थे और बहुत कम उमर होनेपर भी संग्राम में तलवार चलाने के उत्सुक थे । इनके पिता भी चाहते थे कि यह वीर बालक युद्ध निपुण बनकर अपना कर्तव्य पालन करना सीखै अभी से राजकाज की उलझन में पडकर तैयार होजाय क्योंकि वह जानते थे कि विपत्ति ही उन्नति का मार्ग बतलाने वाली है । एक बालक महाराजकुमार, प्राण से भी बढकर प्यारे पाटवी को भेजने पर उम्मेदसिंहजी के क्षत्रियोचित, हाडोचित साहस की माधवसिंहजीने बहुत सी स्तुति की । नियम न होने पर भी वह जयपुर के महलों से मोती डूंगरी तक पेशवाई के लिये आये । इनका सदा के नियम को छोडकर असाधारण सत्कार किया । इन्हें अपने ही पास महलोंमें टिकाया । उन्होंने बातचीत में, सैर शिकार में और युद्धकला में जब २ इन्हें टटोला, जब २ इनकी जांच की तब ही तब सिंह शावक की तरह इनका पराक्रम निकला । माधवसिंहजी को बालक कुमार की वीरता पर—साहस पर बडा आश्चर्य हुआ । उन्होंने अपने सिंहासन पर अपने सामने इन्हें बिटलाया । जब इसतरह के परस्पर प्रेम बढाने वाले बर्ताव से यह वहां बहुत समय तक रहलिये तब बूँदी के पुरोहित दयारामजीने अवसर साधकर महाराज से कहा । उनके प्रयत्न का फल अच्छा हुआ और आमेरनरेश जयसिंहजी ने महाराव राजा बुधसिंहजीसे जो पत्र लिखवा लियाथा वही महाराज माधवसिंहजी ने लौटा दिया । केवल इतना ही नहीं बरन महाराजकुमार अजितसिंहजी के डेरोंपर जाकर उन्होंने एक हाथी, दो घोडे, दो सिरोपाव, और एक आभूषण दिया और लिख दिया कि बूँदी नरेश का जयपुर में जो सत्कार होता है उसका आधा महाराज कुमार का अबसे हुआ करेगा । जैसे जयपुरनरेश बूँदीनरेश की पेशवाई एक कोस तक

करते हैं तो महाराज कुमार की आधे कोस तक करेंगे। मरहठों की चढाई उस बार रुक गई थी इसलिये पूर्ण सत्कार के साथ, बडे आमोद प्रमोद के साथ और बडे ही स्नेह के साथ इनको जयपुर से विदा किया और एक प्रतिष्ठित सरदार को इन्हें पहुंचाने के लिये भेजा। इस तरह यह वहां से खुशी २ विदा होकर, उसी वर्ष की माघ शुक्ला ९ को बूँदी पहुँच कर, अपने पूज्य पिता के दर्शन पाकर प्रसन्न हुए। इस विषय में बूँदी के इतिहास में भी कुछ २ मत भेद है। कविराजा सूर्यमल्लजी ने जब इस घटना का वर्णन मरहठों की चढाईके समय किया है तब पंडित गंगासहाय जी ने "वंश-प्रकाश" में इसका उल्लेख जयपुर पर जाटों की चढाई के समय किया है। संवत् १८१९ में जब महाराज माधवसिंहजी किसी कार्य से रणथं-भोर गये थे तब उन्होंने महाराव राजा उम्मेदसिंहजी को परस्पर मित्र-ता की वृद्धि करने की इच्छा से मिलने के लिये बुलाया। यह गये और दोनों नरेशों में खूब प्रेम बढा। जिस समय दोनो नरेश इसतरह आपुस का हेल मेल बढा रहे थे इनकी महारानी कुंदनजी का स्वर्गवास होगया। ईडर नरेश की राजकुमारी इनकी दूसरी रानी जी का पहले संवत् १८०६ में और तीसरी रानीजीका संवत् १८१७ में देहांत होही चुका था इसलिये स्त्री विहीन, गृहिणी विहीन होकर यह अवश्य चिन्तित हुए परन्तु महाराव राजा उम्मेदसिंहजी संसारका सुख लूटने के लिये, विषयासक्त होनेके लिये और भोगविलासमें पडे रहने के लिये पैदा नहीं हुए थे, । अवश्यही उन्होंने विना मांगे मिलने पर कुलरीतिके अनु-सार, राजधर्म के अनुसार तीन विवाह किये परन्तु उन्हें न तो सुख भोगने का अवसर ही मिला और न उन्होंने विषय रत होना चाहा क्योंकि वह बूँदीका उद्धार करने के लिये, देशविप्लवके समय अपना राज्य स्थिर कर के नाम पैदा करने के लिये पैदा हुए थे। वह विषयी नहीं थे किन्तु कर्तव्य दास थे। उन्होंने बालपन से लेकर बुढापे तक अपने कर्तव्य का पालन किया। जबतक उनके शरीर में प्राण रहा, उनका एक दिन भी ऐसा न गया जिस में उन्होंने अपना कर्तव्य धर्म न पालन किया हो। यह बात इस चरित्र के

गत पृष्ठोंसे और आगामी पृष्ठोंसे पाठकों को भलीभांति विदित होजायगी। रणथंभोर में गृहिणी मरण का संवाद पाकर उम्मेदसिंह जी बूँदी आये। इसी वर्ष में इनकी खवास जी के एक पुत्र और हुआ।

इसीं वर्ष में जब यह अपने प्रजा पालन के कर्तव्य में लगकर गृहिणी वियोग के दुःख को भुला रहे थे **सेंधिया की मारवाड़** नरेश से लडाई ठन गई। जैसे जयपुर नरेश ने सहायता मांगी थी वैसे ही जोधपुर नरेश विजयसिंहजी ने इनको अपनी सहायता के लिये बुलाया। बुलाहट पाकर यह गये सही पर **मारवाड नरेश** सेंधिया के आगे ठहरने का **साहस न कर सके**। यद्यपि महाराज ने इनका बहुत कुछ आदर किया और दूर तक पेशवाई की परन्तु सेंधिया को आठ लाख रुपया देकर मेल कर लिया। सेंधिया इस तरह मारवाड से दंड लेकर जयपुर पर चढ गया और उम्मेदसिंह जी बूँदी चले आये। यह चले तो आये परन्तु इस यात्रा में जोधपुर नरेश के चाचा ईडर नरेश की कन्या उदयकुमारि को फिर ब्याह लाये। इस तरह तीन रानियों का स्वर्गवास होने पर इनका **चौथा विवाह** आषाढ शुक्ला ९ को संवत् १८१९ में हुआ।

कोटा नरेश दुर्जनशल्य जी के मरने से इतने वर्ष यद्यपि कोटा वाले इन से छेडछाड करने से चुप थे परंतु अब महाराव छित्वरसिंह जी को फिर **बूँदी से विरोध** करने का अवसर मिला। जिस समय महाजी सेंधिया जयपुर राज्य को लूटते २ मोजाद में आ पहुंचे कोटा नरेश ने अपने सचिव अक्षयराम कायस्थ को भेजकर **मरठों को बंहकाया**। उनसे कह लाया कि:—

"आप चाहे **उम्मेदसिंह जी** को अपना मित्र समझते हों परन्तु वह आप के मित्र नहीं हैं। यदि मित्र होते तो आप के विरुद्ध होकर मारवाड नरेश की सहायता के लिये क्यों जाते। इस लिये आप उन पर चढाई कीजिये।"

इस तरह महाजी को वंहकाने में चाहे कोटे वालों का यही उद्देश्य था कि **बूँदी हमें मिलजाय**। इसी उद्देश्य से उनके पिताने नाना प्रपंच रचे थे

और इसी उद्देश्य से उन्हों ने यह बखेडा खडा किया। परिणाम पर दृष्टि न देकर बात का मर्म न जान कर सेंधिया कोटे वालों की बंहकावट में आगये। उन्होंने उम्मेदसिंह जी के विना बूँदी को खाली पाकर चढाई की। जिस समय इनके पास यह खबर जोधपुर में पहुंची यह दौडते हुए बूँदी आये और इनके आते ही लडाई छिडगई। बूँदी की सहायता के लिये जयपुर से और शाहपुरे से सेना आई। सेंधिया की सहायता पर स्वयं कोटा नरेश थे। दोनों ओर से खूब तोपों की भरमार हुई। यद्यपि हालही उम्मेद-सिंह जी मारवाड नरेश की सहायता के लिये स्वयं गये थे परन्तु विजयसिंहजी नें सेंधिया के डरसे इस-समय सहायता के नाम पर एक सिपाही भी न भेजा। संवत् १८१९ की माघ कृष्णा १३ से इस भीषण युद्धका आरंभ हुआ। संग्राम इतना भारी था कि वीररसमत्त महारावराजा को दिन रात, आठ पहर चौंसठ घडी कमर खोलने का अवसर नहीं मिलता था। बूँदी की तोपों और यहां की बंदूकों ने मरहठी सेना को छिन्न भिन्न कर दिया और मरहठी घेरे को विदारण कर डाला। अब महाजी सेंधिया ने समझ लिया कि हजार शिर पटकने पर भी बूँदी का तोडना लोहे के चने चबा-ना है। बूँदी विजय का साहस करके अपनी उपार्जित विजयकीर्ति को मटिया मेल कर डालना है इसलिये उन्होंने उम्मेदसिंह जी को पत्र लिखा उसमें लिखा कि:—

"हमने कोटा नरेश के वहकाने से व्यर्थ ही आपसे झगडा बढाया। व्यर्थ ही संग्राम किया। अब आप यहां पधार कर हम से मिलिये। हमने बूँदी लेने का और आपसे युद्ध करने का क्षुद्र साहस छोड दिया।"

जब यह पत्र उम्मेदसिंह जी के पास पहुंचा तो पहले वह बहुत ही विचार में पडे। उन्हें संदेह हुआ कि कहीं धोखा न दिया जाय परन्तु यह तलवार बहादुर थे, एकबार जयपुर की सेना में से गोलों की आग में सेना को काई की तरह फाडते हुए लंगडे घोडे से निकल गये थे इसलिये उन्होंने समझ लिया कि यदि धोखा भी होगा तो तलवार के बल से दश बीस को मारकर सेंधिया के घेरेमें से निकल जायँगे। बस इसी भरोसे पर उन्होंने नगर

से निकलकर सेंधिया से **मिलने का साहस** किया । उन्होंने चलते समय यहां के किलेदार भगवंतसिंहजीसे कहाः—

"हम सेंधिया से मिलने जाते हैं । यद्यपि हमें अपने मारे जानेका कुछ भय नहीं है क्योंकि संग्राम में मरने से **राजपूतको स्वर्ग** मिलता है परंतु जो हम मारे ही जांय तो जबतक तुम्हारे शरीर में प्राण रहै तबतक शत्रु बूँदी न लेने पावे । मरने से पहले शत्रुको नगर में घुसने न देना । यही हमारी आज्ञा है ।"

इस तरह की आज्ञा देकर उम्मेदसिंहजी अपनी **तलवार के भरोसे,** अपनी शक्ति के भरोसे और अपने इष्टदेव के भरोसे शत्रु सेना में निर्भय होकर घुस गये । सेंधिया ने इनके आगमन की खबर पाकर इनकी उचित स्थान तक पेशवाई की । इन्होंने उनसे कहा किः—

"क्या हमपर चढाई करके संधि को तोडने आये हो ? क्या अपनी, अपने स्वामी की संधि के टुकडे कर डालने से ही आपका भला होगा ।"

सुनकर सेंधिया लज्जित हुए । उन्होंने फिर कहा किः—

"हम कोटे वालों की **बहकावट में** आगये थे ।"

इस तरह थोडी बहुत सुर्खा सुर्खी होने बाद दोनों में खूब मित्रता का संवाद हुआ । बूँदी की ओरसे जो रुपया देना था वह सेंधिया को देदिया गया और उन्होंने अपनी **सेनाका कूच** किया । कोटे वाले इस बात से लज्जित होकर अक्षयराम कायस्थ सहित कोटे चले गये ।

इसी वर्ष अर्थात् संवत् १८१९ की चैत्र कृष्णा ८ को चौथी रानीजी के गर्भ से **तीसरे महाराज कुमार** सरदारसिंहजी का जन्म हुआ । जोधपुर नरेश इस संग्राममें बूँदी नरेश के सहायक न होकर कृतघ्नता के दोष से कलंकित हुए थे । इस **कलंक के काले टीके** को अपने ललाट पर से पोंछ डालने के लिये महाराज विजयसिंहजी ने इनके भाई दीपसिंहजी से ईडर नरेश की छोटी कन्या का संवत् १८२१ की फाल्गुन शुक्ला ३ को विवाह कर दिया । उम्मेदसिंहजी की बहन का विवाह जोधपुर नरेश से हुआ । यह विवाह संवत् १८२० की वैशाख शुक्ला ९ को हुआ था ।

अध्याय १४.

उपद्रवियों का दमन।

जयपुर पर आट।

जब तक महाराव राजा उम्मेदसिंहजी ने बूँदी का राज्य किया भगवान ने उन्हें कभी कल से न बैठने दिया। अपनी बुद्धि से और तलवार से ज्यों २ यह उपद्रव शान्त करते गये नये २ बखेडे खडे होते गये। उस समय केवल बूँदी में ही बखेडे नहीं उठते थे बरन सारा भारत वर्ष बखेडों से भरा हुआ था। उम्मेदसिंहजी के शासन का अंतिम समय वही है जब मुसलमान बादशाह, नवाब, सूबेदार मटियामेल होकर मट्टी के खिलौने बन-गये थे, मरहठों के प्रतापका उगता हुआ सूर्य उगते २ ही अस्त हो चला था और पुर्तगालों की, फरांसीसियों की अंगरेजों से खूब कटा कटी होने पर भी अंगरेजों का प्रताप रवि ऊंचे की ओर बढ रहा था। इतिहास पढने वाले उस समय की देश व्यापी अराजकता को—राष्ट्रविप्लव को जानते हैं। यह वही समय है जब देश भर में मार काट, लूट खसोट का बाजार गर्म था एक का राज्य दूसरा और दूसरे का तीसरा छीनता था। ऐसे ही समय में, जब और २ राजा अपना २ राज्य खो रहे थे उम्मेदसिंहजी ने अपना खोया हुआ राज्य स्थापित किया। यही इनकी वीरताका, और नीति निपुणता का प्रमाण है। उस अराजकता के समय बूँदी की शांत प्रजा ने अपने राजा को शास्त्र के अनुसार ईश्वर का स्वरूप मानकर कोई उपद्रव न किया किन्तु बूँदी की सीमा के निकट मेवाड राज्य के जो जागीरदार थे उन्होंने इस राज्य में आ २ कर लूट खसोट करना आरंभ करदिया। मेवाड से इन दिनों चाहे जैसा मेल होने पर भी प्रजापालक उम्मेदसिंहजी अपनी प्राण समान प्रजा की ऐसी पीडा कब सहन कर सकते थे?, उन्होंने तुरंत ही अपनी सेना भेजकर तलवारों के मारे मेवाडी लुटेरों को व्याकुल कर दिया और उन्हें पकडवा कर बूँदी मंगवा लिया।

टहला के, मंगटला के, रिंटहरा के और ऐसे ही अनेक मेवाडी जागीरदार जब कैद होगये तब मांगटला के कान्हावत ठाकुर की दाढी मोंछ मुंडवा ली इसका कारण यही था कि इसने किसी समय यह कहा था कि "उम्मेदसिंहजी मेरी जागीर की जितनी भूमि में पैर रक्खैं उतनी दान करदूँ ।"—इस घटना की जब उदयपुर के महाराना अड्सी (अरिसिंह) जी को खबर हुई तब उन्होंने इन लोगों को छुडाने के लिये अपना मंत्री भेजा। महाराना साहिब की शिफारिश से इन्होंने मेवाडी कान्हावत सरदारों को दंड का रुपया लेकर छोडदिया।

हिन्दी के नामी विद्वान पंडित प्रतापनारायण मिश्रने राजाओं की चिन्ता के विषय में एक जगह अच्छा लिखा है। उन्होंने लिखा है कि:—

"राजभार जिहिंके कर मांहीं, कबहु निचिंत होत वह नाहीं।
चिन्ता राज बढावन केरी, आठों जाम रहति उर घेरी॥
रहै सुखित नित प्रजा हमारी, है यह सोच और हू भारी।
जदपि छत्र सिर धूप बचावै, पै कर भारहु अधिक जनावै।
तिमि नृप धर्महुको गति अहई, सुखहु रहै चित चिंतहु रहई।
जाचक जन निज अभिमत पाई, तजि सब सोच सुचित ह्वै जाई।
पै महिपाल लोक हितकारी, एकहु पल नहिं रहत सुखारी।
जाहि जगत चिंता दिन राती, सो निचिंत केहि छिन केहि भांती।"

इस तरह मेवाड वालों का उपद्रव शांत होगया और मेवाड में से झीझोला, बीखरन और बाकरा के जागीरदार बूँदी के अधीन होगये परन्तु अब खैराडके जंगली मीनों को लूट खसोट करने की सूझी। अवश्य ही एक बार ये मीने बूँदी लेने के काम में उम्मेदसिंह जी के सहायक हुए थे और इस सहायता के उपलक्ष्यमें उनका सत्कार भी हो चुका था परन्तु यह जाति, स्वभाव से ही शांति के साथ बसने वाली नहीं है। लूट खसोट और चोरी डाके इसकी स्वाभाविक जीविका है। सुनार यदि अपने नातेदारों के जेवर में से चोरी करना छोड दे तो यह जाति भी अपने काम में अपना पराया समझ ने लगै। बस इसीलिये इन्होंने लूट

आरंभ करदी । चाहे अपने आत्मीय ही क्यों न हों, चाहे अपने पुत्र ही क्यों न हो परन्तु न्यायी राजा, प्रजा के सताने वाले को अवश्य दंड देता है । बस इसी न्याय से, इसी नीति से उम्मेदसिंहजी ने अपनी सेना भेजी । मीनों ने अपने स्वामी की सेना का भेट से आदर करने के बदले **तलवार से सत्कार** किया । हरिणा में, खेडे में, छुहारी में, गैडोली में दोनों ओर से खूब ही तलवारों की खचाखच हुई, भालों की मार हुई, तीरों की बौछार हुई और अंतमें ९०० मीने मारे जाने पर **उनका दमन हुआ** । यह लडाई संवत् १८२२ की शरद् ऋतुके आगमन में हुई ।

इस तरह से यद्यपि इन्होंने मेवाडों का और मीनों का दमन करके राज्य में शांति स्थापित करदी थी, और बाहरी आक्रमण की शांति के साथ २ ही इन्होंने एक २ करके भीतरी कांटे भी निकाल दिये थे परन्तु अभी **इन्हें एक कांटा** और निकालना था । **पगारां के जागीरदार** उद्योग सिंह जी नाथावत पहले दलेलसिंहजी से और फिर बूँदी की अधीनता छोडकर बूँदीपर चढाई करते समय महाजी सेंधिया से जा मिले थे । यह भी **बागी हो कर** लूट खसोट करते थे । इस कारण उम्मेदसिंह जी ने पगारां की जागीर संवत् १८२३ में इनके चाचा वखतसिंह जी को देदी । उद्योगसिंह जी बूँदी के सैनिक की तलवार से बीच बाजार में मारे गये ।

संवत् १८२३ में होल्कर मल्हार राव जी मरगये । इन्दौर की गादी इनके नाती मालराव जी को मिली । बूँदी से इनके लिये टीके का दस्तूर भेजा गया परन्तु यह इन्दौर की गद्दी विशेष दिन न भोगने पाये संवत् १८२४ में इनके मरने पर तक्कूजी (तुकोजी) इनके उत्तराधिकारी हुए । इतना लिखने का प्रयोजन यही है कि अब होलकर का जमाना बिलकुल पलट गया था । जब मरहठों की स्थिति बिगड गई थी तब **भरतपुरके जाटोंने** शिर उठाया । जब संवत् १८२४ में उम्मेदसिंह जी ने भाई का और पुत्रका विवाह कर छुट्टी पाई और जब इन्होंने अपनी बांसवाडे वाली माता की क्रिया करके छुट्टी पाई तब जयपुर से जाटोंकी लडाई छिन गई । जाट जवाहर

मल्ल जी के आतंक से दुखित होकर उनके भाई नाहरसिंहजी ने जयपुर की शरण ली थी । उनकी **रूपवती पत्नी** को अपनी जोरू बनाने के लिये जब जवाहरसिंह जी ने अत्याचार किया तब वह भाग कर जयपुर आगये । महाराज माधवसिंहजी ने उन्हें निवाई जागीर में देकर उन्हें आश्वासन दिया । वह इस तरह जयपुर के आश्रय से अवश्य ही कुछ काल तक अपने दिन विताते रहे परन्तु उनको काल ने शीघ्र ही आ घेरा । जब वह मरगये तब **जवाहरमल** जी ने उसी रमणी को लेने के लिये **जयपुर पर दबाव** डाला । माधवसिंह जी वास्तव में दबाव में आगये । उन्होंने विवश होकर उस जाटनी को भरतपुर भेज देना चाहा । निःसहाय अबला उसी तरह भयभीत होगई जैसे कपिला गाय सिंहके पंजे में फंसने से घबडाकर कांपती है । उसने हाथ जोडकर, झोलियां बिछा कर आंखों से आंसूभर कर रोते २ कहाः— "महाराज, मुझ अवला को उस दुष्ट के पास न भेजिये । वह मुझे अपने घर में डाल कर **जोरू बनादेगा** । मैं सती हूं । श्रीमान्, वहां भेज कर मेरा सतीत्व न बिगाडो । आप महाराजाधिराज हैं । एक अबला के धर्म की यदि आपसे रक्षा न हो सकी तो आप किस के महाराज ? आपने राजा होकर क्या किया ? आपने यदि सती की रक्षा न की तो आपने **वीर क्षत्राणी** को क्यों लजाया ? मैं आपकी गौ हूं । मैं अनाथ विधवा आप की शरण आई हूं । आप जानते हैं **शरणागत को त्यागने** का कितना भारी पाप है । आपही के पूर्वज **भगवान रामचन्द्रजी** ने कहा है—"शरणागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि, ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि—" महाराज इस वाक्यको याद करके मेरे त्याग करने में महा पापी न बनिये । मुझे त्यागकर संसार में आप मुंह दिखाने योग्य न रहेंगे । मैं अनाथ विधवा हूँ । मेरा इस संसार में कोई नहीं है । मेरी रक्षा कीजिये । मैं आपकी शरण आई हूँ ।"

पत्थर को पसीजा देने वाली—कठोर हृदय को पिघला देनेवाली उस अनाथ अवला की करुणा भरी वाणी सुनकर महाराज का हृदय अवश्य ही उस समय **पसीज गया,** और उस समय उन्होंने जाट को सूखा उत्तर भी देदिया

परंतु अंतमें उनका **दुर्बल कलेजा** जवाहरमल जाट का कोप न संभाल सका। जवाहरमल जाटने जोश में आकर जबाब दिया कि:—

"मेरी भौजाई को, क्या आप अपने घरमें डालना चाहते हैं? समझे रहना इसका फल आप के लिये अच्छा न होगा।"

इस बात को सुनकर महाराज **घबडा** उठे। वह **जाटकी एक ही घुडकी** से अपनी शरणागत वत्सलता भूल गये। यद्यपि उन्होंने उस जाटनी को निकाल दिया परंतु साथ ही उसका प्राण भी निकल गया। जाटनी अपने दुष्ट देवर के पास न गई किन्तु उसका प्राण अपने सतीत्व की रक्षा के लिये स्वर्ग को प्रयाण कर गया उस जाटनी को धन्य है जिसने विष खाकर भी अपना धर्म बचाया परंतु महाराज आपके धर्म के लिये मैं क्या कहूं इतिहास पढने वाले कहते होंगे, इस चरित्र को पढनेवाले कहेंगे कि आपने एक अनाथ विधवा को अपने शरणसे, अपने आश्रय से निकालकर उसी बातको सत्य कर दिया जो जाटनीने आपसे कही थी। आपने क्षत्रिय धर्म को, राज धर्म को लात मारकर स्वार्थके लिये, एक **अदना जाट** से डरकर जो कुछ करना था सो किया परंतु फिर भी आप उस **जाटके कोप** से न बच सके।

जवाहरमलने जयपुर पर चढाई करने के लिये अपनी सेना सजाई। इस बात को जानकर मारवाड नरेश प्रसन्न हुए। वह पुष्कर में जाट को बुलाकर उससे मिले। उन्होंने जवाहरमल का क्षत्रिय नरेशों के बराबर सम्मान किया और इसी तरह करने के लिये जयपुर नरेश को लिखा परंतु महाराज माधवसिंहजी इस बात को स्वीकार न कर सके। उन्होंने **कोरा उत्तर** देदिया और बस इसीपर **जाट जयपुर युद्ध** का घमसान मच गया। संग्राम में खूब ही तलवारों की खचाखच हुई और दोनो ओर के बडे २ बलीविक्रम कटके काम आये। कछवाहों ने इस लडाई में जान झोंककर **जाटों का विनाश** किया। यदि जवाहरमल की रक्षा के लिये उसकी सेना का समरू (?) फिरंगी न होता तो उसका प्राण बचना कठिन था परंतु भरतपुर के जाट राजा को उस ने जीता जागता भरतपुर पहुँचा दिया। इस लडाई में जयपुर की जीत हुई। जीत हो या हार हो जिस बात

का इस चरित्र से विशेष संबंध नहीं है उसे बढाकर मुझे विषयांतरमें नहीं जाना है परंतु इतना वर्णन एक ही प्रयोजन से किया गया है और एक ही बात के लिये इस युद्ध का इस चरित्र से संबंध था। बात यही थी कि महाराव राजा उम्मेदसिंहजी ने पहले की तरह इस लडाई में भी अपने पाटवी महाराज कुमार अजितसिंहजी को जयपुर की सहायता के लिये भेजा था। सचमुच ही महाराजकुमार इसबार युद्ध के लिये बिलकुल सजकर आये थे और आप अपना रणपांडित्य दिखाने को आतुर थे परंतु महाराज माधवसिंहजी ने इनकी उमर कम समझ कर इन्हें लडाई के मैदान में न जाने दिया। इन्हें अपने महलों में बडे सत्कार से रक्खा, इन्हें खूब सैर शिकार कराई, इनके साथ हाथियों पर बैठकर वसंतपंचमी के खूब होली खेली और अंत मे दयाराम पुरोहित से कहा कि झलाय के राजाकी लडकी को गोद लेकर हम उसके साथ महाराजकुमारका विवाह करेंगे। यद्यपि दयारामने इस बात को स्वीकार न किया परंतु उन्होंने अपनी ओर से इनका खूब आतिथ्य किया। इस तरह रहते २ जब जयपुर नरेश माधवसिंहजी का संवत् १८२९ की चैत्र शुक्ला ११ को देहान्त होगया तब उनके पुत्र पृथ्वीसिंहजी के गद्दी बैठाने बाद राजसी सम्मान ग्रहण करके यह बूँदी पधार आये। जाट जयपुर का युद्ध जिसका वर्णन ऊपर हुआ है संवत् १८२४ के हेमंत ऋतु में हुआ।

इसके बाद संवत् १८२९ की वैशाख शुक्ला १० को महाराज कुमार अजितसिंह जी का कृष्णगढ नरेश बहादुरसिंहजी की कन्या सूर्यकुमरि जी से विवाह हुआ। इसके सिवाय बूँदीके कुमरोंके, भाई के पुत्र के जो विवाह इस वर्ष में हुए उनके लिखने की यहां आवश्यकता नहीं है।

इसी वर्ष में जब तुकोजी होलकर का इस ओर दौरा हुआ तब उम्मेदसिंह जी ने उनके लिये टीके का दस्तूर भेजा। इस वर्ष में समय पाकर दबे दबाये मीने फिर उठ खडे हुए। उन्होंने फिर बूँदीराज्य की प्रजा को लूट खसोट से सताना आरंभ किया। दो बार युद्ध में भेजकर भी महाराव राजा उम्मेदसिंहजी अपने पाटवी महाराज कुमार की तलवार के हाथ न देख

सके थे। उन्हें अभी मालूम नहीं हुआ था कि इनमें पराक्रमकी कितनी लाली है इस लिये इसबार उन्होंने आज्ञा दी किः—

"लालजी, तुमहीं जाओ। तुमही इन दुष्टों का दमन करके अपनी प्रजा का दुःख दूर करो। अब हमारा बुढापा पास है। अब तुम्हें अपनी प्रजाका रंजन करके उसके आशीर्वाद से सुख पाना है। हम अपनी आंखोंसे देखलें कि तुम कैसे हो इसीलिये तुम्हें तलवार के हाथ दिखाने का अवसर देते हैं।"

पिताकी आज्ञा को माथे चढाकर अजितसिंह जी गये और बारह खेडों के मीनों को घेरकर उनको तहस नहस कर उनके बडे २ मुखियाओं को पकड़ लाये। इसके बाद इनके दोनों छोटे महाराजकुमार बहादुरसिंह जी और सरदारसिंहजी का गर्गराट (गँगराट) में विवाह हुआ। ये विवाह संवत् १८२९ की माघ शुक्ला ९ को हुए। इन्होंने महाराज कुमार बहादुर सिंहजी को गोठडा और महाराज कुमार सरदारसिंहजी को कुआरी जागीर में दी। इनमें से तीन पीढी-बाद गोठडे वाले का कुल नष्ट होगया।

अध्याय १९.

श्री जी साहब का राज्य त्याग।

पुत्र को राज्य।

मैं पहले एक बार नहीं अनेक बार लिख चुका हूँ कि महाराव राजा उम्मेद-सिंहजी केवल बूँदी राज्य का उद्धार करने के लिये पैदा हुए थे। वह पिता के हाथ से खोई हुई बूँदी में नीति से और तलवार से हाडों का फिर राज्य स्थापित करके उसे चिरस्थायी करने के लिये पैदा हुए थे। इस भाग के गत पृष्ठों को पढकर पाठकों ने भलीभांति जान लिया होगा कि उम्मेदसिंहजी ने घोर संकट सहकर, विषय सुख को लातों से रौंदकर एक पराक्रमी पुरुष की तरह अपनी माता की प्रतिज्ञा पालन की, अपना कर्तव्य पालन

किया और सिंह बनकर, हाथियों का मस्तक विदारण करने वाले केसरी बन कर जयपुर जैसे मतवाले मातंग का पेट फाड कर बूँदी निकाली । इस कुल में सबही राजा बहादुर हुए, सबही अपने २ समय के अनुसार नाम करके दुनिया को दिखला गये कि वीर हाडा ऐसे होते हैं परंतु उनमें भी बूँदी में राज्य का संस्थापन करने वाले **देवसिंहजी**, बूँदी राज्य का विस्तार करने वाले **सुरजनजी**, स्वामिभक्ति के लिये अपनी तलवार से सैकडों के शिर काट कर अटलकीर्ति के साथ रणशय्या में सोने वाले **शत्रुशल्यजी**, धर्म के लिये बादशाह को तिनके के समान समझने वाले **भावसिंहजी** बूँदी राज्यका उद्धार करके फिर हाडाओं का राज्य स्थापित करने वाले **उम्मेदसिंहजी** और बूँदी राज्य को सुधार ने वाले राजर्षि **रामसिंहजी** के समान कोई नहीं हुए, बूँदी में क्या और २ रजवाडों में नहीं हुए । इनमें से और सब नरेशों का थोडा बहुत चरित्र पाठक इस पोथी में पढचुके । महाराव राजा रामसिंहजी का विमल चरित्र तैयार करने की यदि भगवान ने मुझे शक्ति दी, अवसर दिया और उमर दी तो पाठक देखेंगे ।

महाराव राजा उम्मेदसिंहजी अपना कर्तव्य पालन करके हाडा जाति की अटलकीर्ति स्थापित करने के लिये पैदा हुए थे । वह मुनि दुर्लभ राजपद पाकर भोग विलास में, राजमद में मतवाले बनकर "तप से राज्य और राज्य से नरक" पाने के लिये पैदा नहीं हुए थे । उन्होंने **तेरह वर्ष की उमर से** लेकर अब तक एक भी दिन **विश्राम नहीं लिया** । वह अब तक सोते जागते खाते पीते दिनरात युद्ध कौशल से शत्रु का दमन करने में, राजनीति से शत्रु को दवाकर अपना मतलब गांठने में, ईश्वरभक्ति से दैवी सहायता प्राप्त करने में और बाहरी भीतरी कांटों को निकाल कर राज्य को निष्कंटक बनाने के विचार में लगे रहते थे । जब उन्होंने समझ लिया कि अब बूँदी राज्य बाहरी शत्रुओं से बिलकुल रक्षित है, जब वह जान गये कि अब **भीतरी कांटा** एक भी नहीं रहा है, जब उन्हें विदित होगया कि प्रजा, परिजन, बंधु बांधव, उमराव, कर्मचारी सबही राज भक्त हैं, सबही महाराज कुमार को जी जान से चाहते हैं और जब उन्होंने अपने पक्के अनुभव से निश्चय कर

लिया कि पाटवी **महाराज कुमार** विद्या में, बुद्धि में और शक्ति में राज्य-शासन करने के **योग्य होगये** हैं तब उन्होंने बडे कष्ट से उपार्जित किये हुए **राज्य का शासन** इसतरह **छोड दिया** जिस तरह हाथी गले की माला-फूलों की माला छोडदेता है। आजकल हजारों मनुष्य ऐसे होते हैं जिनको बुढापे के कारण यमराज बुलारहा है, जिनके लिये मसानों में लकडियां पहुंच चुकी हैं और जिनका शरीर बुढापे की बीमारी से घोर कष्ट सह रहा है वे भी संसार के झंझटों से अलग होनेका नाम सुनते ही सो पत्थर लेकर मारने को दौडते हैं परंतु युवा उम्मेदसिंहजी ने बचपन से जवानी तक में घोर कष्ट सहकर-शिर सांटे की खेलकर राज्य स्थापित किया और जब राज्य सुख भोगने का समय आया तब उससे संबंध तिनके की तरह तोड डाला। कवि राजा सूर्यमल्ल जी लिखते हैं कि:—

"जाके काज विपत्ति बिताई बहु कष्ट सहि,
द्वै द्वै दिन मांहि मेटि जाठर दुसह दाह।
मरन विचारि मारि मारि तरवारि झारि,
झंडे पचरंग जंग मंडे चहुवान नाह।
जैंपुरको जीति नीति दुर्लभ दिखाई सब,
भूपन दिखाई भूप आदि रजपूती राह।
श्रीजित[1] शहर बूँदी अष्टम[2] उम्मेद मनु,
कासी[3] जान लीनी तनु[4]कासी जान लीनी वाह॥"

सचमुच ही सूर्यमल्लजी का लिखना यथार्थ है। उम्मेदसिंहजी ने जिस बूंदी को **दो दो दिनकी भूख सहकर,** तलवारें झाडकर, जयपुर का पेट विदारकर वीर राजाओं को पूरी रजपूती दिखाकर पाया था उसे **तिनके के समान** जानकर छोडदिया। क्यों पाठको, आप लोगोंने प्राचीन, पुराण प्रसिद्ध राजाओं के सिवाय **ऐसा त्याग** किसी में देखा है? कदापि नहीं।

पाठक यह न समझें कि महाराव राजा उम्मेदसिंहजी ने जिस समय राज्य छोडा उस समय उनकी उमर सौ वर्ष की होगी, अस्सी वर्ष की होगी—

---

१ उम्मेद सिंहजी का उपनाम। २ आठवें मनु। ३ काशी। ४ तिनके के समान।

नहीं तो कम से कम साठ वर्ष की तो अवश्य होगी । नहीं २ उन्होंने राजपाट छोडकर जिस समय धर्मशास्त्र के अनुसार दो आश्रमों का कर्त्तव्य पालन करने के अनंतर तीसरा **वानप्रस्थ आश्रम** ग्रहण किया उनकी उमर केवल ४० वर्ष १० महीने १२ दिन की थी। उनका जन्म संवत् १७८६ की आषाढी अमावस्या को हुआ था और उन्होंने वैशाख शुक्ला १२ संवत् १८२७ को **राज्य छोड़ दिया** ।

इस वर्ष में जब वह अपने **कर्तव्य से निश्चिन्त हुए** तब ही उन्हें **राज सुख से विराग हुआ** । वह डरने वाले, झिझकने वाले, आना कानी करने वाले मनुष्य न थे। जो विचारा, जो बात बुद्धिके कांटे में ठीक उतर गई और जिसे उन्होंने अपना कर्तव्य समझ लिया उसे **जानपर खेलकर** किया और जब तक वह काम पूरा न हुआ बराबर उसके पीछे लगे रहे। अपना कर्तव्य पालन करने में सुख को और प्राण को न्योछावर कर देना ही उनका **दृढव्रत** था, यही उनका नियम था और यही उनका धर्म था। जब उन्होंने सोचा कि अब बूँदी उद्धार के कर्तव्य से छुट्टी मिली है तब ही तुरंत राजपाट छोडकर **भगवद्भक्ति करने के लिये** तीर्थ यात्रा करनेमें वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करने में उनका मन जा लगा और बस इसी लिये उन्होंने उक्त तिथि को शुभ लग्न देखकर अपने पाटवी महाराजकुमार **अजितसिंहजी को राज्य दे दिया** । जिस समय इन्हें राज्य दिया गया इनकी उमर केवल १७। वर्ष की थी।

यद्यपि महाराज कुमार अजितसिंह जी पिता की शिक्षा से, उनके अनुभव से, उनकी आंखें देखकर **पक्के होगये थे** । परंतु अभी वह बहुत **कम उमर** थे। कम उमर अवश्य थे परंतु जिनको अनुभवी पिताने अच्छा समझ लिया वह किसी काम में कम न थे। वह यद्यपि कम न थे परंतु प्रजा को **अनुभवी महाराज के वियोग** का बहुत दुःख हुआ। अहा! वह भी समय बूँदी के लिये बडा विचित्र था। एक ओर महारावराजा उम्मेदसिंहजी जब "सब तज और हर भज" के विचार से भक्तिरस का आनंद लेने के

लिये धर्मोत्साह में मग्न हो रहे थे तब दूसरी ओर से सरदारों के, उमरावों के, कर्मचारियों के, प्रजा के मुख फीके, पीले पडगये थे। भगवान दशरथ नंदन रामचन्द्रजी के कुश को राज्य देकर स्वर्ग पधारने के समय अयोध्या की जो दशा थी वही दशा इस समय बूँदी की थी। सर्वव्यापी रामचन्द्रजी सदेह स्वर्ग पधारने पर भी जैसे घट २ में सदा सब के हृदय में वास करते हैं उसी तरह देह धारण करनेपर भी उम्मेदसिंह जी **जीवन्मुक्त** थे। आज महाराज के हृदय में हर्ष है महाराज कुमार के हृदयमें राज्य पाने का हर्ष और कर्तव्य पालन की चिन्ता है। आज अंत:पुर में शोक है परिजन परिवार में शोक है और प्रजा में शोक है। अवश्य ही आज बूँदी में मूर्तिमान् शोक विराजमान है, और साथ ही उम्मेदसिंहजी को उनका परिवार, उनकी प्रजा, उनके परिकर राज्य त्यागने से निषेध करते हैं परंतु उन्होंने जो दृढसंकल्प किया है वह **अमिट है**। अनिवार्य है और इसी लिये महाराजकुमार अजितसिंहजी को राज्य देने का नगर में और राजमहल में **उत्सव हो रहा** है। महारावराजा उम्मेदसिंह जी जैसें प्रतापी नरेश की प्रतिभा के आगे, उनकी उत्कट इच्छा होने से लोगों ने अपना शोक कंजूस के धन की तरह अपने ही मन में छिपा रक्खा है। आज सब लोग राज तिलक के काम काज में लगे हुए हैं नियत समय पर भरे दरबार में राज पुरोहित झींतूरामजी ने, प्यारे राजकुमार **अजितसिंहजी** को पिताके समक्ष ही महाराव राजा बनाने के लिये **तिलक किया** शास्त्र विधि से राज्याभिषेक किया व्यास मानिकरामजीने तिलक किया और तब महारावराजा उम्मेदसिंहजी ने पुत्र को तिलक करके अपनी **कमर की तलवार** खोलकर पुत्र की कमर में बांधते हुए अपने ही हाथसे अपने पुत्र को **महाराव राजा बना-दिया**। मानो राज्यपद का चार्ज देदिया। राज्य के उच्च से उच्च कर्मचारी राजा की आज्ञा से दूसरे को चार्ज देते हैं परंतु इन्होंने अपनी इच्छा से—ईश्वर की प्रेरणा से चार्ज दिया। चार्ज देते समय उन्होंने प्रिय पुत्र से क्या कहा सो इतिहास में लिखा नहीं है परंतु मेरी कल्पना कहती है कि उन्होंने यह अवश्य कहा होगा कि:—

"प्यारे पुत्र, हम ने जो कुछ विचारा उसे पार उतार दिया। हमने अपना कर्तव्य पालकर छुट्टी पाई। हमने जो कुछ किया है उसका **निबाहना तुम्हारे हाथ** है। हम ने कष्ट सहकर जो कुछ पाया है उसकी रक्षा करो अपनी प्रजा का पालन करो और सुख से रहो। यही हमारा आशीर्वाद है। ईश्वर, भगवान इष्टदेव रंगनाथ जी तुम्हें अपने कर्तव्य पालन की शक्ति देकर **चिरंजीवी करें।** देखो हमने बडे २ परिश्रम उठाकर, अपने **रक्त की बूँदों से** जिस बूँदी का सिंचन किया है उसकी रक्षा करने से, प्रजा को सुख देने से, अपने प्राण जाने पर भी मुँह न मोडना। यही हाडा जाति का व्रत है। अपनी जाति के, अपने कुल के इस कठिन व्रत का पालन करना ही **तुम्हारी तपस्या** है। हम इस तपस्या को पूरी करके अब दूसरी (ईश्वरको पाकर जीवन्मुक्त होने की) तपस्या का लगा लगाते हैं। अब तुम आज से, अभी से—इसी समय से राज्य रक्षा की, प्रजा पालन की कठिनतर **तपस्या में प्रवृत्त** हो। देखो, अपने कुल धर्म का निर्वाह करके प्राणों की बाजी लगाने से, शरीर सुख को लातों से कुचलने ही में **सच्चा हाडापन** है, सच्चा राज पद है।"

ये बातें उम्मेदसिंहजी के अंतःकरण ने, उनके अनुभवी मनने अवश्य कही होंगी और होनहार युवा महाराज ने भक्तिपूर्वक शिर झुकाकर माथे चढाया होगा। जब उम्मेदसिंह जी अपनी तलवार पुत्र को बंधाकर उन्हें राज्य का चार्ज दे चुके तब इन्द्रगढ के जागीरदार भक्तरामजी ने, खातोली के जागीरदार रत्नसिंहजी ने, बलवन के मालूमसिंहजी ने, खेडाके भगवंत सिंह जी ने, आंतरदे के दुर्गसिंहजी ने, जजावर के गजसिंहजी ने, धोवडे के भवानी सिंहजी ने और इसतरह सबही सरदार उमरावों ने, बडे २ राज कर्मचारियोंने घोडे और सिरोपाव नजर किये। नजरें हुईं, न्योछावर हुईं। इनाम दिये गये और राजा के सिंहासन पर बैठने के समय जो २ उत्सव होता है सो सब हुआ।

इस खबर को पाकर **राजपूताना भर में,** समस्त रजवाडों में कहीं हर्ष, कहीं शोक और सर्वत्र **आश्चर्य छागया।** आश्चर्य की बात ही थी।

उन्होंने घोर कलियुगमें तृतीय आश्रम का आश्रय लेकर एक **अनहोना काम** करदेने में बडे २ त्यागी योगियों को **मात करदिया** और विशेष आश्चर्य इसी बात का हुआ कि प्राणोंपर खेलकर जिस राज्य को पाया था उसे तिनके की तरह छोड दिया। इस बात की सूचना होते ही उदयपुर से, जयपुर से, जोधपुर से कोटे से, करौली से, बीकानेर से नैषध देश से, नरवर से, कृष्णगढ से और शिवपुर से टीके के दस्तूर में हाथी, घोडे, सिरोपाव और आभूषण आये। पूना नरेश ने, होळकर ने, सेंधिया ने भी टीके का दस्तूर भेजा। उसी दिन से अजितसिंह जी के छोटे भाई बहादुरसिंह जी और सरदारसिंह जी को महाराजा की पदवी मिली और महाराव राजा उम्मेदसिंहजी बूँदी में समस्त रजवाडों में और भारतवर्ष में **श्री जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।** सूर्यमल्लजी ने इनका नाम श्रीजित लिखा है और वास्तव में इन्होंने श्री—लक्ष्मी को जीत लिया था क्योंकि यदि जीता न होता तो यह ऐसी राज्य श्री को सहज ही छोडने में समर्थ न होते। खैर कुछ भी हो टाडसाहब ने इस घटना के बाद से इनका श्री जी नाम लिखकर संबोधन किया है और बूँदी की प्रजा श्री जी साहब कहती हैं।

इस घटना का टाड साहब ने अपने ग्रंथ में कुछ विस्तार नहीं किया है। वह लिखते हैं कि:—"संवत् १८२७में युवराज पद देने का उत्सव होकर उम्मेदसिंहजी का **राजनैतिक अस्तित्व** समाप्त हो गया। उनकी एक मूर्ति बनाकर चिता पर उसका दाह किया गया। अजितसिंह जी ने अपने बाल और अपने **गलमुच्छे उतरवाये**। रनवास में **रोना कूटना** मच गया। जैसे मृतक के लिये १२ दिनतक शोक किया जाता है वैसे उम्मेदसिहजी की मृत्यु मानकर **"मातम" किया गया।** बारह दिन के बाद राजतिलक हुआ और तब से अजितसिंह जी बूँदी के समस्त हाडाओं के अधीश हुए।"

अवश्य ही टाडसाहब ने यह बात किसी लेख के आधार पर लिखी होगी क्योंकि उन जैसे नामी इतिहास लेखक सहसा कल्पना के घोडे नहीं दौडा सकते हैं परंतु बूँदी के जो नामी २ इतिहास ग्रंथ मेरे देखने में आये

हैं उनमें यह बात नहीं है। धर्म की रूढि से भी यह बात असंभव है क्योंकि न तो वानप्रस्थ आश्रम के आरंभ में ऐसा वर्ताव किया जाता है और न राजकुमार को युवराज पद देते समय ऐसा करने की परिपाटी है। यदि उनका कहना सत्य भी हो तो इस में **दो भूलें हुई** हैं। एक जहां मैंने उनके वाक्य के आरंभ में "युवराज" लिखा है वहां वह अंगरेजी ग्रंथमें जुगराज लिख गये हैं। यद्यपि यह भूल एक अंग्रेज के संकृत शब्द समझने में, उसका उच्चारण करने में हो सकती है परंतु उन्होंने जब अजितसिंह जी के **गलमुच्छों** का मुंडन होना लिखा है तब उनकी उमर केवल १७ । वर्ष की थी। इस वय में गलमुच्छें तो क्या आदमी के अच्छी तरह मोंछें भी नहीं आतीं हैं। उस समय अजितसिंह जी के मोछों की रेखें बंधती थीं। ऐसा उनके पुराने चित्रों से माळूम होता है। इस भूल को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि उन्होंने इस घटना की कल्पना न की हो तो जिसने उन्हें ऐसी खवर दी उसने **अवश्य कल्पना की होगी**।

खैर कुछ भी हो। जिस समय श्री जी साहव ने राज्य छोडा अच्छे २ नामी दश सरदार अनी वनी के समय प्राण झोंक देने वाले बीर क्षत्रिय अपने साथ रक्खे और बूँदी के ईशानकोण में डेढ कोश पर केदारेश्वर महादेव के निकट वाणगंगा के तट पर एक महल में अपना निवास रक्खा। अपने खर्च के लिये वडौदिये का परगना अलग करके इसी समय से राज्यसे अपना संवन्ध छोडदिया और ऐसा छोडा कि बूँदी नरेश को गाढी भीड के समय दो चार वार सहायता देने के सिवाय कभी उसकी ओर आंख उठा कर भी नहीं देखा।

श्री जी साहव ने राज्य छोडने पर भी किस तरह राज्य की रक्षा की, विपत्ति के समय किस तरह सहायता की, राज्य छोडकर क्योंकर उन्होंने अपने धर्म का, अपने आश्रम का निर्वाह किया सो इस पुस्तक का चौथा खंड पढने से माळूम होगा। इस खंड में उनके वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने से पहले की दो एक बातें एक अलग अध्याय में लिख कर मैं इसे समाप्त करूँगा।

अध्याय १६.

परिशिष्ट।

टाड साहब कहते हैं कि-"राज्य छोडने के बाद श्री जी ने इस वादी के उस पुण्यस्थान में निवास किया जो पठार के प्रथम नरेश को आरोग्य करने में जादूकासा काम देगया था, जो एक गंगाके नामसे प्रसिद्ध है और जहां केदारनाथ हैं। इसी जगह श्रीजी ने बीर यात्रा करके अनेक प्रान्तोंके फूल और फल ला २ कर इकट्ठे किये थे।" उनका यह संकेत उसी स्थानसे है जिसका वर्णन गत अध्याय में होचुका है। अब इस अध्याय में दोही बातें लिखनी है। एक उन्होंने कितने विवाह किये और उनसे क्या २ संतान हुई और दूसरे उनके समय में बूँदी में कितने बडे २ मकान वा महल मन्दिर इत्यादि बनाये गये।

श्रीजी साहब के विवाहों का और उनकी संतानोंका कुछ२ वर्णन इस खंड के गत अध्यायों में प्रसंग वश हो चुका है परंतु यहां एक स्थान में लिख देने से पाठकों को अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि उनके कितनी प्रजा हुई। **उनका पहला विवाह** गर्गराटपुर (गँगराड) नरेश झाला दलपतसिंहजी की तनया चिमन कुमरिजी से, **दूसरा** रास नरेश वखतसिंहजी की सुता कुंदन **कुमरी** जी से, **तीसरा** ईडर नरेश के चाचा रामसिंहजी की दुहिता बखत कुमरिजी से और **चौथा** ईडर नरेश की कन्या उदय कुमरिजी से हुआ। यही चौथा विवाह जोधपुर नरेश विजय सिंहजी ने इनको बुलावाकर अपनी कृतघ्नता दबाने के लिये कराया था। इस तरह इनके महारानी झाली जी, दूसरी रानी उदावतजी और तीसरी तथा चौथी राठोड जी कहलातीं थीं। सब से पहले तीसरी रानी के पुत्र हुआ था परंतु नाम पहले ही उसका नाश होगया इस कारण दूसरी रानी ऊदावत जीके **बडे पुत्र** महाराज कुमार **अजितसिंहजी** ही इनके पाटवी कुँवर हुए। इनके सहोदर भाई **बहादुरसिंहजी** और चौथी रानी के दो पुत्र हुए। इनमें एक **सरदार-**

सिंहजी और दूसरे त्रिलोक सिंहजी हुए । इनमें से त्रिलोक सिंहजी का शीघ्र ही मरण होगया । श्रीजी साहबके पांच पुत्रोंमेंसे केवल तीन विद्यमान रहे जिनमें बडे महाराज कुमार अजितसिंहजी राज्यके अधिकारी हुए दूसरे महाराज कुमार बहादुर सिंहजी को गोठडा और तीसरे सरदार सिंहजी को कुआरी जागीर में मिली । श्रीजी साहव ने चार विवाह करने के सिवाय दो खवासिनें भी कीथीं । इनमें पहली खवास रूपरसराय जी और दूसरी गुमानराय जी थीं । कदाचित् रूपरस रायजी के कुछ संतान न हुई किन्तु गुमान रायजी के दो कुँवर और दो बाई जी हुई । इनके पहले कुँवर का नाम शिवसिंहजी और दूसरेका नाम संग्रामसिंहजी था । इनकी बड़ी कुमारि का नाम अनिरुद्ध कुमारि और छोटी का व्रज कुमारि रक्खा गया । बडी का विवाह जयसिंहजी से और छोटी का जैतसिंहजी से हुआ । बड़ी के राज सिंहादि सात पुत्र और छोटी के नवलसिंहजी एक हुए । श्रीजी साहब के भाई दीपसिंहजी के छः विवाह हुए और इनसे एक एक पुत्र और दो कन्यायें उत्पन्न हुईं । इस जगह दीपसिंहजी की संतानोंका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं हैं और न वहादुर सिंहजी, सरदार सिंहजी की प्रजा का हाल लिखना अपेक्षित है । हां महाराव राजा अजितसिंहजी के विवाहों और संतानों के विषयमें कुछ लिखना है सो चौथे खंड में प्रसंगोपात्त लिखा जायगा प्रसंगोपात्त कहने से मेरा प्रयोजन यही है कि मुझे इस पुस्तक में उम्मेदसिंहजी के उत्तराधिकारियों का चरित्र लिखना नहीं है । मैं उनके चरित्रों में से उतना ही अंश यहां लिखना चाहता हूं जिसका संबंध कुछ न कुछ श्रीजी साहवसे है । अस्तु इन पंक्तियों से पाठकों को विदित होगया होगा कि उम्मेदसिंहजी को दिनरात झंझटों में फंसे रहने से संसार सुख का समय न मिलने पर भी उन्हें विषय सुख लूटने की इच्छा न होने पर भी उनके जितने पुत्र, जितने राज कुमार, जितनी राजकुमारियां हुई उतने आज कल के राजाओं की स्थिति देखते हुए विशेष है । अवश्य ही इस कुल में कभी, ईश्वर की कृपासे औरस पुत्रोंका अभाव नहीं हुआ है और अब भी न होगा परंतु यह इसीका फल था कि श्रीजी साहब जितेन्द्रिय थे कर्तव्य दक्ष थे और विषयी न थे । **विषयी के संतति का अभाव** रहता है । यदि उम्मेद

सिंहजी जितेन्द्रिय न होते, वह विषयी होते तो उनके इतनी संतान न होतीं- वह कदापि बूँदी का उद्धार न कर सकते और न इतना नाम पासकते ।

अनेक झंझटों में, युद्धों में, राज्यस्थापन में, राज्यकी नये सिरे से शृंखला बांधने में, देश भरका, भारत वर्षका दौरा करने में लगे रहकर बूँदी राज्यको चिरस्थायी करने के साथ ही उम्मेदसिंहजी कितने ही **महल मंदिर** बनवाने में भी अपना **नाम अमर** कर गये हैं । बूँदी का महल, बूँदीका किला जो आज दिन दर्शकों के सामने विशालाकार होकर खडा हुआ अपने **आतंक** से लोगोंपर प्रभाव डाल रहा है, अपनी सुंदरतासे दर्शकों के मन को **मोहित कर रहा है** वह अनेक नरेशों की रचना है किन्तु इतिहास इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि इस विषय में जितना बडा काम रावराजा **शत्रुशल्य** जी के समय में हुआ है जितना अधिक काम महारावराजा **उम्मेदसिंहजी** के अधिकार में हुआ है उतना कभी, किसी नरेश के समय में नहीं हुआ । और इसमें विशेषता यह कि अपने जीवन भर दोनों ही अधिक झंझटों में फंसे रहे, दोनों ने ही दुनियां के **बडे २ चढाव उतार देखे** । रावराजा शत्रु शल्यजी का बनाया बूँदी के गढ में छत्र महल है जो इस गढ का शिर कहलाने की योग्यता रखता है और उम्मेदसिंहजी के बनवाये हुए मकान ये हैं जिनके नाम नीचे लिखे जाते हैं ।

श्रीजी साहब ने बूँदी के गढमें दो मंदिर बनवाकर उनमें **श्रीरंगनाथजी** की और श्री **आनंदघन** जी की स्थापना की । इन्होंने **चित्रशाला** बनवाकर उस समय की चित्र विद्या का उसे ठीक आदर्श बना दिया। महल के भीतर ही पहाड की तरहटी में, धरती से कई सौ फुट ऊंचा **रंगवि-लास** नामक बाग बनवाकर उसमें शिवस्थापना की इसीके उत्तर में शीश महल, किले में टांका, गणेशघाटी, राजमहल से दक्षिण नींमका रावला, कुएका रावला, बनवाया । गुलाब बावडी के पास **तीरथिया** घोडे की प्रतिमा स्थापित की । तीसरे आश्रम में केदारेश्वर महादेव के निकट वास करने के लिये **देव विलास** नामक बाग और **शिकार बुर्ज** के नामसे महल बनवाये । वही गुलाब बाडी बनवाकर **शिकार बुर्ज** के पास कुंडोंकी रम्य

शोभा को बढाने के लिये श्री **हनुमानजी** की स्थापना की ।इन की खवास रूपरस रायजी ने केदारेश्वर के निकट **रूपविलास** बाग बनवाया । वेगूं में पिता **बुधसिंहजी का चौंरा** बनवाया। **बूँदी के चारों ओर** शिकार खेलने के लिये शिकार बुर्ज बनवाये। **भीमलत में** शिकार खेलने का स्थान बनवाया । इन्होंने किले में **कलाधारीजी** का मंदिर बनवाया और मोती महल के पास कुलदेवी श्री **आशा पुराजी** का मंदिर बनवाया । यदि इन सब मकानों की कीमत का अनुमान किया जाय तो बडा आश्चर्य होता है ।

जिस समय उम्मेदसिंहजी लाखों रुपया लडाई के कामों में खर्च करते थे, जब लाखों ही रुपया उनका बूँदी के उद्धार में खर्च हुआ उन्होंने लाखों ही इस काम में लगा दिया । उन्होंने—जबतक राज्य नहीं पाया **लाखों रूपये का जेवर बेचकर काम निकाला** । बस इसीलिये कहना पडता है कि जो लोग जेवरों से धन की हानि समझते हैं और जो लोग जेवरों की निन्दा करते हैं वे देखें कि जेवर विपत्ति के समय कैसा बढकर काम दे जाते हैं । राजा लोग केवल शोभा ही के लिये आभूषण नहीं पहनते हैं बरन जेवर उनके लिये **विपत्ति के साथी** हैं ।

अब इस खंड में कोई बात लिखने योग्य न रही । उम्मेदसिंहजी के चरित्र का जो शेष अंश है वह आगे के भाग में लिखा जायगा । वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने के अनंतर उन्होंने जो २ काम किये उनका वर्णन उस भाग में होगा । एक क्षत्रिय कुमार जिस तरह ब्रह्मचर्य का पालन करता है वैसा उन्होंने वेगूं में रहने के दिनों में किया । उनका गृहस्थाश्रम लडाई झगडों में, बूंदी लेने में और यहां राज्य स्थापन करने में बीता । ये बातें पाठकों को इस भाग से अच्छी तरह विदित होगई और उनके तीसरे आश्रम का हाल चौथे खंडसे माल्रम हो जायगा ।

चतुर्थ खंड।

श्रीजी साहब का तीसरा आश्रम।

अध्याय १.

—⟡—

पूर्व देशों की यात्रा।

बीलहटे का झगडा।

प्यारे पाटवी पुत्रको पाटदेने पश्चात् प्रतापी प्रजेश ने प्रिय पत्नी के परामर्श से पृथ्वी पर्यटन के पूर्व प्रण का पालन करने को पत्नी पास रखकर पुष्कर के लिये प्रयाण किया। पुष्कर में पढे पण्डितों के पवित्र पांडित्य से प्रेम करके पिता, पितामहादि को पिण्ड दिये पवित्र पुष्कर को प्रणाम करके परमात्मा को प्रसन्न किया। पाप मोचन करके प्राणियों को परम गति देने वाले पुष्कर के दानपात्र द्विजों को दान दक्षिणा देने में दातारी दिखाकर देवदर्शन से, दीन दुःखियाओं पर दया करने से देश २ में अपनी दान शूरता का दिग्दर्शन करा दिया।

इस राज दम्पती के पुष्कर में पधार कर श्राद्ध करने और ब्राह्मणों को हजारों रुपया दान करने की जब कृष्णगढ नरेश को खबर हुई तब महाराज बहादुरसिंह जी इन्हें अपनी राजधानी में लेजाकर कृतकृत्य होने के लिये दौडे आये। उन्होंने इन जैसे राजर्षि को अपनी राजधानी में पधराकर अपने को धन्य माना। इनका आतिथ्य सत्कार किया और जितना बूँदी नरेश का करना चाहिये उससे कहीं बढकर किया क्योंकि अब यह केवल राजाहीन थे बरन राज्य त्यागकर राजर्षि की पदवी के योग्य हुए थे वहीं इनसे उदयपुर के महाराना अडसी (अरिसिंह) जी मिले। वहां से चलकर नासरदे में जयपुर के प्रधान सेनाध्यक्ष रामसिंह जी का आतिथ्य ग्रहण करने के अनंतर श्रीजी साहब ने बूंदी पधार कर अपने आश्रम में निवास किया। वैशाख मास में आपने

राज्य त्यागा था और उसी वर्षके श्रावण मास में यह यात्रा की । घटना संवत् १८२७ की है । इस यात्रा में कोई बात उल्लेख योग्य न हुई और न इस वर्ष में ही कोई घटना लिखने योग्य हुई परंतु इनके राज्य छोड़ देने से अजित सिंहजी के पराक्रम का पूरा परिचय न पाकर **खैराड के मीनों** ने फिर शिर उठाया था इस लिये अजितसिंहजी ने सेना भेजकर इन्हें फिर दमन किया । केवल अठारह वर्ष की उमर में अपनी **रजपूती के गहरे हाथ** दिखाकर मीनों के बारह गांव लुटवा लिये, उनसे दंड में भरपूर रुपया लिया और उनके **शस्त्र छीनकर** उनसे लिखवा लिया कि "अब से हम लोग, चोरी न करैंगे, लूट खसोट न करैंगे, डाके न डालैंगे और गोवध न करैंगे ।" इतना लिखवाकर उन्हें **खेतीके कामों में लगाया ।** इसी वर्ष में अजितसिंह जी के महाराज कुमार प्रतापसिंहजी का जन्म होने से श्रीजी साहब ने **पौत्र का मुख** देखकर ईश्वर को धन्यवाद दिया ।

अवश्य ही महाराव राजा अजितसिंहजी ने इस वार मीनाओं को खूब दंड देकर फिर कभी शिर उठाने के योग्य नहीं रक्खा था परंतु वे फिर कभी शिर न उठाने पावैं और फिर उनके लिये खून खराबी न करनी पडै इसलिये जहां पर इन लोगों का जमघट्ट था उस जगह के निकट एक **किला बनाने की आवश्यकता पडी ।** किला बनाना अवश्य ही चाहिये परन्तु जो स्थान इस काम के लिये उपयोगी समझा गया वह **मेवाड राज्य** में था । इन्हों ने मुठमर्दी करके मेवाड राज्य के **बीलहटा गावमें किला बनवा लिया।** इस अवसर में जब यह वांसवाडे विवाह करने गये थे तब मैदान खाली पाकर जहाजपुर के रानावत राजपूतों ने **बीलहटे पर चढाई** की । चाहे इन दिनों श्रीजी साहव राज्य छोड चुके थे, और तीसरे आश्रम पालन करने के लिये उन्हें शस्त्र पकडने की आवश्यकता न थी परंतु वानप्रस्थ आश्रम से भी बढकर उन्हें **बूंदी की रक्षा** प्यारी थी । जीते जी कभी बूंदीका एक बाल भी बांका होना उन्हें सह्य नहीं था । राज्य छोडने पर भी, गृहस्थाश्रम छोडने पर भी यद्यपि रजपूती बाना उन्होंने नहीं छोडा था, यद्यपि उनके शस्त्र अब गो ब्राह्मण की, दीन दुखियाकी रक्षाके सिवाय और

काम में आने के लिये नहीं थे परंतु बूँदी की रक्षा उनके लिये गो ब्राह्मण की रक्षा से बढ़कर थी क्योंकि यह उनका अटल व्रत था। बस इसी लिये उन्होंने फिर अपना बाना याद किया। उन्होंने सेना सजाकर, कमर कसकर कमर से खोली हुई तलवार फिर बांधकर बीलहटे की रक्षा के लिये तैयारी की। इन्होंने सेना चढ़ाकर रानावतोंको कतल किया। इसतरह उनका विनाश कर के यह फिर अपने आश्रम में आ विराजे। जब रानावतों से विजय होगया तब पासवाडे से अपना विवाह कर के अजितसिंहजी अपनी नई दुलहिन सहित संवत् १८२८ के जेष्ठमासमें बूँदी आपहुंचे। "वंश प्रकाश" में पंडित गंगासहायजी लिखते हैं कि "अजित सिंहजीने बीलहटे में किला बनने की आवश्यकता समझकर रानाजीको लिखा कि आप इस जगह किला बनवाओ। जबतक यहाँ अच्छा किला न बनैगा मीनोंका सदा के लिये दमन न होगा। इस कारण यातो आप किला बनवाइये अथवा हम बनावेंगे" इसका उत्तर रानाजीने जब कुछ न दिया तब इन्होंने किला बनाकर वहां अपनी ओर से किलेदार रख दिया। इससे स्पष्ट है कि किला बनवाने में इनका कुछ विशेष दोष न था परंतु इसपर जो घटना हुई वह पाठकों को समय पडनेपर कुछ आगे चलकर विदित होगी।

महारावराजा अजित सिंहजीके जिन महाराज कुमार का जन्म हुआ था उनका इसी वर्षमें देहान्त होगया। पौत्र की मृत्युसे श्रीजी साहब को चाहे जितना दुःख हुआ हो परंतु इसलिये नहीं किन्तु पृथ्वी पर्यटन के पूर्व प्रण को याद करके इन्होंने अपनी पत्नी समेत संवत् १८२८ की आश्विन शुक्ला १० विजय दशमी को पूर्वके देशोंकी यात्राके लिये बूँदी से प्रयाण किया। आप यहां से चलकर केशवरायजी की पाटन में सुवर्ण और भूमिका दान करने के अनंतर इन्द्रगढ होते हुए ब्रज की ओर पधारे। वहां श्री गिरिराज के दर्शन से, मथुरा की यात्रा से, वृंदावन के दर्शन से और ब्रज की परिक्रमा से अपने को कृतार्थ कर खूब दान पुण्य करते हुए राज दम्पती कडा मानिकपुर होकर प्रयाग पहुंचे। प्रयाग में इन्होंने मुंडन कराया, उपोषण किया, दान किया, श्राद्ध किया और इस

तरह मन भरकर तीर्थ सेवन किया। जिस समय ये प्रयाग में थे **काशी नरेश चेतसिंह जी** के पास इनके आगमन की खबर पहुंची। वह स्वयं आकर इन्हें **काशी लेगये**। ये वहां राजमंदिर में कुछ काल बिताने बाद आगे बढे।

इस विषय में आगे बढने पूर्व **बीलहटे की खबर** लिखना आवश्यक है। यद्यपि राज्य छोड देने के बाद इस बात से श्रीजीसाहब का कोई विशेष संबंध न रहा परंतु उनके संबंध का थोडा उल्लेख इस विषय में ऊपर हुआ है आगे जब २ काम पडैगा फिर लिखा जायगा इस कारण विषयान्तर होने पर भी **बूँदी उदयपुरके मन मुटाव** होने की घटना का इस चरित्र में विस्तार से वर्णन करना पडैगा। बीलहटे में किला बनालेने बाद, रानावतों को मार भगाने बाद **रानाजी को चेत हुआ**। उन्होंने उस समय अजितसिंहजी के पत्र का उत्तर न दिया था परंतु अब लिखा किः—

"आपने बीलहटा बलपूर्वक **छीन लिया** सो उचित नहीं किया। अब यातो उसे **लौटा दीजिये** अथवा अपने छोटे भाई को हमारे यहां भेज दीजिये। हम उन्हें एक **लाख रुपये की जागीर** देंगे और साथ ही बीलहटा भी देदेंगे।"

इस पत्र को पाकर अजितसिंहजी ने अपनी ओर से बात बढाना उचित न समझा इसलिये अपने भाई बहादुरसिंह जी को **उदयपुर भेज दिया**। महाराना अडसी जीने अपने चाचा अर्जुनसिंहजी को इनकी पेशवाई के लिये भेजा। इन्हें एक लाख रुपये का **पट्टा दिया** परंतु अपने प्रणके अनुसार बीलहटा न दिया।

उधर काशी से प्रयाण करके श्रीजीसाहब ने **गया श्राद्ध** किया, भगवान भूतभावन वैद्यनाथ महादेव के दर्शन करके आप बर्द्दवान गये। वहां के राजा ने इनका खूब आतिथ्य सत्कार किया। वहां से चलकर जब ये बालेश्वर बंदर पहुँचे तब मरहठा राज्य के सिपाहियों ने कर मांगकर इनसे **लडाई ठान दी**। उन्हें मार कूट कर ये वैतरणी नाभि गया, कटक होते हुए **जगदीश पुरीमें पहुंचे**। इन्होंने भगवान के दर्शन किये। मार्कण्डेयजी के आश्रम में इन्द्रद्युम्न श्राद्ध किया। समुद्र में

स्नान किया। वहां से श्वेत गंगा में स्नान कर अठारह नाले होते हुए रामगढ आये। वहां के राजा ने भी इनका बडा सत्कार किया। वह स्वयं इनसे मिलने को आये। वहांसे चलकर काशी में भगवती भागीरथी के स्नान तथा विश्वनाथ के दर्शन करने के अनन्तर मिर्जापुर के पास विंध्य वासिनी देवी के दर्शन कर ये प्रयाग राज होते हुए **चित्रकूट** चले गये। वहां से यह ओरछा गये झांसी गये और नरवर गये। नरवर नरेश रामसिंहजी कछवाहा ने इनकी खूब मेहमानदारी की और **एक तोप** इनके भेट की वहां से चलकर केशवराय जी की पाटन में दर्शन कर संवत् १८२९ की कार्तिक शुक्ला ११ को एक वर्ष और एक मास तक यात्रा करके राज दम्पती बूँदी आगये।

बूँदी में कुछ दिन रहकर श्रीजी साहब **बेगूं** अपनी मातामही के पास आये। वहां इन्हों ने उनको गंगाजल से स्नान कराया और पुष्कर अजमेर कृष्णगढ होते हुए बूँदी पधार आये। इस अवसर में भगवान की कृपासे इन्होंने फिर **पौत्रका मुख** देखा। संवत् १८२९ की पौष कृष्णा ११ को बांसवाडा वाली रानीजी से महारावराजा अजितसिंहजी के दूसरे पुत्र **विष्णुसिंह** जी का जन्म हुआ। इनका इस चारित्र से बहुत संबंध है सो पाठकों को समय समय पर मालूम होजायगा चिरंजीवी पौत्र का जन्म होनेपर एक बडी भारी यात्रासे लौटने के हर्षमें इन्होंने भगवती पतितपावनी भागीरथी के निमित्त वह उत्सव किया जिसे राजपूताना वाले "**गंगोज**" कहते हैं। इस उत्सव पर श्रीजी साहब ने **समस्त हाडाओं** को, अस्थिपालजी के समस्त वंशवालों को, कोटा नरेश को आदिलेकर सब हाडाओं को बुलाया और उनका सत्कार करके **पहरावनी दी**।

इसी वर्ष अर्थात् संवत् १८२९ के फाल्गुन में जब **महाराना अडसी** जी अपने राज्य का दौरा करते हुए बूँदी की सीमा के निकट आपहुँचे तब इन्होंने अपने हाथ से पत्र लिखकर **श्रीजी साहब के नाम** भेजा। उसका आशय यह था कि—

"आप राजर्षि हैं। अब आपको किसी बातकी इच्छा नहीं है क्योंकि आपने जो कुछ चाहा कर लिया। हम आपके सेवक हैं, आप जैसे राज-

र्षि के दर्शन करने की हमारी इच्छा है । हमें आशा है कि यहां पधार कर आप दर्शन देंगे ।"

इस पत्र को पाकर श्रीजी साहब को बडा हर्ष हुआ । वह स्वयं शंकर गढ के मुकाम पर **रानाजी से मिले** । राना अरिसिंहजी उनकी पेशवाई के लिये आये और उन्हें अपने डेरे पर लिवाले गये । वहां उन्होंने इनसे अपने सिंहासन पर बैठने का बहुत आग्रह किया परंतु इन्होंनें बडे विनीत होकर यही उत्तर दिया:-

"आपने जो कृपापूर्वक **मेरा सम्मान** किया है उसे मैं माथे चढाताहूं परंतु मैं त्यागी हूँ । मैं **राज्य छोडचुका** हूं इसलिये राजसिंहासन पर बैठ नहीं सकताहूँ ।"

यह कहकर आप उदयपुर नरेश की राजगद्दीके सामने अलग आसन पर विराजे । दोनों में आमोद प्रमोदकी और राजनीति की बहुत बातें हुईं । श्रीजी साहब ने अपने **विशाल अनुभव** का उन्हें उपदेश दिया । बातों ही बातों में महाराना साहब ने श्रीजी साहब से कहा:-

"आप बीलहटा छोड दीजिये ।"

यह बोले-मैं जब राज्य छोड चुका हूँ तब इस विषय में आपको कुछ उत्तर नहीं देसकताहूँ । आप **बूँदी नरेश को लिखिये** परंतु मेरी राय यह है कि आप उसके बदले दूसरा गांव ले लीजिये । उसे अपने अधिकार में रक्खे विना बूँदी वाले मीनों का दमन नहीं कर सकते हैं । अथवा उसका मूल्य जो चाहैं ले लीजिये ।"

यह कहकर इधर उधर की बातें करने बाद मिल भेंटकर दोनों ओर का प्रेम वढाते हुए श्रीजी साहब बूँदी लौट आये । यहां आकर उन्होंने अपने पुत्र को समझाया कि:—

"रानाजी से जाकर मिलो और बीलहटे के विषय में उनसे **झगडा निबटालो** ।"

इस परामर्शसे और इस आज्ञा से जब अजितसिंहजी जानेका विचार कर रहेथे तब ही उदयपुर नरेश का भेजा हुआ वहांका **मंत्री अमरचंद यहां आया** । वह जातिका ब्राह्मण था । वह बूँदी नरेश को उदयपुर नरेश के

पास पधरा लेजाने के लिये आया था। यह एक बार राजकुमार प्रताप सिंहजी के साथ महाराना जगत् सिंहजी की आज्ञा से कैद रह चुका था। यह स्वभाव का बडा चिडचिडा था, **बडा घमंडी** था। इसने बूँदी नरेश की सेवा में उपस्थित होकर उनसे शंकरगढ पधारने की प्रार्थना करने के बदले राजनीति और राजाओं के दर्जे को भूलकर इनसे कहलाया कि:—

"घमंड छोडकर सथूर तक मेरी पेशवाई के लिये आओ।"

उसकी ढिठाई सुनकर युवा महाराज के कोपानल में घी की आहुति पडी और बारूद में मानों **आगकी चिनगारी** जा पडी। उन्होंने सुनते ही युवा मृगराज की तरह गर्जकर आज्ञादी। कहलाया कि:—

"क्योंरे कायर, **सिंहों की समता** कर के गीदड की तरह अपनी फजीहती कराना चाहता है।"

यह आज्ञा सुनकर उसे भी क्रोध आगया। उसने कहा:—

"अच्छा देख लेंगे।"

यह सोचकर बूँदी के कामदार की ओर से पेशवाई बिना ही यह पालकी पर चढ कर आया। उसकी अगवानी के लिये कामदार तो क्या कोई भी न भेजा गया। वह तलवार बन्दूक से, जिरह बखतर से, सज धज कर बहादुर सिपाहियों को लिये हुए आया और दरबार में आकर ऐसी जगह जा बैठा जो उस के **दर्जे से कहीं बढ कर थी**। ऐसे घमण्डी आदमी के लिये खडे होकर सम्मान करने की अजितसिंहजी की इच्छा न थी परन्तु उस का निरादर उदयपुर नरेश का निरादर था इसलिये उन्होंने खडे होकर उसे ताजीम दी। ताजीम अवश्य दी परन्तु उन का संकेत पाकर डयोढी के दारोगा ने अमरचन्दसे पहले कहा कि:—

"अपनी नियत जगह पर जाकर बैठो।"

जब उसने न माना तब दारोगा ने उस का **हाथ पकड कर** वहां से उठा उस की नियत जगह पर जा बिठाया। इस के बाद **अमरचन्द ने ढिठाई में** आकर अजितसिंहजी से कहा:—

"बीलहटा लौटा कर महाराना साहब की सेवा करो नहीं तो बहादुर सिंधी मुसलमान तुम्हारे केश पकड कर तुम्हारा राजापन भुला देगा ।"

सचमुच ही ऐसे कटु वचन एक बहादुर हाडाके हृदय को बेध कर पार निकल गये । अवश्य ही उस समय उसके शिर पर उसकी मृत्यु नाचने लगी क्योंकि कोई भी वीर पुरुष शत्रु का शस्त्र सह सकता है परन्तु उस का वचन नहीं सह सकता इसलिये उसके धड से शिर अलग होने में कुछ देरी नहीं थी परन्तु युवा होने पर भी अजितसिंहजी नीति निपुण थे । वह जानते थे कि इस की ढिठाई का बदला देने में मेवाड से मित्रता बिगड जायगी । मेंडक को मार डालने में सिंह की शोभा नहीं है इस लिये जहर का सा घूंट पीकर महाराव राजा अजितसिंहजी रहगये परन्तु इस सहनशीलता का परिणाम बहुत कडुवा हुआ । जैसा हुआ वैसा आगे चलकर मालूम हो जायगा । प्रयोजन यह कि ऐसा कहकर वह वहां से चला गया ।

अध्याय २.

रानाजी का बध ।

गत अध्यायमें जिस घटना का वर्णन है उससे अजितसिंहजी को जोश तो बहुत आया था परन्तु बूँदी के सरदारों ने और यहां के कर्मचारियों ने प्रार्थना की कि:—

" इसमें अमरचन्द के चिडचिडापन का दोष है । यह इसी के घमंड का कारण है । यदि महाराना अडसीजी इस की खबर पावेंगे तो उसे अवश्य धमकावेंगे । वह बडे सज्जन हैं । उन से अवश्य मिलना चाहिये ।"

इस परामर्श से चित्तको संतोष देकर महाराव राजा अजितसिंहजी-रानाजी से मिलने के लिये पधारे । इनका आगमन सुनकर अडसीजी अगवानी के लिये आये । दोनों नरेशों का और दोनों ओर के उमरावों का, दोनों ओर से आनंद के साथ समागम हुआ । यह मिले अवश्य परंतु मिलने

के समय राजाओं के परस्पर न्योछावर करने की जो चाल है उस का अजितसिंहजी ने अमर चंदकी चाल से दुःखित होकर बर्त्ताव न किया। यह बात संवत् १८२९ की फाल्गुन शुक्ला ९ की है। दूसरे दिन महाराना साहब बूँदी नरेश से मिलने आये। इन्होंने राजरीति से उनका सत्कार किया। तीसरी भेंट में महाराना साहब, बूँदी नरेश और दीवान अमर चन्द का एकान्त में वार्तालाप हुआ। रानाजी ने पांच सो रुपया रोकडी और मिठाई भेजी। रानाजी की रानीजी ने अर्थात अजितसिंहजी की साली ने इनके लिये मिठाई के साथ पांच सो रुपये भेजे। इस एकान्त परामर्श में बूँदीनरेश के साथ सीलोर के जागीरदार माधानी भगवन्तसिंहजी, इन्द्रगढ के जागीरदार भक्तरामजी और व्यास गोपाल रामजी थे। इस गुप्त सभा में क्या हुआ सो आगे देखा जायगा किन्तु रानाजी ने राजरीति के अनुसार बूँदी नरेश को हाथी, घोडा, सिरोपाव और आभूषण देकर सत्कार किया और दूसरे दिन अजितसिंहजी बूँदी नरेश ने रानाजी को बुलाकर इसी तरह राजरीति से उनका सत्कार किया। यहां तक दोनों में खूब प्रेम वर्द्धन हुआ, खूब राजव्यवहार हुआ। यहां तक कोई मन मुटावकी बात न हुई।

इसके बाद महाराना साहब ने महारावराजा साहब के पास अपना दूत भेजकर कहलाया किः—

"बेगूं के स्वामी चूडावत मेघसिंहजी, शंकर गढ के स्वामी, अमर गढ के मालिक कान्हावत कोजू रामजी और जलंधरी के स्वामी, ये चारोंही आपके पक्ष से निर्भय होकर हमें नहीं मानते हैं इसलिये इन्हें पकडकर हमारे पास भेज दीजिये। हमारे आधीन कर दीजिये।"

इसके उतर में अजितसिंहजी ने कह लायाः—

"बेगूं के स्वामी सवाई मेघसिंहजी का आप अपराध क्षमा कर दीजिये चूडावतों ने हमारे ऊपर बहुत उपकार किये हैं उनसे मेल कर लीजिये। हम बीचमें पडकर उन्हें बलपूर्वक आप के पास ले आवेंगे। शंकर गढ और अमर गढवाले हमारी शरण आचुके हैं इस कारण हम उन दोनों की हानि नहीं

कर सकते हैं । आप की यदि इच्छा हो तो उन्हें युद्ध में **जीत लीजिये** । अब रहे जलंधरीवाले सो उनसे हमारा कुछ लगाव नहीं । आप उन्हें पकडने के लिये सेना भेज दीजिये । उसके साथ हमारा कोतवाल केशवराम जाकर उन्हें हमारे यहां से निकाल देगा । "

इस बातको सुनकर रानाजी ने जलंधरी पर सेना भेजी और बूँदी के कोतवाल ने साथ जाकर वहां के जागीरदार को निकाल दिया । गढ में रानाजी का अधिकार हो गया । इस के अनंतर रानाजी बिना पूंछे ही शंकर गढ के इलाके में चले गये और उन्हों ने मार्ग में खैरूणा **गांव जलाकर अमर गढ** के इलाके में जा प्रवेश किया । इसपर अजितसिंहजी अमर गढ नहीं जाना चाहते थे । उन्होंने स्पष्ट कहा था कि:—

" जब रानाजी हमें बिना सूचना दिये ही चले गये तब हम क्या **उनके नौकर हैं** जो उन से मिलने के लिये वहां तक जायं । "

परंतु बूँदी के उमरावों और कर्मचारियों ने जब बहुत आग्रह किया तब इच्छा न रहने पर भी उन लोगों की बात माननी पडी । वहां जाकर इन्होंने रानाजी से कहलाया कि "मैं आज ही बूँदी जाता हूँ । " इस पर रानाजी ने उत्तर दिया कि—"हमने दूत भेजकर आज जो काम कह लाया है उसे करके जाइये ।" और अमरचन्द्र द्वारा यह कहला भेजा कि:—

"बीलहटगांव हमारी **नजर करदो** तब बूँदी जाओ । "

इस पर क्रोध बहुत आनेपर भी उसे रोककर अजितसिंहजी बोले:—

" वहां तो मैंने चोरों को दबाने के लिये **किला बनवा** लिया । मैंने उसके कोट की नीम में अपने हाथ से बडे २ पत्थर डाले हैं इसलिये क्षमा कीजिये । हम आपकी प्रीति चाहते हैं इसलिये या तो उससे **दूने मूल्य का और** गांव ले लीजिये और नहीं तो उस गांव के लिये प्रतिवर्ष कुछ **रुपया ले लिया कीजिये** । "

रान[illegible] इस उचित बात को—दोनों राज्यों में प्रेम बढाने वाली संधिको स्वीकार न किया । यह बात इस समय ऐसी की ऐसी ही रह गई किन्तु संवत

१८२९ की चैत्र कृष्ण १ के दिन गडा हुआ **विष उबल पडा**। उस दिन दिन के ग्यारह बजे के लगभग दोनों राजा मिलकर खरगोश का शिकार खेलने गये। दोनो ने एक २ शशक मारा। जिस समय शिकार से लौटकर दोनों अपने २ डेरों पर आने लगे अजितसिंहजीने रानाजी से फिर कहा कि:—

"मैं कलही यहां से बूँदी चला जाऊँगा इसलिये जो कुछ आपको कहना हो स्पष्ट कहकर जाइये।"

यदि रानाजी के मन में मैल न होता तो इस समय उन्हें समक्ष में बीलहटे के मामले का **निबटारा** करलेना चाहिये था। कर्मचारियों का डाला हुआ मैल समक्ष की बात चीत से सहज में धुलजाता है। इस कारण यदि रानाजी अजितसिंहजी के कथन पर खूब विचार करके इस समय ठहराव कर लेते तो बखेडा न बढता, बढाहुआ झगडा निपट जाता परंतु उन्होंने इनकी बात का **कुछ उत्तर न दिया**। यदि वह उत्तर में "हाँ" के बदले "ना" कह देते तो उन्हें अधिकार था परंतु उत्तर न देकर अपमान किया। वीर क्षत्रिय बहादुर हाडा फूल की तरह **तलवार के घाव** सह सकता है परंतु **तिल मात्र भी अपमान** नहीं सह सकता है किन्तु क्रोध के मारे इनके हृदय में प्रचंड अग्नि की **भयंकर ज्वाला** उठने लगी। ज्वाला उठने पर भी इन्होंने अपने **मन को रोका** परंतु रानाजी ने— "यदि हमारे कहने से नहीं देते हो तो शस्त्रधारी सिंधी मुसलमानों के **जोर से देना**—"यह कहकर उसे उभारा और इतने ही में रानाजी के **एक नौकरने कटु वचन** कह कर उस अग्नि को खूब भडका दिया। उसने कहा:—

अगले दिन तुम कैसे जा सकोगे। क्या उदयपुरके नरेश को तुम दुर्बल समझ ते हो? क्या कभी इनके नौकर सिंधी मुसलमानों को नहीं देखा है? जब उन जैसे डरावने यवनों से तू घिर जायगा तब हे कायर हाडा तू"

इसके आगे उसने जो कुछ कहा सो लिखने योग्य नहीं है। उसके ऐसे वचन बाणों के हृदय में लगते ही अजितसिंहजी क्रोध से कांपने लगे, उनके

होठ थरथराने लगे और भुजायें फडकने लगीं । ऐसे समय में रानाजी को चाहिये था कि उस पाजी को—एकनरेश से कटुवचन कहने वाले को डाटते, फटकारते और दंड देते परंतु जब उनकी इस काम में **सम्मति होगी,** जब वह एक तुच्छ नौकर के द्वारा ऐसी बुरी बात कहलाना चाहते होंगे तब ही उन्होंने उससे कुछ न कहा । बस अजितसिंहजी ने समझलिया कि इनकी भी इसमें सम्मति है । केवल इतना ही नहीं वरन रानाजी अजित सिंहजी से **मुजरे का शिष्टाचार** किये बिना, इनके मुजरे पर—शिर पर हाथ लगाने पर ध्यान दिये बिना चलदिये । ऐसे समय में कौन ऐसावीर पुरुष है, कौन ऐसा बहादुर राजपूत है जो अपना अपमान करनेवाले को जीता छोडदे, उसे मारकर अपना कलेजा ठंढा करने के बदले उसे बिना पुरस्कार ही जाने दे? अंगरेजों के प्रौढ प्रताप से चाहे अब समय नहीं रहा और सर्वत्र शान्ति विराजमान है परंतु तब शत्रुको मारकर बदला लेनेका काल था । बस इसी लिये अजितसिंहजी अपने घोडे को ऐड देकर जाते हुए रानाजीके आगे बढे और बढकर उनके **एक ही भाला ऐसा मारा** कि उनका मुर्दा प्राण रहित हो कर धरती में लोट गया । इसके अनंतर रानाजी का शिर काटने के लिये इन्होंने तलवार चलाई परंतु उनके एक चोपदार ने दोनों हाथों के जोर से इनके हाथ पर छडी मारदी । इससे तलवार तिरछी होकर उनका माथा बचगया । अवश्य ही इससे उनके हाथ पर चोट आई और इनकी तलवार छूटगई परंतु इनके सामंतों के हाथ से उदय पुर के तीन सरदार मारे जाने बाद इन्होंने रानाजी के शरीर में से अपना बरछा निकाल लिया । इसके बाद वहां क्या हुआ सो लिखनेकी आवश्यकता नहीं है परंतु इतना सुना गया है कि रानाजी के साथ जो रानियां सती हुई उन्होंने अजितसिंहजी को **शाप दिया** । कुछ भी हो परंतु इस तरह बूँदी नरेशों के हाथसे अबतक **चार रानाओं का बध** हुआ ।

जैसे:—"हामे मोकल मारियो खेतल लाल खुमान ।
सूजे रतन पछाडियो अजमल अडसी रान" ॥

महाराव राजा अजितसिंहजी जब वहां से बूँदी आकर पितासे मिले तब श्री-जी साहब ने इस काम की **निन्दा की**। पुत्र से अच्छा नहीं कहा और इस तरह उनके बढते हुए मन को रोका। इस प्रकार से ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह बूँदी के इतिहास का सार है परंतु टाड साहब ने इस बात को कुछ और ही तरह लिखा है।। यहां मैं उनके मतका उल्लेख कर दोनों ओर के इतिहास की तुलना करना चाहता हूं। टाडसाहब लिखते हैं कि:—

"एक भारी दुर्घटना जिसका मेवाड और हाडौती की सीमा के इतिहास से घना संबंध है यहां उल्लेख करने योग्य है। बंबावदा में सैंकडों वर्ष पूर्व सती ने जो भविष्यद्वाणी कही थी कि "राव और राना को अहेडे के अवसर पर इकट्ठा होना चाहिये। इसका परिणाम मृत्यु होगा।"—यही सत्य होगई। हम जो कुछ यहां लिख रहे हैं इस तरह की मृत्युकी चौथी घटना है।"

"**बीलहटे की झोपडियां** जिनमें कुछ आमों के सिवाय और कुछ पैदा नहीं होता था और जहां थोडे से मीने निवास करते थे—बस वे ही इस **झगडे की जड** हैं। बूँदी नरेश ने शायद इसे अपने राज्य में मिला लेने के लिये यहां एक किला इस कारण से बनवाया और उसमें सेना रक्खी ताकि **लुटेरों का दमन हो** सके। ये लोग अपने असन्तुष्ट मेवाड नरेशों की प्रेरणा से इस जगह अपने स्वामी के स्वत्व में बूँदी का अनधिकार प्रवेश मानते थे। इसी कारण रानाजी ने अपने उमरावों सहित और सिंधी सैनिकों को लेकर इस झगडे की जगह को प्रयाण किया और वहांसे बूँदी नरेश अजितसिंहजी को अपने लश्कर में बुलवाया। यह आये और रानाजी उनके रंगढंग से ऐसे प्रसन्न होगये कि बीलहटे के झगडे को बिलकुल भूल गये। इस अवसर में वसन्तऋतु आ पहुंची। फाल्गुन का महीना था। गौरी के आगे **सुअर का बलिदान** करके नया वर्ष आरम्भ करना आवश्यक हुआ। युवा हाडा ने रानाजी की ओर के सत्कार के बदले बूँदी राज्य में अहेडे पर उन्हें बुलाया। सीसोदिया नरेश ने इस निमंत्रण को स्वीकार करके सदा की चाल के अनुसार अपने उमरावों में हरी पगडियां

और हरे दुपट्टे बांटे । इस तरह वह नियत तिथी को बडे ठाठ के साथ घोडों की सवारी में **नानते** ***पहुंचे** ।"

"**राजत्यागी राव** इन दिनों बदरीनारायण की यात्रा से लौट आये थे । उन्होंने ज्योंही इस शिकार के मनसूबे को सुना एक खास हरकारा भेजकर अपने पुत्र से कहलाया कि "**सती के शाप से सावधान रहना** ।" इसका अजितसिंहजी ने उत्तर दिया कि—"ऐसी कायर बातों से न्योता पीछा नहीं किया जा सकता ।" सबेरा होतेही रानाजी युवाराव की मित्रता से आनंदित होकर मैदान में गये । किन्तु इससे पहले ही दिन रात्रि के समय **मेवाड के मंत्री** ने बूँदी नरेश की सेवा में उपस्थित होकर इनसे **बहुत ही अपमानसूचक** शब्दों में कहा था कि—"या तो बीलहटा दे दो नहीं तो हम सिंधी सेना भेज कर आप को **कैद कर लेंगे** । आप यहां राना साहब की **आज्ञा के नौकर** हो आप योंही घमंड करते हो ।" बस यही अपमान बूँदी नरेश के हृदय में दिन भर चक्कर लगाता रहा । और जब शिकार का काम समाप्त होगया और रानाजी से छुट्टी लेने का अवसर आया उनके मनमें एका एक इस अपमान की **बात याद आगई** और याद आते ही बदला लेने का उन्हों ने पक्का ठहराव किया । रानाजी इस बात को नहीं जानते थे इस लिये उन्होंने अपने युवा मित्र को मुसकरा कर जाने की अनुमति दी और फिर शीघ्र मिलने की आशा दिखलाई । अभी इनका विचार पक्का नहीं हुआ था—अभी इनका मनसूबा अधूरा था इसलिये इस तरह का बर्त्ताव देख कर यह झिझक गये और उनसे मुजरा करके वहां से बिदा होगये । परन्तु थोडे से कदम जाते ही मानों इन के मन में लज्जा आई हो इस तरह इन्होंने अपनी बदला लेने की शक्ति को बटोर कर रानाजी पर आक्रमण किया और उनपर **भाला मार ही दिया** । इनका निशाना ऐसा अचूक लगा कि भाला रानाजी के **शरीर को फोड**

* टाड साहब ने यह घटना न मालूम नानते की किस आधार पर बतलाई है । यह बात मेवाड राज्य की है । जैसे वह इस बात में भूले हैं वैसे भूल के आधार पर अपनी राय देने में भूले हों तो आश्चर्य क्या है !

कर **घोड़े की गर्दन** में जा रुका। रानाजी इन्हें अपना मित्र समझते थे। इस लिये इसके सिवाय कुछ न कहने पाये कि–" ऐ हाडा आपने यह क्या किया?"—फिर इन्द्रगढ के महाराजा ने अपनी तलवार से उन का काम पूरा कर डाला। हाडारावजी ने इस काम से अपनी बडाई समझ कर उनका **छत्र छीन लिया** और उसे बूँदी के महल में जा खडा किया। अपने घराने में ऐसी घातकता देख कर राज्य त्यागी उम्मेदसिंहजी घबडा गये और "**इस काम पर फिटकार है**" कह कर फिर अपने पुत्र की ओर उन्होंने आंख उठा कर भी नहीं देखा।"

"रानाजी और बूँदी नरेश आपस में साढू २ थे। दोनों का कृष्णगढ नरेश की कन्याओं से विवाह हुआ था। यद्यपि रानाजी को उनकी रानी ने इनसे सावधान रहने के लिये पहले से कह दिया था परंतु साढू के नाते से ऐसे संदेह को स्वीकार न किया। पहले दो राजाओं की मृत्यु से पुराना वैर बराबर होगया था और अब शत्रुता का कोई कारण उपस्थित न था। इस कमबख्त दुर्घटना के पहले दिन मेवाडके मंत्री की ओर की दावत में सबने साथ २ मित्रता सहित भोजन किया था। परन्तु इस घटना का लगाव इस राय से मिलता हुआ है कि इस काममें मेवाड के **उमरावों का इशारा** था क्योंकि वे अपने **अत्याचारी राना** से घृणा करते थे। और इस बदला लेने की आग सुलगाने वाले **मेवाडी मंत्री की धमकी** के सिवाय और प्रमाण भी इसके लिये कम नहीं है। जिस समय भाले की मार हुई एक साधारण चोबदार के सिवाय मेवाड के किसी उमराव ने न तो बूँदी नरेश को रोका और न उनका पीछा किया। केवल उसीने अपने मालिक को बचाने की योग्यता दिखलाई। इसके विरुद्ध मेवाड के सब ही बहादुर मानो हमले से डर गये हों। इस तरह भाग गये और अपने डेरे और महाराना की–अपने **मालिक की लाश** तक को छोड भागे।"

"अपने स्वामी के लिये अन्तिम रस्म करने का अब एक ही काम शेष रह गया। उनकी **रानी ने बहुमूल्य चिता चुनवाई** और इस

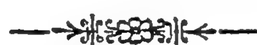
तरह अज्ञात संसार में उनके साथ जाने को तैयार हुई। लाश अपने हाथों में लेकर उसने अपने पति को घात करने वाले को **शाप दिया**। उसने कहा यदि यह घटना स्वार्थ से हुई है तो घातक भी इसका ऐसा ही उदाहरण बन जायगा और जो यह पुराना बदला लेने के सुविचार से हो तो मैं उसे शाप से मुक्त करती हूँ। जिस पेड के नीचे चिता तैयार हुई थी उस की एक डाली इस बातकी गवाही देने के लिये उसी समय गिरगई और तुरन्त ही बीलहटा का आकाश **चिता के धुएँ से** सफेद होगया।"

इस अध्याय में बूँदी के इतिहास के आधार पर जो कुछ लिखा गया है उसे पाठकों ने पढा और टाड साहब का लेख भी उन्होंने अच्छी तरह देख लिया। अब दोनों के मिलान करने का काम है। यह काम **जरा टेढा** है। पाठकों की भिन्न २ रुचि से जुदा २ ही परिणाम निकलैगा। ऐसी दशा में इस विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है तथापि चरित्र लेखक की स्थिति में मुझे अपने कर्तव्य के अनुरोध से लिखना पडता है। दोनों लेखों में छोटी मोटी बातों का जो अन्तर है उनपर विचार करने से कुछ प्रयोजन नहीं है किन्तु बूँदी के इतिहास के मत से रानाजी के सेवकों ने परोक्ष में अजितसिंहजी का अपमान किया, उनके समक्ष इनसे ऐसी २ कठोर बातें कहीं तिन्हे पढ कर अब भी **रोंगटे खडे होते** हैं परन्तु रानाजी ने इस धृष्टता पर अपने नौकरों को **कुछ दंड न दिया** उन्हें कहने से रोका नहीं और न उस समय अजितसिंहजी का **संतोष किया**। सन्तोष क्या इन का मुजरा न झेलकर, इनकी प्रार्थना न सुनकर, इनकी ओर देखे विना ही वह चल दिये। ऐसी दशा में यदि अजितसिंहजी ने समझ लिया हो कि ये लोग रानाजी की इच्छा से ऐसी ढिठाई करते हैं अथवा रानाजी आप मीठे बनकर इनके द्वारा हमारा **अपमान करवाते** हैं तो इसमें अजितसिंह जी का दोष नहीं है। मैं जहां तक जानता हूँ ऐसा समझने में भूल नहीं की। टाड साहब भी अपनी किताब में इस बात को मानते हैं कि अजितसिंहजी से रानाजीके **मन्त्री ने कटु वाक्य** कहे परन्तु उनके मत से उसने रानाजी को मर वाने के लिये

न्हें **भड़काया था,** मेवाडी उमरावों का इस में इशारा था क्योंकि उन का लगाव न होता तो वे अपने मालिक की लाश छोडकर भाग न जाते परन्तु बूँदी के इतिहास से यह बात ठीक नहीं मालूम होती। कवि-राजा सूर्यमल्लजी बिलकुल **बेलाग आदमी थे।** उन्हों ने "वंशभास्कर" में जब बूँदीवालों के दोषों की जगह दोष और गुणों की जगह गुण दिखलाये हैं तब ऐसी स्थिति में उन का कथन असत्य नहीं होसकता। फिर वह कथन भी मुख्य बातके लिये नहीं किन्तु एक साधारण के लिये। वह लिखते हैं कि "मेवाडी सरदार दौलतसिंहजी और शम्भूसिंहजी लड कर मारे गये और इस लिये अपने स्वामी के साथ स्वर्ग को सिधारे।" इस से स्पष्ट है कि **मेवाडी सरदारों का बूँदीवालों से मेल न** था। केवल यही नहीं वरन यदि मेल होता तो रानाजी की लाश लेने के लिये **अक्षरचन्द्र** सेना लेकर बूँदीवालों से **न लडता।** ऐसी दशा में यही बात ठीक है कि बहुत नम्रता करने पर भी रानाजी ने **बीलहटे का फ़ैसला** न किया, अपने सामने अपने हलके नौकर के मुख से अजितसिंहजी का **अपमान होने दिया** और उन्होंने स्वयं **मुजरा न किया।** ये बातें एक वीर और युवा नरेश के हृदय पर कोप उत्पन्न करने के लिये कम नहीं हैं। अब केवल दो बातों पर विचार करना है। एक यह कि टाड साहब के मत से अजितसिंहजी ने रानाजी के **क्रोध दिलाये बिना** उन्हें मार डाला और दूसरे **सती की वाणी** सत्य हुई। इससे दूसरे के विषय में कुछ अधिक कहना नहीं है क्यों कि जिस विश्वास से यहां रानाजी का वध हुआ उसी विश्वास से रावराजा सूर्यमल्लजी के हाथ से राना रतनसिंहजी मारे गये थे। हां पहले के लिये केवल एक बात कहनी है वह यही कि टाड साहब भले ही **रानाजी का क्रोध दिलाना** न मानें परन्तु जब उन के सामने अजितसिंहजी से कटु वचन कहे गये और वह चुपचाप सुनते रहे तब उन्ही का **क्रोध दिलाना** था। अस्तु यदि इन्होंने जिस समय अजितसिंहजी से कटु वचन कहे उसी समय न मार कर पीछे से मारा हो तब भी **समय की अनुकूलता** प्रतिकूलता पर इन्हें अवश्य विचार करना

चाहिये था । खैर ? जो कुछ समय पर होना था सो होगया । अब पुराने लकीर पीटना अच्छा नहीं । अब भगवान की कृपा से अंगरेजों के सुराज्य में सबही **राजाओं का परस्पर प्रेम** है, सबही में प्रेम बढता जाता और सबही का स्नेह बढता रहना चाहिये । परमेश्वर देशी नरेशों का परस्पर मेल बढा कर राज्यों की उन्नति और प्रजा का कल्याण करै और साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य के सुशासन के सहायक हों ।

अध्याय ३.



पुत्र का परलोक ।

संवत् १८३० की वैशाखी पूर्णिमा का दिन बूँदी के लिये बडाही भयानक निकला । उस दिन सूर्यनारायण संसार का अन्धकार दूर करने के लिये नहीं उगे थे । उस दिन उन्होंने अन्धेरा दूर करने के बदले बूँदी के आकाश को शोक संताप, के डरावने वादलों से ढांक दिया । उस दिन गर्मी की लूओं से प्राणियों का कलेजा ठंढा करने के लिये सुरराज इन्द्र ने अपनी मेघावली से मेह नहीं बरसाया किन्तु राजा से लेकर रंक तक की आंखों से आंसुओं की धारा नदी के प्रवाह की तरह बहने लगी । उस दिन आकाश के बादल गरजते न थे किन्तु स्त्रियों के रुदन का गगन भेदी आर्तनाद उलटा आकाश को जा रहा था । उस दिन धोले दुपहर विजलियां चमकने के बदले शवके साथ की मशालें बिजली की तरह कलेजे को दहलाये डालती थीं । हाय ! उस दिन का दृश्य बडा ही हृदय विदारक था । उस दिन की घटना का लेख इतिहास में पढकर उससे मन की कल्पना शक्ति जो आंखों के सामने दृश्य खडा करती है वह बडा भयानक है । हाय वह समय बडा ही भयंकर था जब राज भक्त प्रजा के कानों में यह खबर पहुंची कि:—

"आज लाखों का पालने वाला लाखों को बिलबिलाते हुये छोडकर चल बसा ।"

इस घटना से रनवास में रोना कूटना मच गया, राजकुटुंब में हाय २ मच गई और प्रजा "**त्राहि भगवान त्राहि।**" पुकारने–चिल्लाने लगी। उस दिन हुआ क्या? हुआ यही कि रानाजी को मारकर बूँदी लौटने के बाद ही महारावराजा **अजितसिंहजी को शीतला निकली।** जो शीतला देवी कहलाकर पूजी जाती हैं। जिसे भोले भारतवासी माता कहकर वंदन करते हैं वह सच मुच ही देवी होने पर भी अपने उदर से पैदा होने वाले बच्चोंको खाजाने के लिये **काली नागिन** है। वही कालीनागिन इनका ग्रास कर लेनेके साथ इनकी रानियों का **सुख लूट लेगई।** इनके माता पिता को शोकसागर में डालकर चलदी और उनकी प्यारी प्रजा को एक नन्हे से बच्चे का हाथ थंभाकर चली गई। प्रतिवर्ष हजारों नन्हे २ बालकों का बलिदान लेकर देवी शीतला हजारों माता पिता को पुत्रहीन, संतान हीन कर डालती है परंतु इस बार उसने लाखों का पालने वाला उठा लिया। लोग कहते हैं कि:—

" लाख मरियो परंतु लाखों का पालने वाला न मरियो। "

हाय! हाय!! बडा अनर्थ होगया। इनकी **ग्यारह रानियों को** अपना जीवनाधार,—जीवन सर्वस्व स्वामी उठजाने के समय क्या दशा हुई होगी। इस दुःख को, इस प्राणान्त कष्ट को या तो भगवान ही जानता है और या वे अनाथिनी अबलायें जानती हैं जिनका सुख पति के साथ ही सदा के लिये लुट जाता है। टाड साहब कहते हैं कि मेवाडी सती का शाप सच्चा हुआ। " सच्चा हो वा झूँठा। जो कुछ होना था होगया परंतु इनकी ग्यारह रानियों में से एक रानी और कई एक खवासों में से एक खवास—**इनकी सहगामिनी हुई।** पति का परलोक होते ही जिन रानियों का पतिप्रेम उनके साथ ले जाने की शक्ति नहीं रखता था वे रोईं, चिल्लाईं, मूर्छित हुईं और अपने हाथों से अपना कलेजा पीटकर रह गईं परंतु झलाय राजाजी की कन्या **रानी शृंगार सुन्दरीजी ने** वही शृंगार किये हुए, उन्हीं वस्त्र आभूषणों से सजधजकर हंसते २ **पति के विमान के साथ** श्मशान भूमि तक उसी तरह यात्रा की जैसे **दुलहिन दुलह के पीछे** चलती है।

वह आज शोक संताप को, लोक लज्जा को, संसार के सुख को हाथ जोडकर स्वर्गका सुख लूटने के लिये पति के साथ होगईं। दोनो ही ने पति की चिता में बैठकर पतिका मस्तक अपने गोद में लिये हुए " आनंद ध्वनि के साथ " सती माता की जय " की धर्म ध्वनि सुनकर पति लोक को प्रयाण किया। धन्य हिन्दू नारी, धन्य राज नारी, तुम **स्त्री जाति में रत्न हो** इस कराल कलिकाल में भी तुम **पूजी जाती हो।**

अवश्य मैं राज कुटुम्ब का, प्रजा का दुःख दिखाने में कई पृष्ठ रंग गया परंतु पुत्रशोक में, प्यारे युवा पुत्र को, राज्य के स्वामी पुत्रको खोकर राजत्यागी **श्रीजी साहब** की इस समय क्या दशा हुई होगी। बूँदी के इतिहास में इसका विस्तार नहीं है। टाड साहव ने भी इस विषय में कुछ नहीं लिखा है इस लिये मैं अधिक क्या लिखूं परंतु इतना अवश्य है कि जब **पुत्रशोक** में महाराजा दशरथ सरीखे राजर्षिने **प्राण त्याग** दिया था, भाई के मूर्छित होने पर नर नाथ रामचन्द्रजी नर लीला दिखाने के लिये जब **शोक विह्वल** हो गये थे, तब राज्य त्याग देने पर भी, गृहस्थाश्रम छोडकर वनवासी बनने पर भी यदि श्रीजी साहव को असीम शोक हुआ हो तो आश्चर्य क्या है परंतु उन्होंने अपने हृद्गत दुःखको इस तरह छिपालिया जिसतरह **कृपण अपने धनको** छिपालेता है। वह बडे २ लोमहर्षण संग्रामोंमें जैसे तलवारों के घाव सहकर भी एक पांव पीछे नहीं हटे थे वैसे ही उन्होंने इस **दैवी वज्र को सहलिया।** वह कर्तव्यदक्ष थे। वह इस असार संसार में अपना कर्तव्यपालन करने को पैदा हुए थे। जो अपना कर्तव्य पालने को जन्म लेते हैं उनके लिये **हर्ष शोक समान** है। भला यह तो एक शांतिका समय था किन्तु **भयानक समर में** यदि इनके सामने ही किसी शत्रुकी तलवार इनके **प्यारे पुत्र का शिर काटलेती** तो क्या यह इस शोक सागर में डूबकर **रण भूमिसे मुंह** मोडते। कदापि नहीं ! वीर क्षत्रिय, बहादुर हाडा ऐसे नहीं हैं वे प्राण जाने पर भी पीठ नहीं दिखाते हैं। कट मरने पर भी **रणभूमिमें** उनका शव उलटा नहीं गिरता है तांकि शत्रु उनकी पीठ देख सकै। बस जब रणभूमि में वीर क्षत्रियों की, वहादुर हाडाओं की ऐसी स्थिति है तब **कार्य क्षेत्र में श्री जी**

साहब कैसे विचलित होते ! वह यदि इस समय घवडाजाते और पुत्र शोकसे पागल होजाते तो उनकी प्यारी बूँदी की रक्षा कौन करता ? उन्हें बुन्दी जितनी प्यारी थी उतनी प्यारी रानियां नहीं थीं, पुत्र नहीं थे, परिवार नहीं था, शरीर नही था और यहां तक कि प्राणभी नहीं थे। यदि उन्हें प्राण प्यारे होते तो उनकी कायरता बूँदी में आज हाडाओं की विजय पताका उडाने न देती। और हाडा कायर कहलाने से पहले ही मरजाना अच्छा समझते हैं। क्षत्रिय जाति में, हाडाकुल में "कायर" की गाली है बस इस लिये उम्मेद सिंहजी जैसे रणभूमि में कभी कायर न कहलाये वैसे ही कार्य क्षेत्र में भी उन्होंने कायरता का कलंक न फटकने दिया। वह इसीलिये कालके इस भयानक वज्रको उसी तरह सहगये जैसें पवनकुमार हनुमानजी राक्षस राज रावण का घूंसा सहगये थे। उन्होंने इस शोक को मनका मनमें छिपा-कर अपनी प्रिय पत्नी को, पुत्रवधुओं को, पुत्रों को, परिवार को, परिजनों को और प्रजा को आश्वासन दिया और केवल २० वर्ष की उमर के युवक-बूँदी नरेश की अंतिम क्रिया करवाई।

"वंशभास्कर" और "वंशप्रकाश" से विदित होता है कि स्वर्गवासी अजितसिंहजी बडे वीर थे। टाडसाहब भी इस बात की साक्षी देते हैं। बूँदी के इतिहास में तो यहां तक लिखा है कि वह श्रीजी साहबके जमाये हुए राज्यको बहुत बढालेते परंतु जो बात चलीगई उस के लिये शोक करना वृथा है। जो होना था सो होगया। पुत्र की अन्त्येष्टिक्रिया होने के बाद श्रीजी साहब को प्यारी बूँदी की रक्षा की चिन्ता पडी। अवश्य ही उस समय उनकी वैसी ही दशा होगई जैसी माता मरजाने पर प्रिय पौत्र का पालन करने वाली दादी की होती है। वह राज्य छोड चुके थे और गृहस्थाश्रम छोड चुके थे परंतु अब उन्हें इस त्याग को भी छोडना पडा। जब वह राजपाट छोडकर तृतीयाश्रम में प्रवेश करचुके थे तब यद्यपि अब छत्र धारण नहीं कर सकते थे, अब उनपर चंवर मोरछल नहीं डुलाये जासकते थे और न अब वह सिंहासन पर विराज सकते थे बस इस लिये उन्होंने केवल साढे चार वर्ष की उमर के पौत्र विष्णुसिंहजी को नरेश बनाया।

अध्याय ४.

यात्रा का दिग्दर्शन ।

" टाड राजस्थान " से ।



पुत्र को राज्य देकर श्रीजी साहब कहलाने के समय से **पौत्र को राजा** बनाने के समय तक उम्मेदसिंहजी ने जो २ काम किये उनका वर्णन बूँदी के इतिहास से लेकर गत अध्यायों में लिखा गया अब देखना चाहिये कि टाड साहब ने इनकी यात्रा का किस ढंग से वर्णन किया है। यही बात इस अध्याय में लिखी जायगी। कथा का सिलसिला ठीक मिला देने के लिये इस विषय का कुछ हिस्सा जो टाड साहब की पोथी से पहले उद्धृत किया जा चुका है उसे यहां फ़िर दुहराने की आवश्यकता है, बस इसी लिये यहां उसका उल्लेख करना पडा है। पाठकगण, कृपाकर **पुनरुक्ति दोष** के लिये मुझे क्षमा करैं। टाड साहब ने लिखा है कि:—

"राज्य त्यागी उम्मेदसिंहजी श्री जी की पदवी पाकर अपना **जीवन एकान्त में** विताने के लिये उस पुण्यभूमि में जा बसे जहां की पहाडी वादी **केदारनाथ** के नाम से प्रसिद्ध है जो पठार* के प्रथम नरेश को जादू की तरह आरोग्य करके पवित्र कहलाई है और जहां गंगा के नाम से एक सोता नामांकित है। इस जगह इस युद्धप्रिय यात्री ने **देश देशान्तर** के, अनेक देशों के असंख्य फूल और फल पैदा करने वाले वृक्ष ला लाकर लगादिये। ये वृक्ष चाहे वर्फ से ढंके हुए **हिमालय** की पैदायश थे, चाहे विपुवत रेखा के निकट **समुद्रके किनारे** पर उत्पन्न होनेवाले थे

* टाड साहब लिखते हैं कि राजा कोलन गंगाजी के किनारे केदारेश्वर की यात्रा के लिये साष्टांग प्रणाम करते २ जाते हुए यहीं कुष्ठ रोग से, इस सोते में, वाणगङ्गा में स्नान करके आरोग्य होगये थे। भगवान् केदारनाथ जी ने राजा को उसी समय पठार का अर्थात् मध्य भारत का नरेश बनाया था।

परंतु श्रीजी के आनंद की उस समय सीमा न रही जब यह परदेशी वनस्पति बूँदी के चट्टानों में उगकर फूल फल देने लगी। शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी में, उनकी कुटीर के पास इस राजर्षि के हाथ से **तिब्बती अनन्नास** और **मलाका की बेत** को उगा देख उन्हें भी आश्चर्य हुए बिना न रहा होगा, क्योंकि वह स्वयं नहीं जानते थे कि इन पेडों का किस तरह का स्वभाव है।"

"जब उम्मेदसिंहजी ने हाडाओं के **राजदंड का त्याग** किया उन्हें निश्चय था कि केवल एकान्त जीवन से ही **शांति मिलेगी**, केवल यही संतोष प्राप्त करेगा और उनके लिये तथा उनके सुख के लिये इसी की आवश्यकता है किन्तु अपने लिये यात्रा की तैयारी में साथी चुनते हुए उन्होंने अपने **कुलाभिमान** को, अपने दर्जे को छोडा नहीं। क्योंकि उनके **त्याग में** बुद्धि की कायरता को लिये हुए उदासी नहीं थी, उनके त्याग में आग्रह लिये हुए विचार की **दुर्बलता न थी**। उनके वे ही **ऊंचे विचार** जो उन्हें विरासत में मिले थे उनके साथ रहे और जहां २ वह साधु महात्माओं के दर्शन करके उनसे उपदेश प्राप्त करने के लिये गये वहां २ उनके साथ ही बने रहे। उन्होंने अपने राज्य के इतिहासों में तथा और राज्यों के इतिहासों में, पढाथा कि—"यह राजवैभव मोक्ष से वंचित रखने के लिये अच्छा खासा फंदा है और वही आदमी सच्चा सुख प्राप्त करता है जो समय आनेपर उसे **छोड छाडकर** अलग होजाता है और स्वर्ग सुखके लिये **शांति का मार्ग अवलंबन** करता है।"—किन्तु अपने विचार और आचार का अनुगमन करके उन्होंने **जान लिया** कि संसार की विचित्रता में, केवल कन्या कुमारी के निकट रामेश्वर की खाडी में गडजाने से, अथवा केवल गंगाजी में गोते लगाने से ही **भला** न होगा। बस इसी लिये उन्होंने उन **समस्ततीर्थों** के अवलोकन करने का पक्का मनसूबा कर लिया जो हिन्दूजाति के प्राचीन ग्रंथों में वर्णित हैं और जो यात्रा ही यात्रा में जीवन बिताने वाले लोगों के भी दर्शन में नहीं आसकते हैं। उनके इस मनसूबे पर उनकी **यात्राप्रियता** ने जिसमें उन्होंने परवरिश पाई थी खूब असर डाला और जब उन्हें विदित होगया कि न केवल शास्त्रों से और मजहब से ही काम चलैगा तब उन्होंने यात्रा की कठि-

नताओं में घुस पडने का सच्चा संकल्प किया । इसीसे उनके हृदय को **शांति मिली** और यही उनके मानसिक दुःखों को दूर करनेकी **महौषधि निकली** । इसीके अनुसार यह **राजसी साधु** साधुओं के भेषमें यात्रा करने के बदले शस्त्रों से सज्जित होकर यात्रा करने को निकल पडे । इसमें भी उनके लिये **इन्द्रियदमन** था । केवल दिखावट नहीं थी क्योंकि वह अपने शरीर पर उस समय के प्रचलित **सब ही शस्त्रों को**, प्रत्येक शस्त्र को धारण करते थे । इनमें इतना वोझा होता था कि जिसे आज कल के गये बीते जमाने में **दो राजपूत भी** अच्छीतरह **नहीं उठा सकते** हैं । वह रुई से भरा हुआ अंगरखा पहनते थे जिसे तलवार नहीं काट सकती है ।वह बंदूक रखते थे, भाला रखते थे, तलवार रखते थे, कटार रखते थे और छुरियों का समूह रखते थे, चमडे की थैली रखते थे, सिंगी रखते थे । उनके पास एक फरसा था, एक बरछी थी एक गलोल थी, एक आसा[2]++ " था और धनुष के साथ बाणों से भराहुआ भाथा था । और यह प्रमाणित होगया है कि जिस समय उनकी उमर **सत्तरवर्ष** को पहुँच जाने से इधर उधर भटकने में ही उनकी दाढी श्वेत होगई थी उनके शरीर में **इतनी सामर्थ्य** थी कि वह अपनी ढाल में अपने इन्ही सब शस्त्रोंको रखकर केवल **एक हाथ से** उठा ही नहीं लेते थे किन्तु कुछ पलतक उन्हें लेकर उस + हाथको उठाये भी रखते थे ।[3]"

---

१ इसे राजपूताने में देवडी कहते हैं जिसमें जल भरते हैं । २ + + यह शस्त्र श्रीजी साहब का ही आविष्कार है । यह बरछे की सूरत का होता है । इसकी भाल छुरे की सी चौडी होती है और उसके नीचे नीचे की ओर मुडेहुए लोहे के दो टुकडे होते हैं । शत्रु के शरीर में घुसेड कर पीछा निकालते समय उसकी आंतें खिच आती हैं । एक कविने कहा है कि:-

"सब आयुध ईश्वर रचे ब्रह्मा रच्यो सुवेद ।
परशुराम परसो रच्यो आसो रच्यो उमेद । "

३ कहते हैं कि एकबार जालिमसिंहजी अपने सामने दो पहलवानों के हाथों में शेर पंजे पहनवा कर लडा रहे थे । दोनों के शरीर नखों से छिन्न भिन्न होगये थे । संयोग से वहां उम्मेदसिंहजी भी आ निकले । उनके आगे जालिमसिंहजी इन्ह पहलवानों की प्रशंसा करने लगे । उम्मेदसिंहजीने कहा कि इस काम में न इनकी—

"अपने कुलके बहादुर राजपूतों की छोटी सी सेना लेकर उन्होंने अनेक वर्षों तक, बडी मुद्दत तक यात्रा करके **प्रत्येक देश छानडाला**। वह गंगाजी निकलने के सोते **गंगोत्री से लेकर रामेश्वरतक** गये। उन्होंने **अराकान** जाकर सीताजी के तप्तकुंडों से लेकर, उडीसा के जगन्नाथजी से लेकर हिन्दुओं की **दुनिया के अंत तक** यात्रा की। हिन्दू धर्म के अनुसार जहां तक **जाने की सीमा** है वहां २ तक जाकर उम्मेदसिंहजीने प्रत्येक पवित्र तीर्थ का, प्रत्येक आश्चर्य दायक स्थान का और प्रत्येक विद्यापीठ का अवलोकन किया। और जब कभी वह अपने पैतृक स्थान को लौटे केवल उनके कुलवालों ने ही उनका आदर न किया बरन **रजवाडों के** प्रत्येक राजा ने, प्रत्येक राजपूत ने उनकी **अभ्यर्थना** की, क्योंकि वे लोग समझते थे कि मार्ग में चलते चलते हमारे यहां निवास करनेसे यदि इस राजर्षि का पवित्र चरण हमारे स्थान में पडैगा तो हमारा **घर पवित्र होजायगा**। वह **देवता** समझे जाते थे। **जानकारी का खजाना** जिसे उनके अनुभव ने इकट्ठा किया था इतना बढकर था कि उनकी प्रत्येक बात का आदर होता था और उनका हर एक **शब्द लिखा जाता था**। वह जिस समय विद्यमान थे उनकी कितनी प्रशंसा की जाती थी उसका बढकर प्रमाण यह है कि अब तक भी प्रत्येक हाडा उन्हें बडे **पूज्यभाव** से स्मरण करता है। उनलोगों के लिये श्रीजी का **वाक्य ही आईन** था और उनके चरित्र के जितने किस्से प्रचलित हैं उन्हें अब भी लोग **बडा पवित्र** समझते हैं। लगभग उनकी अंतिम यात्रा सिंधु नदीके मुहाने पर उसके बीच में हिंगलाज की भयानक अग्नि देवी तक हुई थी, जो मकरान के किनारे पर है और जो **हिन्दुओं की सीमा के पार** है। ज्यों ही वह द्वारका को लौटे कावा जाति के जंगली लोगोंने उनका रास्ता

-वीरता है और न आपके लिये ऐसा घातक तमाशा कराना योग्य है। यदि वीरता रखना हो तो इनसे मेरी ढाल उठवाओ। ढाल उठाने का दोनों पहलवानोंने प्रयत्न किया परंतु न उठासके। तब से लजित होकर जालिम सिंहजीने ऐसा घातक तमाशा कराना छोडदिया।

रोक लिया । यह एक लुटेरी जाति है जो उस देश में बसती है । किन्तु इस वृद्ध वीर ने अपने **अस्थि मांस की शक्ति** के साथ धर्म की शक्ति को मिलाकर बडी ही वीरता के साथ अपनी रक्षा की और उन्हें मारकर उनसे **खूब विजय** पाया । उन्होंने कावाओं के सर्दार को कैद कर लिया और जब उसने यह प्रण कर लिया कि हम लोग अब से फिर द्वारका के यात्रियों को **कभी न सतावैंगे** तब छोडा । "

" उम्मेदसिंहजी की वीरयात्रा एक **दुःखप्रद घटना** से रुक गई । उनके पुत्र की मृत्यु होजा ने से उन्हें अपने **पौत्र की शिक्षा** के लिये फिर राजधानी में कुछ काल तक निवास करना पडा ।"

श्रीजीसाहब की प्रशंसा में टाडसाहब ने जो कुछ लिखा है उससे बढकर मैं क्या लिख सकता हूँ । टाडसाहब सच मुच ही उनके **भाट बनगये** हैं । इससे मेरा मतलब यह नहीं है कि उन्हों ने इस लेख में कुछ भी अत्युक्ति की है । उनके लेख में **अतिशयोक्ति** का लेश नहीं है । वह सच्चे लेखक थे, राजपूताने के इतिहास की नसनस से अभिज्ञ थे । उन्होंने जो कुछ इस विषय में लिखा है केवल बूँदी के इतिहास से नहीं किन्तु सब रजवाडों के इतिहासों से मिलान करके लिखा है क्योंकि यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो उन जैसे गंभीर और प्रामाणिक विद्वान् की लेखनी से ऐसा कदापि न लिखाजाता कि उस समय के **सब ही राजा** श्रीजीसाहब के पधारने से अपने घर को **पवित्र सम्झते** थे । अस्तु इस चरित्र में टाडसाहब के उल्लेख से पाठकोंने जान लिया होगा कि वह **सच्चे राजर्षि थे** । उन्होंने राज्य के झंझट से बचने के लिये दुनिया से किनारा नहीं किया था और न उन्हें आज कल के कितने ही ढोंगी साधुओं की तरह भगुवां कपडे पहन कर दुनिया की आंखों में धूल डालना पसंद था । वह दिखलागये कि यदि किसी राजा को **राज्य से विरक्ति** हो तो इस तरह करना चाहिये । पुराणों में लिखे हुए राजाओं की बात जाने दीजिये परंतु राजपूताने के-भारतवर्षके इति हासों को अथ से लेकर इतितक देख जाइये और फिर कहिये उनके सिवाय कौन राजा ऐसा हुआ है जिसने शत्रु के पेट में से राज्य नि-

काल कर, पसीने के बदले अपने शरीरका रक्त बहाने वाले परिश्रमसे प्राप्त किया हुआ राज्य सुख भोगने के समय **तिनके की तरह** त्याग दिया और फिर राजसी ठाट के साथ भारतवर्ष भर का कोना २ छानकर साधु महात्माओं का दर्शन किया, उनसे उपदेश ग्रहण किया और अच्छे २ पदार्थों का बूंदी में संग्रह किया। यदि उनका ऐसा विशाल अनुभव कहीं लिखा गया हो तो आज कलके नरेशों के लिये **मनुस्मृति** की बराबर काम दे सकता है और आजकल के राजाओं का पथदर्शक बन सकता है। केवल राजाओं के लिये ही **उनका अनुभव** प्यारी से प्यारी वस्तु नहीं है किन्तु बडे २ अंगरेज उससे बडा २ लाभ उठा सकते हैं। वह देश प्रबंध के लिये एक अच्छा मसाला है। उनके संग्रह किये हुए वृक्षों का अबतक कुछ अंश "देवविलास" बाग में विद्यमान है। उन्होंने केवल देश देशांतर के वृक्षों का ही संग्रह नहीं किया था वरन उनका उपार्जन कियाहुआ **एक प्याला** बूँदी नरेश के पास है। उसके गुण अद्भुत हैं। वह सच मुच जादू से भरा हुआ है। जो काम अपना शिर खपादेने के बाद वर्षों के परिश्रम से भी बडेमें२ नामी **डाक्टर** नहीं कर सकते, जो काम ठीक तौर पर **आयुर्वेद** में नहीं है और **यूनानी हिक्मत** में नहीं है वह उस प्याले में है। कैसे भी **विषधर सर्प** ने किसी आदमी को काटा हो, किसी पर किसी तरह का विष चढ गया हो उस प्याले में डाला हुआ पानी उसे पिला देने से उसका **विष तुरंत उतर जाता** है। इसतरह वह प्याला हजारों आदमियोंको **काल के गाल** में से निकलाता है। उसका जल अब भी बूँदी में गरीब से लेकर अमीर तक के लिये सुप्राप्य है। उसके जल से भरीहुई तोंगें शहर की कोतवाली में रक्खी रहती हैं और राज्य के बडे बडे गावों में रक्खी रहती हैं और जलपीते ही रोगीपर जादूका सा असर करती हैं। उनके संग्रह किये हुए पदार्थों में यह एक प्याला ही नहीं है ऐसी २ अनेक वस्तुयें हैं जिन में जादू के समान गुण है। कोई भी डाक्टर, कोई भी वैद्य, कोई भी हकीम अबतक कहने में समर्थ नहीं हुए हैं कि इनमें ऐसा गुण क्यों है?

टाडसाहब की पुस्तक से इस अध्याय में जो वाक्य उद्धृत किये गये हैं उनसे मालूम होता है कि द्वारका के निकट काबाओं से युद्ध कर के उनका दमन करने की

घटना महारावराजा श्रीविष्णुसिंगजी के शासन से पूर्वकी है परंतु बूँदी के इतिहास से विदित होताहै कि यह घटना पीछे की है । खैर. कुछ भी हो । यहां यह प्रसंग आ पडने पर लिखी गई है और फिर भी यथा स्थान इसका संकेत करदिया जायगा ।

श्रीजी साहब के उन **शस्त्रों का संग्रह** बूँदी राजके सिलह खाने में हैं सच मुच ही उन्हें देखकर बडा आश्चर्य होता है। उन्हें एक ढाल में रखने पर बडा अचंभा होताहै । यही मनमें आता है कि जिसे आजकल के दो वीर नहीं उठा सकते उसे वह अकेले कैसे उठाते होंगे । सच मुच ही वे शस्त्र **पूजनीय** हैं । जैसे देवताओं को वंदना की जाय वैसे ही उनका आदर है। धार्मिक हिन्दू एक साधारण लकडी को तीर्थों में साथ रखकर जब बडे आदर की वस्तु समझते हैं तब ये शस्त्र एक महात्मा के हैं और देशभर के समस्त तीर्थों में हो आये हैं । इनका इतना आदर कियाजाय तो आश्चर्य क्या है ?

अध्याय ५.



पौत्र को राज्य ।

द्वारका की यात्रा ।

यह पहले लिखा जा चुका है कि **श्रीजी साहबने** युवा पुत्रके, (महाराव राजा अजितसिंहजी के) सुरलोक को प्रयाणकर जाने से बालक पौत्र को राज्य दिया । वह जब एक बार राजपाट छोड चुके थे और जब वह अपना उपार्जित राज्य अपने पुत्र को दे चुके थे तब वह पुत्र के राज्य को, पौत्रके अधिकार को क्योंकर ग्रहण कर सकते थे इस लिये उन्होंने **गोद में खेलने वाले**, जरासे, चार–साढेचार महीने के **बालकपौत्र** को राज्य दिया । उन्होंने उसी विधि से पौत्र को बूँदी के महारावराजा बनाया जैसे पुत्र को बनाया था केवल अंतर इतना ही था कि अजितसिंहजी जिस समय सिंहासन पर विराजे अपने आप एक वीर क्षत्रिय के वेश में थे और जब महाराव राजा विष्णुसिंहजी बूँदी नरेश बनाये गये तब वह **सेवकों की गोदमें** थे, तब उन्हें खबर नहीं थी कि "मैं आज राजा बनाया जारहाहूँ । आज मुझ पर **बडी भारी जिम्मेवरी** का काम डाला जारहा है ।" खैर कुछ भी हो ज्येष्ठ

कृष्णा ११ सोमवार को संवत् १८३० में श्रीजी साहबने साढे चार मास की उमर के पौत्र विष्णुसिंहजी को राज्य दिया । शास्त्र विधि के सब **कर्म्मों के** सिवाय अपने हाथ से पौत्र के मस्तक पर राजतिलक किया । जो हर्ष, जो उत्सव, अजितसिंहजी के राज्याभिषेक के समय हुआ था वही बालक विष्णुसिंहजी के लिये हुआ । श्रीजी साहब धाभाई सुखरामजी को पौत्र का अमात्य बनाकर आप पौत्र की शिक्षा दीक्षा का और राज्य के निरीक्षण का काम करते हुए यहां निवास करने लगे । राज्य छोडदेने पर भी, संसार छोडदेने पर भी और बूँदी **पालन के दृढव्रत** के व्रती होकर उसी तरह रहने लगे जैसे दूधमुंहे बालक की माता मरजाने से दादी को उसका पालन पोषण करना पडता है । अवश्य ही वह इसतरह बूँदी के प्रेम में पौत्र के स्नेह में फँसकर कुछ काल के लिये **तीर्थयात्रा** करना छोड बैठे परंतु फिर भी राज मदसे, राज्य प्रपंचों से उसी तरह अलग भी रहे जिस तरह जल में रहकर और जलही में जन्म लेकर भी **कमल जल से** अलग रहता है ।

उम्मेदसिंहजी राज्य के कामकाज से अलग थे और इस बात को सारे रजवाडे जानते थे इसीलिये रानाजी को बूँदी से फिर छेड छाड करने का साहस हुआ । उन्होंने इसबार **वीलहट्टे के लिये** बूँदी से भिड पडने की हिम्मत न की किन्तु **महाजीसेंधिया** से सहायता ली । उनके पास वकील भेजकर कहलाया कि–" बूँदीवालों ने हमारे पिता अरिसिंहजी को मारकर उनका घोडा और वील-हटा छीन लिया । आप हमें दोनों बून्दी से दिलवा दीजिये ॥ "

केवल इतना ही न कहलाया बरन बेगूं पर चढाई करने के लिये कुछ द्रव्य देकर महाजी की सेना इधर बुलाई । सेंधिया ने नैनवां आकर धाभाई सुखरामजी को पत्र लिखा और उसमें महाराना **हमीरसिंहजी** को उनके पिता का घोडा और वीलहटा लौटादेने की सलाह दी । दूध मुंहे बालक नरेश के समय में सेंधिया जैसे प्रबल शत्रु से सामना करना उचित न समझ कर, एक हलकी बात के लिये शांति का भंग करना अनुचित जानकर पुराने झगडे को और गडे पत्थर को उखाडने में कुछ लाभ न समझ कर धाभाई

जीने राना अरिसिंह जी का **घोडा और बीलहटा** ग्राम राना हम्मीरसिंह-जी को लौटा दिया। वास्तव में यह कार्य **समय के अनुसार** हुआ। धाभाई जी ने बुद्धिमानी की और **श्रीजीसाहब ने** भी ऐसी सलाह देकर उचित ही किया क्योंकि पहले से ही रानाजी से उलझकर बीलहटा छीन लेने का कार्य उन्हें **पसंद नहीं आया था**। यदि वह इस समय इस काम के लिये रोकटोक करते तो उन्हें केवल रानाजी पर ही नहीं बरन सेंधिया पर शस्त्र उठाना पडता, शांति का भंग करना पडता और उनके बूँदी रक्षा के व्रत में तथा सेंधिया की मित्रता में विघ्न पडता।

यद्यपि बूँदी वालोंने सेंधियासे मित्रता रखने के लिये बीलहटा देदिया था परंतु अपने चिर उपकारक **बेगूं वालों की सहायता** करने में वे आना कानी न करसके।

उन्होंने समझ लिया कि बीलहटा देने में यदि कुछ हानि है तो **केवल अपनी** है किन्तु बेगूं जैसे मित्र राज्य की, सदासर्वदा, बडा भारी उपकार करते रहने वाले राज्य की गाढी भीड के समय सहायता न करना कृतघ्नता है, मित्र द्रोह है और पाप है। बस इस लिये उन्होंने बेगूंकी सहायता के लिये बूँदी से सेना भेजी। रानाजी से युद्ध का खर्चा पाकर महाजी **सेंधिया ने बेगूं पर** चढाई की। बेगूं वालों की वीरता और बूँदी की सहायता देखकर अकेले रानाजी, अकेली मेवाड बेगूं से भिडने का साहस न करसकी। सेंधिया की सेना ने बेगूं को घेर कर लडाई की। बेगूंवालों ने भी अपनी शक्ति भर लडने में कसर न की परंतु जब महा-जी की सेना को आगे कट मरने के सिवाय कोई उपाय न देखा तब **६ लाख रुपया** दंड देकर मेल करलिया। इस तरह मेवाड का बेगूं से झगडा समाप्त हुए पीछे बूँदी की सेना राजधानी को लौट आई।

जिस समय सेना लौटकर चली आई श्रीजी साहबने बूँदी राज्य के सरदार उमराव, सेठ साहूकार, कर्मचारी इकट्ठे करके उनसे कहा:—

"धाभाई सुखराम तुम्हारे स्वामी अजितसिंह के समय से राज्य का अमात्य है। इसे ही अभी अपना स्वामी समझो क्योंकि तुम्हारा स्वामी अभी निरा बालक है।

अभी दूध मुँहा बालक है। जब तुम्हारा स्वामी कहीं जावै तब भवानी सिंहजी और भगवंतसिंहजी इसके साथ रहें और इसके चाचा बहादुर सिंहजी इसके आगे रहें।"

श्रीजी साहब इस तरह राज्य का भार धाभाई सुखरामजी पर डालकर ही निश्चिन्त न हुए। उन्हें खटका था कि महाराव राजा विष्णुसिंहजी को निरा बालक समझ कर कोटानरेश पहले की तरह फिर मालिक न बन बैठें। वह शिशु पौत्र का **राज्य निष्कंटक** किये बिना अपनी यात्रा का कार्य प्रारंभ नहीं करसकते थे। यद्यपि बीलहटे का झगडा निपट जाने से उन्हें अब मेवाड की ओर से अधिक चिन्ता न थी परंतु **पडौसी कोटा** जब समय पावै तब वार कर सकता था इसलिये उन्होंने बूँदी का कोटे से, बडे भाई का छोटे भाई से और एक पडौसी का दूसरे पडौसी से **मेल करादेना** ही आवश्यक समझा। सफलता उनकी जूतियों की दासी थी। वह जहां हाथ डालते सफलता उनके सामने हाथ बांधे खडी रहती थी। वह जैसे युद्धमें—विग्रह में निपुण थे वैसे ही **राजनीति में भी दक्ष थे।** फल इच्छा के अनुसार हुआ। कोटानरेश के नाक का बाल कोटे के कर्ता धर्ता विधाता, कोटे के दीवान, झालावाड राज्य के मूल पुरुष झाला जालिमसिंहजी इस काम में सहायक हुए। दोनो राज्यों के सरदार आये गये। दोनो ओर से खूब आतिथ्यसत्कार हुआ। दोनो में मेल हुआ और इसतरह सदा का झगडा मिटकर **दोनो राज्य भाई २ होगये।** वह दिन दोनों के लिये बडा शुभ था क्योंकि बंधुविरोध से बढकर दुनिया में कोई बुराई नहीं है। हर्ष है कि तब से बराबर स्नेह चला आता है।

इसी अवसर में संवत् १९३१ की कार्तिकी पूर्णिमा को श्रीजी साहब की रानीजी राठोडजी का स्वर्गवास होगया। **पत्नी के स्वर्गवास से** पति ने अकेले होकर अब अपने को और भी संसार में अकेला समझ लिया। थोडा सा बंधन जो शेष रहगया था सो भी अब टटगया और बूँदी के राज्य को भीतरी उपद्रव से और बाहरी आक्रमण से निष्कंटक समझकर, राज्य का भार विश्वास पात्र धाभाई और सरदारों के भरोसे छोडकर इसी वर्ष के मार्गशीर्ष कृष्ण में

अर्थात् प्रियपत्नी की अंत्येष्टि क्रिया समाप्त होते ही **द्वारका को प्रयाण किया।**

यह घटना उस समय की है जब **लखनऊ के नव्वाब** आसिफुदौला को और रुहेलों ने बहुत तंग कर रक्खा था। नव्वाब का उनके मारे नाकों दम आगया था और इसीलिये उन्हें अंगरेजों की शरण लेनी पडी थी। इस बात का श्रीजी साहब के चरित्र से कुछ भी संबंध नहीं है परंतु "वंश भास्कर" के आधार पर इस इतिहास प्रसिद्ध घटना का मैंने यहां इसलिये उल्लेख किया है कि पाठकों को समय का ज्ञान होजाय। रुहेलों के त्रास से बचने के लिये अंगरेजों को नव्वाब ने काशी का परगना देदिया और कदाचित् तब ही से उस प्रान्तमें अंग्रेज जाति का पैर जमकर भगवान वामनावतार के पैर की तरह बढता २ प्रान्त भरमें फैलगया। कांशी का परगना अंग्रेजों को मिलजाने से बूँदी राज्य का उनसे पहला संबंध वहीं हुआ, क्योंकि वहाँ पर बूँदीनरेश के पूर्वज रावराजा सुर्जनजी के बनाये अनेक स्थान हैं।

द्वारका के लिये बूँदी से प्रयाण करके **श्रीजीसाहब** पुष्कर में स्नान करते हुए मारवाडकी सीमा में होकर जिस समय पधारते थे वहां के मंत्रियोंने इनका **मार्ग रोक लिया।** इनसे बहुत कुछ विनती करके जोधपुर लिवा लेगये **जोधपुर नरेश ने** इनकी पेशवाई की, इनकी खूब अभ्यर्थना की और कुछ दिन वहां रक्खा। वहांसे चलकर **बाबगांव** पहुंचे। वहां के राजा गजसिंहजी ने इनके दो घोडे नजर किये। मारवाड की सीमा का उल्लंघन कर गुजरात होते हुए श्रीजी साहब **मोरवी** राज्य में पहुंचे। वहां के जाडेचानरेश बाघसिंहजी ने इनका बहुत सत्कार किया तथा घोडा और शस्त्र भेट किये। इन्होंने एक बर्छी रखकर औरों को लौटा दिया। वहां से आगे बढने पर **राजकोट** के नरेश कुंभसिंहजी ने पेशवाई करके इनकी नजर न्योछावर की। इन्होंने नजर लौटाकर जूनागढ को प्रयाण किया। जूनागढ से हनुमत धारा होकर, अंबाजीके दर्शन करते, ओघड पादुका को परसते, आत्रेय कुंड में आचमन करते **गिरनार** पर चढे। लोगों में प्रसिद्ध है कि:—

"गंगा न्हाया न गोमती, चढा न गिरि गिरनार।
बनजारे के बैल ज्यों, गया जमारा हार।"

बस उसी गिरनार की पुण्य भूमि में जाकर कृत कृत्य हुए। इन्होंने अपना जन्म सफल समझा। जीवन भर में कभी पाप न करने से इनके पुण्यपुंज की वृद्धि हुई। वहां पांडव छत्री में गुप्त धन चढाकर इन्होंने अपमृति कुंड में स्नान किया और तब जूनागढ से चलकर माघ कृष्ण ३० को गोमती में जा स्नान किया। उस समय आज कल की तरह रेल नहीं थी और सडकें भी नहीं थीं, तथापि केवल दो मासमें इन्होंने इतनी बडी यात्रा कर ली। वहांसे ज्योतिर्लिंग के दर्शन करके रामहडापुर होतेहुए माघशुक्ला ७ को नौका द्वारा **द्वारका पहुँचे**। शंखोद्धार में स्नान किया, भगवान के दर्शन किये और चार दिन तक उस पवित्र भूमि में निवास करके नाव द्वारा वहांसे प्रयाण कर गोपीतलाई में स्नान किया। बस यहीं **कावाजातिके** डाकुओं से इनकी, जिसका वर्णन चौथे अध्याय में टाड साहब के आधार पर किया गया है, मुठभेड हुई।

केवल मुठभेड ही क्यों हुई कावापति नगमणि की आज्ञा से सैकडों कावोंने इनकी **मुट्ठीभर सेना** को चारों ओर से इसतरह **घेरलिया** जिस तरह बालक सूर्यको बादल ढांक लेतेहैं अथवा जैसे अभिमन्यु को कौरवोंने घेर लिया था। वे लोग ऊँचे २ पहाडों पर चढकर इनपर बाणों की वर्षा करने लगे, इनपर पर्वत के बडे २ पत्थर लुढका २ कर मारने लगे और गोलियों के ओलों से इनके शरीर चटाचट घायल करने लगे। **अतिवृद्ध** होनेपर भी यह बहादुर थे और शत्रु सेना में घिरजाने पर भी **यह हाडा** थे। कावाओं ने इनसे बहुतेरा कहा कि "अपने बूढे प्राणों को वृथा क्यों खोते हो, अपने पास का माल मता देकर भाग जावो।" परंतु वीर हाडा, अनेक लडाइयों में विजय पाने वाले, जयपुर का पेट फाडकर बूँदी निकाल लेने वाले उम्मेदसिंहजी प्राणजाने तक भी प्रणभंग करनेवाले थोडे ही थे। चारों ओर से घिरजाने पर और शत्रु के हाथ में पडजाने पर हिम्मत टूटने के बदले इनका दूना साहस बढा। इन्होंने बाण वर्षाके बीचमें, बाणों से, गोलियोंसे शरीर छिद २ कर चकनाचूर हो जाने पर भी तककर **एक ही गोली** ऐसी मारी जिससे कावापति नगमणि का शरीर छिदगया। गोली उसे भेदकर दो और कावाओं को मारतीहुई निकल गई। नगमणि का चाचा इनके साथ के सरदार खैराडा के हाथ से मारा-

गया। बस इनके मारेजाते ही पहाडी लंगूरों की तरह लुटेरे **काबा बेकाबू** होकर भागगये इन्होंने जिन को मारा उनके शिर काट २ कर साथ लेलिये। इनका एक सिलहदार अमरा, इनका एक घोडा और इनका प्रधान खुशहालचंद्र सोनानी मारागया। इनके सिवाय पांच सात आदमी घायल हुए। बस यह बेट होकर **रामहडापुर** आगये। वहां के राजा ने जब इनसे बहुत बिनती की तब इन्होंने काबाओं के कटे शिर उन्हें लौटादिये।

इसतरह उस बार की लडाई अवश्य ही समाप्त होगई, परंतु आगे बढनेपर फिर काबाओं ने इनका मार्ग रोकलिया। उस समय थोडी सी लडाई में दो आदमी इधरके और एक उधरका घायल होने बाद **नगमणि** जो पहले घायल होकर भाग गया था पकडा गया। पकडे जाते ही वह श्रीजी साहब के **पैरों में पड गया**। उसने हाथ जोडकर कहा:—

"महाराज, हमारे पुरखे इस जगह गांडीव धनुष वाले अर्जुन को भी लूट चुके हैं। किन्तु मैं आपकी शरण आया हूँ।"

श्रीजीसाहब ने उसे १००) और वस्त्र देकर उसका सत्कार किया क्योंकि लुटेरा होने पर भी वह बहादुर था। उससे लिखवा लिया कि अब से कोई भी काबा किसी भी **यात्रीको न सतावैगा**। बस वहांसे चलकर नयानगर (जामनगर) के जाडेचा यादव यशकरण जी राजा से मिलते हुए संवत् १८३२ की चैत्र शुक्ला १ को **बूँदी आपहुँचे**। कुछ दिन बडोदिये में विश्राम कर के रामनवमी के दिन केदारेश्वर के निकट अपने निवास स्थान में प्रवेश किया। यहां पधारने के अनंतर आपने बाग कुंड और महल बनाने के लिये अपने पास से हजारों **रुपया खर्च** करडाला।

काबाओं के विजय का जो वर्णन संक्षेप से टाड साहब ने किया है वही कुछ विस्तार से "वंशभास्कर" में लिखा हुआ है। दोनों पाठकों के सामने हैं केवल अंतर दोनों में इतना ही है कि टाड साहब ने यह बात विष्णुसिंहजी के गद्दी विराजने से पहले लिखी है और "वंशभास्कर" तथा "वंशप्रकाश" नामक ग्रंथों में बाद। मेरी समझ में यह घटना बाद की ही है और टाड साहब ने

इनकी यात्रा का वर्णन एक ही जगह किया है, इसलिये इसे भी उसीके शामिल करदिया है क्योंकि विष्णु सिंहजी को राज्य देने बाद जो इनकी यात्रायें हुई उनका भी टाड साहब ने अलग उल्लेख नहीं किया है । इस से मालूम होता है कि टाड साहब ग्रंथ का संक्षेप कर के उसे रोचक बनाने के लिये यात्रा संबंधी सब बातों को एक जगह लिख गये हैं । जिन दिनों यह यात्रा में थे विष्णुसिंहजी के लिये जोधपुर से टीके का दस्तूर आया था ।

अध्याय ६.



बदरिकाश्रम की यात्रा ।

बूँदी के सुप्रसिद्ध कवि सूर्यमल्लजी ने अपने ग्रंथ "वंशभास्कर" में प्रसंग वश जयपुर उदयपुर के बिगाड बनाव की घटना का वर्णन करते हुए दो तीन मयूख खर्च किये हैं। उन बातों का न तो श्रीजी साहब के चरित्र से संबंध है और न बूँदीके इतिहास से ही, इसलिये उनका यहां उल्लेख करने की कुछ आवश्यकता नहीं है परंतु वह इसी प्रसंग में एक बात ऐसी लिख गये हैं जिसका इस चरित्र से संबंध न होने पर भी पाठकों के जानने योग्य है । मैं उसे अपने शब्दों में न लिख कर कवि राजा सूर्यमल्लजी के वाक्य ज्यों के त्यों उद्धृत करदेना उचित समझता हूँ । वह लिखते हैं कि:—

"संवत् के एक ऊन बीसम शतक समै कतिकगये रु भये देखो नये राज्य कति ॥
पुण्यापुर, राघोगढ, सोपुर नलपुरादि ऐसे बडे छोटे बने बिगरे प्रमत अति ॥
लवपुर अलवर ज्यों ही टौंक जावरा रु पट्टनि, पुरोग यों नये के भये भूमिपति ॥
उक्त काल नारव प्रताप इनही में राह, मिच्छन को वंचि के महीप बन्यो छद्ममति ॥
अल्प ग्रास याके पहिले हो मंचहेरी आदि, ताने देशकाल छलबल के सहाय तब ॥
जोर लहि छोटे बडे बावन गढन जीति, स्वीय कीन्हों दिल्ली सन दक्षिण प्रदेश सब।"

कवि राजा सूर्यमल्लजी के उक्त पद्य का मतलब यही है कि विक्रमादित्य की उन्नीसवीं शताब्दी में **पूना** का राज्य बिगड गया, **राघवगढ** बिगड गया, **शिवपुर** बिगड गया, **नरवर** बिगड गया और

इसी तरह छोटे वडे अनेक राज्य बिगड गये । उक्त शताब्दि में लाहोर का नया राज्य स्थापित हुआ, **अलवर** हुआ, **टौंक** हुई, **जावरा** हुआ और **झालावाड** हुआ । जयपुर के आश्रित नरूका प्रताप सिंहजी ने छलबल से दिल्ली, जयपुर और भरतपुर के परगने दबाकर दिल्ली से दक्षिण के प्रदेश में अपना राज्य स्थापन करलिया । यही उस समय के रजवाडी इतिहास का सारांश है । इस चरित्र से इस बात का संबंध न होने पर भी मैंने समय का दिग्दर्शन कराने के लिये यहां लिख दियाहै । इसी वर्ष में जयपुर से विष्णुसिंहजी के लिये राजतिलक का दस्तूर आया ।

द्वारका की यात्रा से लौटकर श्रीजी साहब ने बूंदी में केवल इसी लिये विश्राम किया कि धाभाई सुखरामजी अधिक बीमार होगये थे । उन्होंने इनके सिवाय दूसरा ऐसा कोई आदमी न देखा जिसके भरोसे यह बूँदीराज्य को, बालक नरेश को छोड जाते । धाभाईजी के आरोग्य होनेपर ठीक एक वर्षके विश्राम के बाद इन्होंने संवत् १८३२ की चैत्र कृष्णा ६ को **बदरीनारायण** की यात्रा के लिये प्रस्थान किया । द्वारका पधारते समय पहले जैसे जोधपुर राज्य बीच में था वैसे इसबार जयपुर नगर आडे आया । इनके आगमन की खबर जान **जयपुर नरेश** प्रतापसिंहजी नियत स्थान तक इनकी पेशवाई के लिये आये । उन्होंने इनको अपने यहां लेजाकर बहुत बढकर सत्कार किया । हाथी, घोडे, वस्त्र, शस्त्र, आभूषण भेंट किये । श्रीजी साहब अब राजा नहीं थे, अब वह सब कुछ छोड चुके थे और अब वह राजर्षि थे इसलिये उन्होंने इस भेट में से जयपुर नरेश के सम्मान के लिये **एक कटार** रखकर शेष सब लौटा दिया । कुछ दिन वहां रहकर चैत्र शुक्ला ६ को वहांसे विदा हुए । वहां से चल कर जब आप **अचरोल** पहुंचे तब वहां के अधीश ने श्रीजी साहब से कहाः—

"आप इधर जनाने को लेकर पधारे तो हैं परंतु आजकल इस ओर उपद्रव अधिक है इस लिये आपने यह काम अच्छा न किया "

इसपर श्रीजी साहब बोलेः—

"नहीं मुख्य रानियां साथ नहीं हैं । उन्हें वहीं छोड आया हूँ । साथ में कुछ दासियां आगई हैं । अब उन्हें लौटाकर तीर्थ लाभसे वंचित नहीं कर

सकता। क्योंकि मैंने उनको **वचन देदिया है**। अब तो जो कुछ कहदिया है उसका निर्वाह करूंगा। तीसरा आश्रम ग्रहण करने पर भी **क्षत्रियवर्ण का** अभिमान मैंने नहीं छोडा है। यदि मार्ग में किसी से लडाई होगी तो **मारेंगे और मरेंगे**।"

अचरोलसे विदा होकर कोट पूतली और रिवाडी होते हुए **बहादुरगढ** गये। वहां के नव्वाब ताज मुहम्मदखां ने इनकी विधिवत् अगवानी और आतिथ्य करके नजरें कीं। इन्होंने नजर न रक्खी तब उसने भी वही बात कही जो अचरोल के ठाकुर ने कही थी और विशेष यह कहा कि:—

"इन दासियों को यहां छोड जाइये।"

परन्तु इस बात को श्रीजी साहब ने स्वीकार न किया। वह वहां से चलकर भगवती यमुना में स्नान करते पंजाब के **सामलीशहर** के अधीश हीरासिंहजी सिक्ख का आदर सत्कार ग्रहण करते हरद्वार के निकट ज्वालापुर जा पहुँचे। वहां से हरद्वार—**हृषीकेश** जाकर उन्होंने रथ, घोडे, पालकी आदि सवारियों को वहीं छोड दिया और आगे झंपान में बैठकर पहाडकी चढाई आरंभ की।

इस यात्रा में ज्वालापुर से हरिद्वार, ओडारक, करखडी, हृषीकेश, तपोवन, शिवपुरी, डूंगरगढ, ब्राह्मण कोटी, बद्री खोह, मनभंग, राज्य खाळ, त्रिधारा द्विधारा संगम, देवप्रयाग, भागीरथी, अलकनंदा संगम और रानीबाग में मुकाम करते इन तीर्थों के दर्शन करते तथा स्नान करते श्रीनगर पधारे। मार्ग में दो तीन जगह झूलों पर चढकर नदियों के पार हुए। जिस समय रानीबाग पहुंचे **श्रीनगर नरेश** ललितसाहजी इन्हें लेने के लिये आयें और आकर श्रीनगर लिवा लेगये। इन्होंने पहले ही से श्रीनगरनरेश से कहला दिया था कि "हमारी पेशवाई न हो और न हमारी ताजीम की जाय क्योंकि हम यात्री हैं, हम वानप्रस्थ हैं **और अब हम राजा** नहीं हैं।" श्रीनगर नरेश ने ये सब बातें मान तो ली परंतु सत्कार वैसा ही किया जैसा एक राजा का, राजर्षि का और महात्मा का करना चाहिये। श्रीनगर से चलकर अलकनंदा का झूले द्वारा उल्लंघन करते हुए आगे बढना

चाहते थे, स्त्रियां पार भी होगईं थीं परंतु जिस समय पुरुष झूले पर चढे **झूला टूट गया** और सब लोग गिरते २ बचे। कुशल हुआ कि साथ के आदमियों ने झूले की रस्सी पकड ली। वहां से उदक ओघ, भरदार, मलय कोटि, चंद्रपुर, गुप्तकाशी, नारायण कोटी, गणेशकोटी, त्रियुगीनारायण, झलमल पटना, मुंडकट, गौरीकुंड, भीमआडोरक और केदार गंगा होकर यहां फिर झूले द्वारा गंगा पारकर **केदारेश्वर** पहुँचे। वहां भगवान भूतभावन केदार नाथजी के दर्शन किये। यहां हिमालय पर्वत के बर्फ समुदाय में, **बर्फ के ढेर में सत्रह आदमियोंने** घुस कर शरीर छोड दिये। मेवाड के एक सीसोदिया सरदार और बूंदी राज्य के अंतर्गत वांसी के एक ब्राह्मण आदि सब को इन्होंने बहुतेरा निषेध किया, बहुत कुछ समझाया बुझाया परंतु उन्होंने एक न सुनी और मुक्ति पाने के लोभ से इन सब ने **सदेह बर्फ में** बैठकर प्राण देदिया।

भगवान केदार नाथजी के दर्शन से आनंद पाय अब उन्होंने बदरी नारायण पधारने के लिये वहां से प्रयाण किया। वहां से भीम ओडार, झलमल पटना हो, झूले पर चढ राजाकोटि गये। वहां से गुप्त काशी, धर्मशाला, तुंगेश, ब्राह्मण कोटी, अलकनन्दा, पिप्थल कोटी, गरुड गंगा, जोशीमठ और विष्णु प्रयाग गये। यहां फिर झूले द्वारा अलकनंदा उतरे। इसके आगे ध्रुवछुरिका और असिधारा को उतरना पडा। वहांसे कल्याण कोटी गये। आगे फिर अलकनंदा को पार कर के **बदरिकाश्रम** पहुंचे। वहां पांच दिन निवास कर भगवान् का दर्शन किया। वहांसे लौटने पर पंडकेश्वर, जोशीमठ गुलाब कोटी, पीपल कोटी, गरुडगंगा, वैरागी कोटी, कर्णप्रयाग, शिवकोटी और राजाबाग होकर श्रीजी साहब **श्रीनगर पधारे**। वहांके राजा ने इन जैसे महात्मा राजर्षिकी अभ्यर्थना करके बडा ही आनंद लूटा। वहां से चलकर देवप्रयाग और राजा खाल होकर हृषीकेश पधार आये। यहां से अपने रथ घोडे साथ लेकर गंगालकड घाट जाने के लिये कनखल गये। वहां से गंगाजी को पार करने में बारह दिन लगे। वहां से चलकर जयपुर के राज्य में होते हुए **उणियारे** की सीमा में पधारे आप वहां न पधारते परंतु बीच

ही में से मार्ग रोककर उणियारा नरेश सरदार सिंहजी इन्हें ले गये । यह उणियारे तो न गये परंतु दो घडी नगर में ठहर कर उनका संतोष किया । वहाँ से चलकर संवत् १८३३ की भाद्र कृष्ण १० को श्रीजी साहब कुशल मंगल से बूँदी आ पहुंचे । यहां के राजा ने, राजकुटुंब ने, प्रजा ने और परिजनों ने आपका दर्शन किया । दर्शन करके सब लोग कृतकृत्य हुए । सब ने आपके चरण छुये और सबको ही आपने तीर्थ का प्रसाद दिया—आशीर्वाद दिया ।

श्रीजी साहब उत्तर यात्रा के लिये बूँदी से प्रयाण करने पूर्व ही जिस तरह प्रबंध कर गये थे उसी तरह महाराव राजा **विष्णुसिंहजी** का केवल चार वर्ष की उमर में बीकानेर नरेश गज सिंहजी की चार ही वर्ष की कन्या पन्नकुंवरिजी से **विवाह हुआ** ।

इस अध्याय में मैंने श्रीजी साहब की उत्तर यात्रा का उल्लेख करते हुए उस ओर के प्रायः सब ही तीर्थों के नाम लिख दिये हैं । ऐसा करने से विस्तार अवश्य हुआ है परंतु मैंने ऐसा इसलिये किया है कि पाठकों को एक ही स्थल पर उस ओर के तीर्थों के नाम मिलजायँ । और साथ ही यह भी विदित हो कि जब रेल नहीं थी और जब सडकें नहीं थीं तब लोग किस मार्ग होकर बदरीनारायण जाया करते थे ।

अध्याय ७.



रामेश्वर की यात्रा ।

श्रीजी साहब सचमुच ही बडे यात्रा प्रिय थे । पहले राज्य लेने के उद्योग में, फिर राज्य रक्षा के प्रयत्न में और अब तीर्थ सेवन के लिये इनका सारा जीवन **यात्रा हीमें बीता** । यदि हिसाब लगाकर देखा जाय तो इनकी उमर का आधे से **अधिक हिस्सा** यात्रा में निकला होगा । यह राजधानी में रहे थोडे और फिरने डौलने में अधिक । इन्होंने फिरने ही से राज्य पाया और फिरने ही से मोक्ष । बदरीनारायण की एक वर्ष पांच मास तक बडी लंबी चौडी यात्रा करके, इस यात्रा के अनेक कष्ट सहने पर भी इन्होंने

बूँदी में रहकर अधिक समय तक विश्राम न लिया। विश्राम क्यों लेते? यह विश्राम लेने के लिये, सुख भोगने के लिये जब पैदा ही नहीं हुए थे, जब यह कर्तव्य के अनुचर थे, जब अपना कर्तव्य पालन कर बूँदी का उद्धार करना, प्रजा का कल्याण करना और इस पुण्य से परलोक का मार्ग स्वच्छ करना ही इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था तब इन्हे विश्राम कहां? बदरी नारायण की यात्रा से लौटकर केवल साढे सात मास बूँदी में रहे। इतने समय तक यहां रहकर भी इन्होंने चैन न लिया। इस अवसर में प्यारी बूँदी के प्रबंध को संभाला, पौत्र के पठन पाठन की, शिक्षा की जांच की, राज्य प्रबंध की बिगडी बातों को सुधारने का काम किया और जब इन कामों से छुट्टी पाई तब ही **रामेश्वर की यात्रा** के लिये चल दिये।

श्रीजी साहब ने इसतरह संवत् १८३४ की चैत्र शुक्ला ८ को बूँदी से दक्षिण यात्रा के लिये प्रयाण किया। आप बूँदी से बिदा होकर केशवराय की पाटन होते हुए **उज्जैन** पधारे। वहां दत्त के अखाडे में डेरा दिया, क्षिप्रा नदी में स्नान किया, वहां पर श्राद्ध किया और ब्राह्मणोंको भरपूर दान दक्षिणा दी। जिस समय यह दत्त के अखाडे में थे वहां के संन्यासियों को मारने के लिये **चार हजार** वैरागी उनपर चढ आये। इस बात से घबडाकर संन्यासी लोगोंने श्रीजी साहब की **शरण ली।** उन्होंने हाथ जोडकर—बहुत कुछ गिडगिडा कर कहा:—

"श्रीमान् हम आप की शरण आये हैं। आप इन वैरी वैरागियों से हमारे प्राण बचाइये। हमें थोड जान कर ये लोग हमपर चढ आये हैं। यदि आप हमारी रक्षा न करैंगे तो हम विना बात **मारे जायंगे।**"

इनकी गिडगिडाहट सुनकर करुणानिधान श्रीजी को करुणा आगई। आपने संन्यासियों को अभय देकर वैरागियोंको ललकारा। इनकी ललकार से और इनके सिंह गर्जन से शस्त्रधारी वैरागी ऐसे भागे जैसे बनराज सिंह के गर्जन से भेडोंका झुंड भागता है अथवा जैसे सूर्य नारायण के उदय होते ही बादल बिखर जाते हैं। इस प्रकार वैरागियों को भगाय संन्यासियों की **प्राण रक्षाकर** उन्हें प्राण भिक्षा देने के बाद श्रीजी साहब श्रीरामेश्वर की

यात्रा के लिये आगे बढे । यह रामेश्वर गये, वहां दर्शनों का लाभ लिया, अपने को कृत कृत्य किया और तेरह मास की यात्रा कर बूँदी को लौट आये। इस यात्रा में इन्होंने किस २ तीर्थ का अवलोकन किया, यह कहां २ कब २ गये सो " वंश भास्कर" में कविराज सूर्य मल्लजी ने नहीं लिखा है । वह लिखते कहां से उन्हें मिला ही नहीं है क्योंकि वह स्वयं लिखते हैं कि:—

" यात्रा यह कीनी ताको प्रतिदिन अध्व क्रम,
लिखित न जान्यों यातै वरन्यों समास लाइ । "

श्रीजी साहब के रामेश्वर की यात्रा से लौटने के अनंतर इन्हीं की सम्मति से महाराव राजा **विष्णुसिंहजी ने** संवत् १८४२ की मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को करोली पधार कर अपने तेरह वर्ष के वय में करौली नरेश माणिक्य-पालजी की कन्या अमृत कुँवरिजी से अपना **दूसरा विवाह किया** और संवत् १८४६ की आश्विन शुक्ला ९ बुधवार को श्रीजी साहब ने **जयपुर नरेश** महाराज प्रताप सिंहजी को अपने भाई दीप सिंहजी की पुत्री विचित्र कुँवरिजी **विवाह दी** । इससे पूर्व श्रीजी साहब की सब रानि-यों का स्वर्गवास होचुका था इसलिये इन्होंने भाई दीप सिंहजी के ही हाथ से प्रताप सिंहजी को कन्या दान दिलवाया । बरात के सत्कार में, प्रजा के सम्मान में उस समय ज्योंनार ऐसी भारी हुई कि गढके फाटक से लेकर नगर के दक्षिण फाटक तक लोगों की भीड से नगर खचा खच भरगया । कविराजा सूर्यमल्लजी लिखते हैं कि घी, खांड, और चांवल का सारे बाजार भर में **कीच मचगया** । इस विवाह के बहुत ही थोडे दिन बाद जयपुर नरेश का अलवर राज्य से घोर संग्राम हुआ । इसमें श्रीजी साहब ने बूँदी राज्य की ओर से जयपुर की सहायता के लिये विनय सिंहजी को भेजा और वह इसी युद्धमें काम आये ।

इसके बाद दो वर्ष तक बूँदीमें क्या हुआ सो लिखने योग्य नहीं है । साधा-रण घटनाओं का उल्लेख करके ग्रंथका विस्तार करना मुझे इष्ट नहीं है परंतु इस चरित्र की घटनाओं का भारतवर्ष की विशेष घटनाओं से मिलान कराने के

लिये यहां एक बात लिखना आवश्यक है । वह यही कि संवत् १८४८ में दक्षिण में **टीपू सुलतान** से अंगरेजों का युद्ध हुआ था । एक ही मुठभेड में टीपू भाग गया और उसका पिता, मैसूर का मंत्री हैदर अली मैसूर का आप राजा वन वैठा । मुझे केवल समय का मिलान कराने के लिये संकेत मात्र करने की आवश्यकता थी सो करदिया । मैसूर राज्य के तिहास रें न तो इस चरित्र का कुछ संबंध है और न बूँदी राज्य से । इसके सिवाय यह संकेत भी केवल" वंश भास्कर"के आधार पर किया गया है । उन्होंने लिखाहै कि:—

"याही १८४८ उक्त संवत में दक्षिण प्रदेश इत,
टीपू सुलतान अंगरेजन के त्रास डारि,
युद्ध पहले ही में भज्यो शठ कहाइ जित
हैदरअली जो महिसूर मंत्री हुतो,
हो जनक टीपू को सु स्वामी को बिगारि हित,
आप: वरजोर महिसूर को वन्यो अधिप,
चाल्यो मन माग त्यों गिनै न उचितानुचित,
किंवदंती जानै क्रिस्तान पकरे कहत
छः अयुत ६०००० प्रान तिन में चतुर्थ १५००० छोरि,
क्रूर खिल पैंतालीस सहस ४५००० करे कतल,
वैरी सम भास्यो जो दया को अघ सिंधु बोरि,
ताके सुत टीपू भो कहायो सुलतान तिम,
जो श्रीरंग पट्टन में राज धानी निज जोरि,
सो सु शक उक्त १८४८ वहकायो फरासीसन को,
शत्रु कंपनी को सिटयो मृध तैं तुरंग मौरि ।"

मैने उक्त पद्य इसी लिये लिख दिया है कि इतिहास जानने वाले सूर्य-मल्लजी के कथन का भारतवर्ष के इतिहास से मिलान करलें । इन्होंने पैंतालीस हजार सेना कतल होने की जो घटना लिखी है वह विचारणीय है । यदि यह सत्य हो तो वडी भयानक है । कुछ भी हो परंतु जब इस बात का इस

चरित्र से कुछ भी संबंध नहीं है और जब मैंने यह बात इस जगह केवल प्रसंगोपात्त लिखी है तब मुझे इस विषय की इस समय खोज करने की भी आवश्यकता नहीं है। और न मैं इस बात की खोज करके, इस विषय में इस चरित्र के पृष्ठ रंगकर अपनी लेखनी को विषयान्तर में लेजाना चाहता हूँ।

आगामी अध्याय से पाठकों को विदित होगा कि किस तरह बूँदी में **दादानाती का वैमनस्य** हुआ, किस तरह इस मन मुटाव का सूत्रपात हुआ और क्योंकर इसका अंत हुआ।

अध्याय ८



झाला का चक्र।

दादानाती का मनमुटाव।

उम्मेदसिंहजी जैसे अनुभवी राजर्षि की आज्ञा से धाभाई सुखरामजी जैसे अनुभवी कामदार के निरीक्षण में चाहे महाराव राजा **विष्णुसिंहजी** की शिक्षा दीक्षा अच्छी हुई थी। उन्हें उस समय के उपयोगी सब ही राजोचित काम सिखाये गये थे। वह घोडे की सवारी में बडे चतुर थे, वह शस्त्र विद्या में बहुत निपुण होगये थे, वह शिकार खेलने में बडे नामी थे, वह शास्त्र से भी खूब परिचित थे और वह राजकीय काम काज भी अच्छी तरह समझलेते थे परंतु जवानी का जोर था, माता की गोदी में दूध पीते २ ही राज्य मिलगया था राजर्षि उम्मेदसिंहजी तीर्थ यात्रा में अपना अधिक समय विताने के कारण उनपर विशेष दबाव नहीं डाल सकते थे और धाभाई जी बूढे और अनुभवी होने पर भी नौकर थे। बस इस लिये समझ लेना चाहिये कि विष्णुसिंहजी उतने ही **स्वतंत्र** थे जितना मृगराज सिंह स्वतंत्र होता है। उनके कामों में किसी की रोकटोक न थी। ऐसी

दशा में किसी राजा को बनाना बिगाडना उन्हीं लोगों के हाथ रहता है जो आठ पहर उसके पास आते जाते हैं । किसी को हजार अच्छी शिक्षा मिली-हो परंतु पास के रहने वाले यदि राजा को उलटे रस्ते चलाना चाहैं तो उस **शिक्षा का कुछ असर** नहीं होता । सच पूछो तो विद्या गुरुओं की अपेक्षा ये ही लोग राजा के हजार गुरुओं के एक गुरु हैं, ये हीं **पूरे गुरु घंटाल** है । बस इसी तरह का एक गुरु विष्णुसिंहजी को भी मिलगया । उसने **इनको बिगाड कर** किसी तरह के दुराचार में प्रवृत्त न किया, किसी कुसंग में न डाला परंतु एक ऐसा काम करदिया जो **इससे भी बढकर** कहला सकता है । उसने **श्रीजी साहब** जैसे प्रतापी, जगद्वंद्य महात्मा के साथ, पिता के पिता के साथ, बूँदी के उद्धारक के साथ और अपने सच्चे प्रति पालक के साथ **विष्णुसिंहजी का मन मुटाव** करादिया । जिन श्रीजी साहब ने विष्णुसिंहजी को पाल पोस कर बडा किया था उन्हींके साथ विरोध कर—ने की बुनियाद डाली । एक दिन महाराव राजा विष्णुसिंहजी को नाथावत हम्मीरसिंहजी ने श्रीजी साहब की इच्छा के विरुद्ध समझाया कि:—

"आप राजा हैं, स्वतंत्र है । आप जो चाहें कर सकते हैं । आपके किसी काम के रोकने की किसी में शक्ति नहीं है । आप कोटे के कामदार **जालिमसिंहजी झाला** की कन्या से विवाह कर लीजिये । वह कहने के तो कामदार है परंतु सच पूछो तो **कोटे के राजा** ही हैं। उनसे सितारा और दिल्ली जैसे बडे २ राज्य डरते है और उनसे मेल रखने में अपना कल्याण समझते हैं इसलिये उन्हें **श्वशुर बनाकर** मतलब गांठिये । "

इस बात की जब श्रीजी साहब को खबर हुई तब उन्होंने बहुतेरा समझाया बुझाया, बहुतेरी नीच ऊंच दिखलाई, बहुतेरा कहा कि—"वह शक्तिमान् होने पर भी हमारे छुटभैया का कामदार है । उसकी लडकी से विवाह करने में हमारी शोभा नहीं है क्यों कि विवाह और वैर बराबर वालों ही के साथ अच्छा होता है" परंतु विष्णुसिंहजी ने **अनुभवी दादा** की उचित बात पर बिलकुल ध्यान न दिया । इन्होंने काम वही किया जो उस समय **मंथर**

बनकर नाथावत सरदार ने इन को सिखाया था । राजा दशरथ का घर फोडकर भगवान रामचंद्रजी को बनवास कराने का कारण जैसे दासी मंथरा बनी थी वैसे ही दादा नाती में बिगाड करा देनेका कारण **हम्मीरसिंह-जी बने** । उन्होंने विष्णु सिंहजी के कान पहले ही इतने भरदिये थे जिससे श्रीजी साहब के हितवाक्य भी इन्हें अहित जान पडे । यद्यपि दादा के संकोच से नाती ने उन के उचित उपदेश का टेढा उत्तर न दिया परंतु किया वही जो इनको एक घरफोडन ने सिखाया था । इस तरह इन्हों ने दादा की इच्छा के विरुद्ध कोटे के कामदार, बूँदी के छुट भैया राज्य के दीवान झाला जालिम सिंहजी की कन्या से संवत् १८९० में **विवाह किया** । विवाह नांते में आषाढ शुक्ला १० को हुआ । इन झाली रानीजी का नाम अजब कुंवरिजी था । यद्यपि जालिम सिंहजी ने दहेज में खूब मालताल दिया, हाथी, घोडे, शस्त्र, वस्त्र, आभूषण आदि खूब सामान दिया और बूँदी तक दामाद को पहुंचाने आये परंतु चुपचाप **अपने आदमियों** को राज काज में **घुसेड दिया** । यह बात इतिहास प्रसिद्ध है कि जालिमसिंहजी बडे जोरावर थे बडे राजनीतिनिपुण थे, अंगुली पकडते पहुंचा पंकडने वाले थे और बडा ही दबदबा रखते थे । इस कारण भी उनका बूँदी से संबंध होने में श्रीजी साहब अपनी प्राणप्रिया: बूँदी का कल्याण नहीं समझते थे परंतु उनके मन का विचार मन ही में रहगया और पौत्र ने पितामह की इच्छा के विरुद्ध कुचक्र में पडकर दुष्टों के बहकाने से विवाह कर लिया, विवाह क्या करलिया एक आपदा मोल ले ली । इसका परिणाम तो पाठकों को आगे चलकर विदित होगा ही परंतु इस मनोवेदना के समय श्रीजी साहब के लिये एक बडे आनन्द की बात यह हुई कि महाराव राजा विष्णुसिंहजी की पहली महारानी, बीकानेर नरेश की पुत्री राठोडजी के गर्भ से इसी वर्ष महाराज कुमार इन्द्रसिंहजी का जन्म हुआ । श्रीजी साहब इस उमर तक सब ही तरह के सुख दुःख देख चुके थे परंतु **प्रपौत्रका मुख देखना** बडे भारी पुण्य का फल है । प्रपौत्र होने पर हिन्दुओं में बडा उत्सव होताहै । इस उत्सव पर परदादा **सोने की सीढी** पर चढता है । बस श्रीजी साहब

के पुण्य से—प्रताप से उनकी भगवान ने यह भी इच्छा पूर्ण की। ऐसा शुभ अवसर जब साधारण लोगों को भी हजारों में, लाखों में एक दो को मिलता है तब राजाओं में कहां? परंतु श्रीजी साहब वास्तव में पुण्यात्मा थे और तपस्वी थे, जो उन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस तरह एक हर्ष और एक दुःख को तराजू पर तौलने पर दोनों को बराबर पाकर श्रीजी साहब पौत्र से उदासीन होगये। इसी अवसर में अर्थात् संवत् १८९२ में उन्होंने **श्रीजगदीशकी** दूसरी बार यात्रा की। यह **चारों धामों की यात्रा तो** पहले ही कर चुके थे। यह पहले श्रीजगदीश के दर्शन कर आये थे, द्वारका परस आये थे, बदरीनारायण हो आये थे और रामेश्वर भी दरस आये थे परंतु प्रथम यात्रा में जो तीर्थ रहगये थे उन्हें आप ने इस बार आते और जाते परस डाला। यह यात्रा से निवृत्त होकर जब काशी आये तब पौत्र ने दो कर्मचारियों को भेजकर उनसे कहलाया:—

" अब आप **बूँदी न पधारिये**। आप काशी ही में निवास कीजिये। आपके खर्च के लिये पांच सो रुपया नित्य वहां बैठे ही पहुंच जाया करैगा"

पौत्र का ऐसा संदेशा सुनकर पितामह को **कैसा दुःख हुआ** होगा सो घट घट व्यापी नारायण जानता है। जिस वृक्ष को आंधी से, पाले से, मेह से, धूप से और लू से बचाकर फल फूल पैदा किये तथा पैदाकरके जिनका स्वाद आप चखने के बदले पुत्र पौत्र को चखाया, उसी के दर्शन करने से रोकना कितना दुःखदायी होसकता है परंतु इन्हें बूँदी आने से किसी **शत्रुने नहीं टोका** था। यदि कोई वैरी इनका अवरोध करता तो यह तुरंत उसकी **गर्दन पकडकर** चार चपत जमादेते। जब उन्हें बूँदी हाथी के पेट में से निकालने में देर न लगी तब अपनी रक्षित, बूँदी को अब दुशमन से छीनने में इन्हें विलंब ही क्या था परंतु दादा से रुष्ट होजाने पर भी विष्णुसिंह जी इनके **आत्मज के आत्मज थे**। बाप बेटे की, स्त्री पुरुष की, दादा नाती की लडाई शत्रुता नहीं है। यह एक प्रकार का **प्रेम कलह** है। प्रेमकलह में समय २ पर आनंद भी होता है और दुःख भी होता

है। प्रेम कलह के आनंद में दुःख और दुःख में आनंद है। जो सिंह अपने पंजोंसे और अपनी डाढों से शिकार का विदारण करता है वहां उन दांतों, उन पंजों से अपने बच्चों का प्यार करता है। उन्हें गुर्राने पर पुचकारताहै और मुंह से पकडने पर भी फाडता चीरता नहीं है। जिन लोगों को पति पत्नी में प्रेम कलह देखने का और अनुभव करने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि पत्नी के रूठ जाने पर उसे मनाने में और उसका मान देखने में दुःख के भीतर कैसा आनंद होता है। दादा नाती के मनमुटाव में यद्यपि दम्पती का सा प्रेमकलह नहीं होसकता है परंतु दादा का और पिता का, जो पुत्र पर स्नेह होता है वह अपने ढंगका आप ही है और इसलिये इन दोनों का प्रेम कलह भी अपना जोडा नहीं रखता था। बस इसी का विचार करके श्रीजी साहब ने पौत्र के **होनहार संकटों की चिंता** करके उन्हें आपत्तियों में से बचाने की मंत्रणा करने के लिये कुछ काल तक **काशी में निवास** किया। जो लोग यात्रा में इनके साथ थे उनसे उन्होंने बहुत आग्रह के साथ कहा:—

"जब राजा की ऐसी आज्ञा है तब मैं यहीं रहूँगा किन्तु तुम लोगों को घर छोडे बहुत समय होगया है इसलिये तुम बूँदी जाकर अपने २ बालबच्चों से मिलो। मेरे लिये **जैसा घर है वैसा ही बन** है। मैं जब संसार छोड चुका और राज्य छोड चुका तब मुझे क्या है?"

श्रीजी की इस आज्ञा से कईएक घर गये किन्तु आप के गुरु ने कहा कि भिक्षा मांग कर भी हम आपका साथ न छोडेंगे। खैर आपसे **लखनऊ के नव्वाब** ने कहलाया कि मेरे दादा का आपके पितासे बहुत स्नेह है इसलिये मेरे ही यहां रहकर मेरा घर पवित्र कीजिये। परंतु श्रीजी साहब वहां भी न गये

जिस समय श्रीजी साहब इसतरह काशी में निवास करते थे और जब से आपने बूँदी से बिदा होकर जगदीश यात्रा के लिये प्रयाण किया **बूँदी की क्या दशा हुई** सो भी, यहां लिखने की आवश्यकता है। यहां **विष्णुसिंहजी** को बहकानेवाले नाथावत हम्मीरसिंहजी मरगये। उनके भाई मनोहर-

सिंहजी और भतीजे कृष्णसिंहजी झाला **जालिमसिंहजी से मिलकर** राज्य का कामकाज करने लगे । इन्होंने श्रीजी साहब पर न मालूम कबका बैर निकालकर खूब मनके फफोले फोडे । जालिमसिंहजी ने अपने दामादको बहका-कर अनुभवी स्वामिभक्त **धाभाई सुखरामजी को** काम से अलग करवा दिया और उनपर एक लाख रुपया दंड करवाया। राजधानी और राज्यभर के प्रबंध में सर्वत्र **अपने आदमी** भर दिये । उदास होकर विष्णुसिंहजी के **चाचा सरदारसिंहजी** अपने पुत्र ईश्वरीसिंहजी समेत **जयपुर** चलेगये । न्हों ६०० देशी सिपाहियों को नौकरी से छुडाकर खारी नदी के किनारे बसने वाले राठोड नौकर रक्खे । इस तरह चाहे **जालिमसिंहजी का चक्र** भीतर ही भीतर राज्य भरमें घुस गया परंतु अभीतक बूँदी राजधानी का किला तारागढ बचा हुआ था। उसे भी हथियाने के लिये नाथावत सरदार ने विष्णुसिंहजीको किले लेजाने का विचार किया । जब नरेश ने किलेदार सरवरसिंहजी से कह-लाया तब उन्होंने स्पष्ट कहदिया कि:—

"किला आपका है । आपकी जब इच्छा हो तब प्रसन्नता से पधारिये । परंतु मैं झाला के पक्षवालों को किले में न घुसने दूंगा । यही मुझसे श्रीजी साहब की आज्ञा है ।"

इस उत्तर को पाकर लोगों को अवसर मिला । उन्होंने विष्णुसिंहजी को बहकाया "कि जिसकी आज्ञा शिर पर चढाई जातीहै वही राजा है । आपकी जब आज्ञा न मानी गई तब आप नरेश किसके आपकी आज्ञा में शक्ति बिलकुल नहीं है ।" बस **इसी बहकावट से** विष्णुसिंहजी ने उम्मेदसिंहजी को **काशी में रोका** और काशी ही में रहकर बूँदी न पधारने के लिये कहलाया था ।

इस तरह श्रीजी साहब काशीजी में कबतक रहे सो निश्चय नहीं परंतु उनके पीछे से बूँदी की बडी दुर्दशा हुई । राज्य भरमें जालिम सिंहजी का चक्र चल गया, यदि बाहरी चक्र होता तो विष्णुसिंहजी अवश्य चेत जाते और यदि किसी शत्रु ने चढाई की होती तो वह अवश्य भिड पडते परंतु इन्हींके **विश्वास पात्र सेवक**

जालिमसिंहजी में मिलगये थे । वह शत्रु नहीं किन्तु श्वशुर थे अपनी गृहिणी के पिता थे, इसलिये विष्णुसिंहजी जानते थे कि जब हिन्दुओं में **लड़की-दामाद का धन** हराम समझा जाता है तब जालिमसिंहजी मुझसे कपट क्या करेंगे । वह बुद्धिमान् होने पर भी अभी कम उमर थे इसलिये औरों के प्रपंच-में फंसगये । जालिमसिंहजी के चक्र में फंसना विष्णुसिंहजी के लिये कोई बडी बात न थी क्योंकि उस समय ऐसे वहुत ही कम रजवाडे होंगे जो उनसे न दबते हों । कोटा नरेश उनके हाथ की गुडिया थे। उन्होंने, उनके पुत्र पौत्र ने जिस कौशल से कोटे के कामदार होते हुएभी वहां का राज्य किया, जिस तरह उनके सताने से दुःखित होकर महारावजी दो तीन बार बूँदी आये और जिस तरह उन्हों ने कोटे से झालावाड का राज्य अलग करलिया ये बातें एक अलग ग्रंथ में लिखी जाने योग्य हैं । झालावाड राज्य के संस्थापक **जालिमसिंहजी का चरित्र** भी यदि कोई लिखने का साहस करे तो वहुत रोचक है और बहुत उपदेशप्रद है क्योंकि जालिमसिंहजी एक असाधारण पुरुष थे ।

अध्याय ९

कुचक्र का विनाश ।

दादा नाती में मेल ।

साथवालों के छोड २ कर चले आने से तथा छुट्टी दे देने से यों तो **श्रीजीसाहब** के पास सेना में से फिर भी बहुत से आदमी उनके पास शर्मा शर्मी से काशी में रहे परंतु सेवाधर्म का पालन करके **सच्चे स्वामिभक्त** दो ही आदमी कहलाये । एक विक्रमसिंहजी और दूसरे गुरु कुशलरामजी ! ये दोनों हठ पूर्वक रहे और दोनों ने इस **विपत्ति के समय भी** मालिक का साथ न छोडा । जब कुछ काल तक काशी वास करके श्रीजी ने अपने होनहार कर्त्तव्य का विचार कर लिया और पक्का मनसूबा बाँध लिया तब अपने

सहचरों सहित वहां से चल दिये । अनेक राजाओं के अनेक दूत मार्ग में मिल कर अपने अपने राजाओं का संदेशा कह २ अपने राज्यों में लिवा लेजाने का श्रीजीसाहव से आग्रह करते रहे परंतु आप कहीं न गये । आपने इस समय सीधे बूँदी आनेका संकल्प पक्का कर लिया था इसलिये कूच दर कूच चलते २ सवाई माधवपुर आ पहुंचे । जिस समय श्रीजी साहव की सवारी वहां आई श्रीमान् जयपुर नरेश के भेजे हुए विश्वास पात्र कर्म-चारियों ने आकर आपसे जयपुर नरेश की ओर से निवेदन किया कि:-

"आप पंहले बूँदी न जाइये । प्रथम जयपुर पधारिये । यदि आप न पधारैंगे तो मैं आपको लेने के लिये आऊँगा । यहां पधार कर मेरे घर को पवित्र कीजिये ।"

जिस समय जयपुर से इस तरह आग्रह का खरीता आया उसी समय श्री जी साहव के पास जालिमसिंहजी के मंत्री भी उन के भेजे हुए पहुंचे । उनसे झालाजी ने कहलाया कि:-

" इस में हमारा कुछ अपराध नहीं है । आपके पौत्र अपनी वय के अनुसार आजकल मनमानी कर रहे हैं । जो कोई भली सलाह देता है तो नहीं मानते हैं । सदा भोग विलास में रत रहते हैं । "

सुनकर श्रीजी साहव ने कहा और अपनी इष्ट सिद्धि के लिये ऐसा ही कहना उचित समझा । " नहीं २ इसमें आपका क्या अपराध है । " इसके साथ कविराजा सूर्यमल्लजी ने अपनी कविता का एक चरण बडा मजेदार लिखा है । उसके दो अर्थ हैं । उन्होंने लिखा है:-

"जालिम लों जै हरि कहायो नर्म गालियुत"

इसका एक अर्थ यह है कि-"जालिमसिंहजी ने दिल्लगी की गालीके साथ (श्रीजी साहब) से जै हरि (जय श्रीकृष्ण) कहलाया ।"-हजार श्रीजी साहब

की इस विवाहमें इच्छा न होने पर भी जालिमसिंह विष्णुसिंहजी के श्वसुर बन चुके थे तब समधीकी दिल्लगी करना अनुचित न था और हंसकर–कुछ दिल्लगी करके अथवा हंसीकी गाली ही देकर जय श्रीकृष्ण कहलाना भी को, बडी बात नहीं है। परंतु इस चरण:में कवि का एक गंभीरभाव है इसका दूसरा अर्थ उसी भावका बोधक है। कविराजा जी इस चरण में कहते हैं कि–"जालिमसिंहजी भी दिल्लगी की गाली के साथ जयसिंहजी कहला गये।" गाली की दिल्लगी की बात वही है जो पहिले अर्थ में आ चुकी परंतु कवि का प्रयोजन यह है कि जैसे बहनोई बुधसिंह जी का राज्य छीनकर जयसिंहजी ने नाम पाया था वैसे ही दामाद का राज्य लेने का प्रयत्न कर जालिमसिंहजी जयसिंहजी कहला गये अर्थात् उन्होंने भी जयसिंहजी का सा सुलूक किया

कुछ भी हो परंतु जयपुर नरेश का **श्रीजी साहब** को लिवा ले जाने के लिये माधवपुर आने का पक्का विचार जान आप स्वयं दामाद से मिलने के लिये **जयपुर** पधारे। महाराज प्रतापसिंहजी पेशवाई के लिये सामने आकर जयपुर लिवा लेगये। वहां वडे सत्कार से रक्खा और महाराज ने वडी नम्रता के साथ आप से कहा:–

"यदि आपकी इच्छा हो तो मैं जयपुरी सेना आपके साथ करके **बूँदी** का राज्य **आपको दिलवादूँ**। केवल आप की आज्ञा का विलंब है।"

यह सुन कर श्रीजी साहब बोले:–"बात किसी और की होती तो मैं आपसे सहायता लेसकता था परंतु **समझाना नातीको** है। पेट की आंतों को ठीक करना है। आप कुछ संशय न रखिये। मैं अब वहां जाता हूँ। मैं ही समझाऊँगा।"

इस प्रकार का उत्तर देकर जयपुर नरेश से विदा होने बाद आपने बूँदी कहला भेजा कि:–"मैंने काशी का रहना निश्चय कर लिया है। मैं वहां ही रहूगा। अभी केवल श्री रंगनाथजी के दर्शन करने बूँदी आताहूँ। दर्शन करके लौट जाऊंगा।"

जिस समय आपकी सवारी बूँदी राज्य में घुसी यहां के अमात्य और यहां के सरदार आप के दर्शन करने के लिये सामने आये। उनमें विष्णुसिंहजी को बहकाकर झालाजी में मिले रहने और बूँदी का अनिष्ट करने वाले नाथावत कृष्ण सिंहजी भी थे। उनसे श्री जी साहब ने कहाः—

"मैंने सुना है कि तुम विवाह करने वाले हो परन्तु मेरी राय में तुम अभी शादी मत करो। तुम्हारी उमर कम है।"

श्रीजी साहब के इस कथन का मर्म चाहे कृष्णसिंहजी समझे हों वा न समझे हों परन्तु आप का आशय यही था कि—"यदि शादी करोगे तो तुम्हारी स्त्री को विधवा होना पडेगा क्योंकि तुम्हारी उमर कम है अर्थात् तुम शीघ्र मारे जाओगे।"

इतना कहकर समस्त आगत मनुष्यों का अपनी बातों से संतोष कर- अच्छे उपदेश देकर श्रीजी साहबने उनको विदा किया। उन्हें बिदा करके आप कुछ दिन तक केदारेश्वर महादेव के निकट अपने आश्रम में रहे। एक दिन लाग पाकर आप अचानक श्रीरंगनाथजी के दर्शन करनेके लिये महलों में पधारे। वहां जाकर पौत्र से मिले। मिलते ही आपने बिजली की चमक की तरह तुरत ही तलवार निकाल ली। नंगी तलवार हाथ में लेकर वीर राजर्षि के—पराक्रमी क्षत्रिय के वेश में अपने तेज से, अपने प्रताप से पौत्र की आंखों में चकाचौंध डालते हुए सिंह गर्जन स्वर से कडकर पौत्र से कहा और उनके हाथ में अपनी नंगी तलवार देते हुए कहाः—

"बेटा, यह तलवार ले। यदि तू मुझ से संतुष्ट नहीं है तो इसी तल- वार से अभी अपने हाथ से मेरा शिर काट ले। प्यारे नाती के हाथ से मरने में मेरी शोभा है। मैं अब खूब बूढा हो गया। मैंने जो २ संकल्प किये थे और जो २ मेरी कामनायें थीं वे सब भगवान ने पूरी कर दीं। अब मुझे जी कर क्या करना है? इसलिये इसी तलवार से तू मुझे मार डाल। मैं तेरे हाथ से—आत्मज के आत्मज के हाथ से मरकर सीधा स्वर्ग को जाऊँगा किन्तु बेटा हे हाडाकुल तिलक! हे जीवन सर्वस्व! इन कुत्तों के हाथ से मुझे न मरवा।"

एक तेजस्वी महात्मा के, एक प्रतापी वीर के और अपने प्राणदाता दादा के मुख से ऐसे वचन सुनते ही विष्णुसिंहजी लज्जित होकर धरती खोदने लगे । वह इतने शर्मागये कि उनसे एक शब्द भी मुख से निकालते न बना । इतना कह कर श्रीजी साहब तो अपना खड्ग लिये अपने आश्रम को चले गये परंतु विष्णुसिंहजी पर उनके इस कथनका बहुत असर हुआ । अब उन्होंने समझ लिया कि इन दुष्टों ने मुझे धोखा देकर पितामहके पूज्य चरणों का मुझसे भारी पाप करवाया । उन्होंने इस बात पर अपने आप को बहुत धिक्कारा । उन्होंने दादा का अपमान अपने अपमान से भी बहुत बढकर समझा और उन दुष्टों को अपने किये का फल चखाकर इस पाप से छुटकारा पाने के लिये दादा को अपमान से निवृत्त करके इस पापका प्रायश्चित्त करने के लिये "बापका वैर" लेने की वही क्षत्रियों की पुरानी चालका स्मरण किया । चाहे धर्मशास्त्रों में शत्रु पर दया करने की हजार आज्ञा हो परंतु "बाप का वैर" की चाल क्षत्रियों की नस २ में भरी है, वे गयाजी जाकर पितरों के लिये पिंडदान करने से भी बढकर "बाप के वैर" का बदला लेना समझते हैं । इस समय केवल इस तरह का बदला ही न था वरन विष्णुसिंहजी दादा के उन वाक्यों पर खूब ध्यान देकर निश्चय करने से जान गये कि इन दुष्टों को मारे विना मैं अब निष्कंटक राज्य न कर सकूंगा क्योंकि ये लोग राज्य प्रबंधकी नस २ में घुस गये हैं इस लिये उन्होंने पूज्य पितामह के पवित्र चरणों का बल पाय कृष्णसिंहजी का शिर राज प्रासाद के रंगविलास बाग में काटलिया और इनके चाचा मनोहरसिंहजी ज्यों ही भाग कर जाने लगे उन्हें सीढियों में जाकर भाले से पिरो लिया । इस तरह श्रीजी साहब ने पहिले से कृष्णसिंहजी को विवाह करने का निषेध किया था वह बात सत्य हुई ।

बूंदी के इतिहास से लेकर इस घटना का यहां उल्लेख करने बाद टाड साहब की किताब का कुछ अंश उद्धृत करने में अवश्य ही पुनरुक्ति होगी परंतु साहब के वाक्य रोचक हैं । दोनों ओर की बात लिख देने से पाठकगण दोनों के मतों की तुलना कर सकेंगे इस लिये इस विषय में टाड

साहब ने जो कुछ लिखा है उसका भावार्थ मैं नीचे लिख देना आवश्यक समझता हूँ । टाड साहब लिखते हैं कि—

"राजपूती स्वभाव की अस्थिरता अथवा उनके राज्य शासन की अपूर्णता का यह एक और उदाहरण है कि बुढापे की उमर में जब **श्रीजी** ने इन्द्रिय दमन के साथ,संयम के साथ जीवन बिता कर संसार का त्याग करने में दृढता प्राप्त कर ली तब यह पूजनीय वीर **अपने ही पौत्र** के अविश्वास का पात्र बना । लुच्चे लफंगे लोगों ने जिन्हें राजसिंहासन के निकट एक **बुद्धि की** साक्षात् **मूर्ति** के उपस्थित रहनेसे भय था श्रीजी के बूँदी लौटने का निषेध कराकर उनका अपमान करने की हिम्मत दिखलाई और उनसे कहलाया कि "बनारस में पडे रहो ओर वहीं रहकर मिठाई खाओ और बैठे २ राम राम जपो ।" वहां से लौटने पर जिस हरकारे ने उन्हें नये शहर में जाकर आज्ञा सुनाई उसने आज्ञा में कहा कि आपकी हड्डियां आपके पुरखाओं के अस्थिमें संयुक्त न की जायगीं * किन्तु उनका उस समय इतना **आदर** था और अनेक यात्राओं को करके वह इतने **पवित्र समझेजाते** थे कि ज्यों हीं इसबात की आस पास के राजा महाराजाओं को खबर हुई त्यों ही वे सब के सब अपने यहां श्रीजी को लिवा लेजाने के लिये एक दूसरे से **बदाबदी करने लगे** ×× श्रीजी की जवानी के दिनों की **वीरता ने** और उनके बुढापे की प्रशंसनीय **धर्मनिष्ठाने** जयपुर नरेश प्रतापसिंह जी के मन पर उनकी जाति वालों के मन की अपेक्षा एक जुदे ही प्रकार का असर डाला जैसे **पुत्र वा नौकर** पत्र लिखता है वैसे ही उन्होंने श्रीजी को लिखा कि "मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ । और आपको जयपुर लाने की मेरी इच्छा है।" कछवाहों के पुष्प की ऐसी शिष्टता देखकर श्रीजी ने उनके आगमन का सत्कार पाने से तो निषेध किया किन्तु उनका निमंत्रण स्वीकार किया । प्रतापसिंहजी ने श्रीजी की बडे आदर के साथ पेशवाई की और बहादुर नेक महाराज ने इस घटना से राज्य च्युत श्रीजी का इतना अपमान समझा कि उन्होंने इनसे कहा:—

---

* राजाओं के श्मशान में न जलाये जाओगे।

×× एकने कहा मैं लेजाऊंगा, दूसरे ने कहा मैं।

" यदि आपको दुनियादारी के कामों की कुछ भी इच्छा हो तो मैं स्वयं आमेर की समस्त सेना के साथ चलकर बूँदी और कोटे के राज सिंहासन पर आपको बिठला दूंगा । "

" इस पर श्रीजी का उत्तर बहुत ही उदारता से निकला । उन्होंने कहा कि-" वे दोनों ही मेरे हैं। एक मेरा भतीजा है और दूसरा मेरा नाती । "-इस अवसर पर कोटेवाले जालिमसिंहजी बिचऐया बनकर बूँदी आये । उन्होंने विष्णुसिंहजी के विचारों का हलकापन दिखलाते हुए आपस में मेल करादेने की पूरी शक्ति के साथ लालाजी पंडित को वृद्ध नरेश के बूँदी लिवालाने के लिये भेजा । दोनों की भेंटें वैसी ही हुईं जैसी होने की आशा थी । इस तरह चालाक धोखेबाजों द्वारा बहंकाये हुए युवा राजा की उस पूजनीय नरेश से, जिसने संतान स्नेह के सिवाय समस्त बुरे स्वभावों का दमन करलिया था, मुलाकात हुई । जिस समय बहादुर यात्री ने अपनी तलवार देकर यह कहा कि-"बेटे, इस तलवार को ले और यदि तैंने समझ लिया हो कि मैंने तेरे साथ कोई बुरा सलूक किया है तो तूही इससे मेरी गर्दन काटले किन्तु इन कमीनों से मेरी बदनामी न करवा"- सब की आंखों में से आंसू निकल पडे । युवा नरेश दहाडे मार २ कर रोने लगे । मानो रोकर क्षमा मांगते हों । इस तरह युवा राजा के पास के चापलूसों की हार देखकर पंडित को और जालिमसिंहजी को संतोष हुआ । किन्तु उम्मेदसिंहजी ने राजमहल में जानेका निषेध किया । "

छोटी मोटी बातों को तो जाने दीजिये, उनमें यदि एक के लेख का दूसरे से अंतर हो तो कुछ हानि नहीं परंतु बूँदी के इतिहास से टाड साहब के लेख में एक बडी भारी बातका अंतर है । यह अंतर इतना बडा है जितना दिन रातका अंतर होता है । टाड साहब के लेख से विदित होता है कि दादा नाती में मेल ज़ालिमसिंहजी ने कराया । वह दोंनो का मेल कराने के लिये स्वयं बूँदी आये और उन्हीकें सामनें सारी कार्यवाही हुई किन्तु जब बूँदी के इतिहास के मत से जालिमसिंहजी ही इस झगडे की

जड़ थे, विष्णुसिंहजी को बहकाकर बूँदी में जालिमसिंहजी का दबदबा बढाने वाले लोग उनमें मिले हुए थे, जब बूँदी के महलों में अबतक उस समय झालाओं के रहने के चिह्न **विद्यमान** हैं, जब उस समय की घटना के देखने वाले आज से पचास वर्ष पूर्व थे और उनकी कही हुई बातें सुनने वाले आज दिन हैं तब टाड साहब के लेख पर कौन बालक विश्वास करसकता है । इसमें उनका दोष नहीं है क्योंकि जहांतक उनसे बन सका उन्होंने निश्चय करके लिखा है किन्तु बूँदी में एक बात और भी प्रसिद्ध है । जिससे सिद्ध होता है कि इसकी जड झाला ही थे । लोग कहते हैं कि झालाओं ने विष्णुसिंहजी को यहां तक दबालिया था कि वे लोग बूँदी के राजप्रासाद की वढिया **चित्रशाला में रोटियां** करके उस महल को बिगाडा करते थे । एक बार यात्रा में से लौटते समय उम्मेदसिंहजी ने यह खबर मार्ग में सुनी । वह कूंच दर कूंच चलकर चुपचाप केदारेश्वर के अपने आश्रम में आ विराजे । वहां से ठीक दुपहर के समय जो झालाओं के रोटी करने का था अपने दो-सो तीन सो साथियों को लेकर दबे पांव श्रीजी साहब महल में चले आये और **डंडे मारकर** झालाजी के सब सिपाहियों को निकाल पौत्र का नगर में और महल में अधिकार कर दिया । यदि यह बात असत्य भी हो क्योंकि जब इतिहास में इसका लेख नहीं है तब इसके विषय में संदेह है तो भी उस समय **झालाओं का बूंदी में जो चक्र** चला था उसके अनेक चिह्न अभीतक विद्यमान हैं । इससे निश्चय होता है कि जालिमसिंहजी उन लोगों से मिले हुए थे, इस विषय में टाड साहब की भूल है और बूँदी का इतिहास सच्चा है । यदि टाड साहब के लेखानुसार दादा नाती के मेल के समय जालिम सिंहजी उपस्थित भी थे और यदि उन्होंने दोनों के मेल कराने का **प्रयत्न भी किया** हो तो केवल राजप्रपंच के विचार से तथा राजनीति के अनुरोध से अपना **दोष छिपाने के लिये** क्योंकि वह राजनीति के पेचों में खूब समझते थे । उन्होंने पेच ही पेच में कोटे को दबाकर और आस पास के रजवाडों को दबाकर झालावाड राज्यस्थापन करने की नींव डाली और ऐसी

दशा में यदि उन्होंने अपनी लडकी देकर दामाद विष्णुसिंहजी को भी ऐसे ही मतलब से अपने पेच में लिया तो आश्चर्य क्या है ? कुछ भी हो बूँदी के इतिहास और टाड साहब के लेख का सारांश मैंने इकट्ठा कर दिया । दोनों में से सत्यासत्य का निर्णय पाठक स्वयं करलें ।

अध्याय १०

होलकर से मुठ भेड ।

बूँदी के इतिहास से और इस चरित्र से कुछ संबंध न होने पर भी कविराजा सूर्यमल्लजी ने "वंशभास्कर" में **लखनऊ की नव्वाबी** के विषय में दो बातें ऐसी लिखी हैं जो कदाचित् अभीतक उस ओर के इतिहास जानने वालों के सुनने में न आई होंगी । प्रसंग पाकर मैं उन बातों को यहां प्रकाश कर देना आवश्यक समझता हूँ । उनके लिखने से मालूम होता है कि लखनऊ के नव्वाब आसिफुद्दौला के मरने पर उनका पोष्यपुत्र वजीर अली-जब सिंहासन पर बैठा तो बडी अनीति करने लगा । उसे नगर में जितनी **सुंदरी रमणियां** मिलीं उन्हें पकडा २ कर उनके साथ बलात्कार किया और उनका **सतीत्व नष्ट किया** । उसकी दुष्टता इतने ही पर समाप्त न हुई । उसने अपने **प्रतिपालक पिता आसिफुद्दौला की बेगम** पर भी हाथ चलाया । उसके साथ भी अपना काला मुंह किया । उसका यह अमानुषी कर्म, उसकी ऐसी नीचता और उसकी परम पामरता **अंगरेजों से सहन** न हो सकी इसलिये उन्होंने वजीर अली को सिंहासन से उतार सआदत अली को नव्वाब बना दिया । अब वजीर अली लखनऊ में ठहर न सका । उसने अपने पुत्र कलत्र समेत वहां से भागकर जयपुर में प्रताप सिंहजी की शरण ली । इन्होंने उसे रक्खा भी परंतु अंगरेजों ने धोखे से **पीतलकी अशर्फियां** ❀ जयपुर नरेश को देकर वजीरअली उनसे लेलिया । सूर्यमल्लजी के लेखसे विदित होता है कि यह घटना संवत् १८९३

❀ वंशभास्कर में ऐसा ही लिखा है ।

की है किन्तु उन्होंने ये बातें किसी ग्रंथ के आधार पर किसी पक्के प्रमाण से नहीं लिखी हैं । उन्होंने इनका केवल जन श्रुति के आधार पर उल्लेख किया है इसलिये नहीं कहा जासकता है कि ये घटनायें **कहां तक सत्य हैं।**

। महाराव राजा विष्णुसिंहजी के पहली महारानी राठोडजी से जिन महाराज कुमार इन्द्रसिंहजी का जन्म हुआ था उनका बहुत ही कम उमर में देहान्त होगया । उन्ही की दूसरी रानी जादोनजी से संवत् १८९१ में एक महाराज कुमार का फिर जन्म हुआ परंतु इनका नाम से पहले ही नाश होगया । इसके अनंतर संवत् १८९७ की आषाढ शुक्ला ६ सोमबार को इन्होंने अपना **चौथा विवाह** शिवपुर नरेश किशोरसिंहजी की कन्या और राधिकादासजी की बहन अजब कुंवरिजी के साथ किया ।

जिन दिनों की ये घटनायें हैं, जिन दिनों झालाओंके चक्र से छूटकर महाराव राजा विष्णुसिंहजी निष्कंटक राज्य कर रहे थे, जिन दिनों अति वृद्धता के कारण **श्रीजी साहब** अपनी यात्रा प्रियता से मुँह मोडकर अपने आश्रम में बैठे २ शास्त्र चिन्तन में—गोविन्द भजन में **शेष दिन बिता रहे थे** उन दिनों भारत वर्ष में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ होरही थी । जालिमसिंहजी अपने बुद्धिबल से—अपने दबदबे से बूँदीपर श्रीजी साहब के होते हुए अपना काबू न चलता देख **मेवाड पर हाथ** फेंकने लगे थे उन्होंने एक युद्धमें मेवाड को हराकर **जहाजपुर ले लिया था** । लाहोर में महाराज **रणजीतसिंह का** दौर दौरा था । उन्होंने पंजाबी राजाओं को दबा लिया था, जंबू को दबालिया था और काबुल को जीत कर उसकी पसलियां ढीली कर डाली थीं उस समय अवश्य ही आपुस की खैंचातान से राजपूताना के राजपूत नरेशों की प्रतिभा मंद होगई थी किन्तु **यशवन्त राव** होलकर अपना राज्य बढाने में लगे थे । अंगरेजों के वीर **जनरल वेलजली** ने यशवंत राव से न डर पेशवाओंसे बुन्देलखंड ले लिया था । उन्होंने लसवारी के, डीघ के और दिल्ली के जंग में सेंधिया को परास्त कर संबत् १८९९ में दिल्ली और आगरा छीन लिया था

और भोंसला से ओडीसा ले लिया था । उन्होंने अपनी केवल पांच हजार सेना से सेंधिया और भोंसला की तीस हजार सेना का घमंड चकनाचूर कर डाला था । उसी वर्ष में अंगरेजों ने **दिल्ली के नाम मात्र के अंधे बादशाह** शाहआलम को एक लाख रुपया पेन्शन देकर दिल्ली से पूर्व के समुद्र किनारे तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था । संवत् १८६०-६१ में जब एक ही वर्ष में श्रीजी साहब का, जयपुर के प्रतापसिंहजी का और जोधपुर के भीमसिंहजी का परलोक हुआ अंगरेजों को केवल होलकर और रणजीतसिंहजी को परास्त करना शेष रहगया । सामयिक घटनाओंकर इसतरह दिग्दर्शन कराकर उस समय की दशा का ठीक २ बोध करा देने के सिवाय इन बातों का यहां विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है । हां एक ही बात यहां उल्लेख करने योग्य है । वह यही कि जिस **यशवन्त राव होलकर** के मारे अंगरेज लोग भी घबड़ाते थे और जिस होलकर के लिये लोग अबतक कहते हैं कि:—

"यशवन्त राव होलकर के मरते अंगरेजों की बन आई । " उसीसे एक बार **श्रीजी साहब की मुठभेड** होगई । बात यह हुई कि जिस समय यशवन्तरावजी होलकर की सेना जयपुर को जीतती हुई स्वदेशको लौटने के लिये **बूँदी पहुँची** महाराव राजा विष्णुसिंहजी ने **संदेह से नगर के फाटक** बंद करा दिये और इसी अवसरमें कोटपर से किसी मूर्ख ने यशवन्त रावजी की सेनापर **गोली दाग दी** । इस कारण उन्होंने समझ लिया कि बूँदीवाले हमसे लड़ना चाहते हैं । वह उस समय श्रीजी साहब के दर्शन करने के लिये केदारेश्वर उनके आश्रम को जारहे थे उन्होंने तुरंत आज्ञा देदी कि **"बूँदी को लूटलो"** और उनकी आज्ञा से नगर के बाहर पुरानी बूँदी की लूट खसोट करना भी आरंभ कर दिया परंतु जब इस बात की खबर श्रीजी साहब के कानों तक पहुंची तब वह तुरंत **होलकर के पास गये** । दोनों के मिलने भेटने के अनंतर श्री जी साहब की जब यह उचित अभ्यर्थना कर चुके तब यशवन्त रावजी ने श्रीजी साहब के आगे विष्णुसिंहजी की शिकायत की । उत्तर में श्रीजी साहब बोले:—

"मल्हार रावजी के वंश में **आप कुपूत हुए** क्योंकि आप बूँदी पर हमला करने लगे हो और मेरे वंश में **विष्णुसिंह कुपूत** हुआ जिसने आप पर संदेह करके फाटक बंद कर लिये । परंतु जाने रहिये । यदि आप बूँदी को जीत भी लेंगे तो यह जीत आप को **बडी मंहगी** पडैगी क्योंकि इस समय बूँदी में बहादुर राजपूतोंका **अच्छा जम घटा** है । इसके सिवाय इस राज्य पर आपलोगों ने जो उपकार किये हैं वे सब **मिट्टी में मिल जांयगे** ।"

इस बात को सुनकर यशवन्त रावजी लज्जित हुए और यहां से अपने डेरेडंडे उठाकर चल दिये । इस घटना से पाठकों को माल्हूम होगया होगा कि श्रीजी साहब अति वृद्ध होजाने पर भी **बडे साहसी** थे । जिन यशवन्तरावजी के आतंक से देशभर कांपता था उन्ही से वह कुपूत कहने में न चूके और अपनी प्रतिभा का और अपने तेज का प्रभाव डालकर उन्हें कायल करदिया यदि कोई दूसरा होता तो अवश्य ही यशवन्तरावजी विष्णुसिंहजी के वर्ताव को इस बातका साथी समझकर और भी **रुष्ट होते** परंतु वह इस समय श्रीजी साहबके आतंक में आगये । उस समय यशवन्त रावजी का कैसा दबदबा था सो कविराजा सूर्यमल्लजी के नीचे लिखे पद्यसे माल्हूम होगा । वह लिखते हैं कि:—

"प्राची के समुद्र तैं लगाइ सीमा दिल्ली पुर,
कोश शत सतकलों कंपनी यों राज्य करि,
हाकिम पुरातन सबै इहां के गंजे हंत,
एक जशवन्त राव मान्यो बरजोर अरि,
जट सिख दूजो रणजीत सो इतोन जब,
बढन लग्यो ही जो मही तिय नवीन वरि,
जित्वर अजेय अब लंधन सबन जान्यो,
जे भये अधीन दीन अंतर विरोध जरि ।"

इस पद्यसे अंगरेजों के दौर दौरे का तो अच्छी तरह बोध होता ही है किन्तु यह भी स्पष्ट होता है कि और २ राजा आपस के बैर से जलकर अंग्रेजों के अधीन होगये थे। एक यशवन्तरावजी और दूसरे रणजीतसिंहजी ही उस समय अंग्रेजों के शत्रु थे। उनमें भी उस समय तक रणजीतसिंहजी इतने नहीं बढ़े थे। तब तक केवल यशवंतरावजी का ही आतंक विशेष था॥

अध्याय ११

श्रीजी साहबका स्वर्गवास।

टाडसाहब की भूल।

बूँदी के इतिहास से **श्रीजी साहबके स्वर्गवास** होने का वृत्तान्त लिखने से पूर्व **टाडसाहबने** जो इस विषय में लिखा है उसका आशय मैं यहां लिखताहूँ। साहब लिखते हैं कि:—

"दादा नाती का मेल होने बाद आठ वर्षतक श्रीजी जीवित रहे। उस समय उन्होंने कह दिया था कि मैं अब जीते जी महलों में न जाऊंगा। परंतु (उनकी बीमारी के समय) उनके नाती ने उनसे प्रार्थना की कि आप अपने पुरखाओं के महल में पधार कर शरीर छोडिये। मनुष्य जाति के स्वाभाविक स्नेह के विवश होकर श्रीजी साहब मरते समय अपने पौत्र की प्रार्थना को टाल न सके। उन्हें सुखपाल में बिठला कर **महल में** लेगये और वहां उसी रात को उनका **देहावसान** हुआ। इस तरह से संवत् १८६० में उम्मेदसिंहजी की अनेक स्थिति में परिवर्तन होनेवाली जीवन-लीला समाप्त होगई। उनके जीवन का सूर्य लडाई झगडे के घने बादलों में उदय हुआ था, उदय होते ही उसने खूब जोरशोर दिखलाया किन्तु उसके मध्याकाश में पहुँचते २ ही उसके देदीप्यमान प्रकाश को एक खून ने धुंधला कर दिया और उसका उतार एकान्त और शोक के साथ हुआ।

"**तेरह वर्ष की उमर में** जब उम्मेदसिंहजी ने हाडाओं के शिर-मोर बनकर पाटन और गैंडोली पर अपना अधिकार किया था तब से साठ वर्ष निकल गये। अवश्य ही वह हाडौती में बडी प्रतिष्ठा के साथ,

बडे **पूज्यभाव से** याद किये जाते हैं परंतु यदि बदला लेने का **दाग उनके चरित्र पर** न लगता तो वह राजपूत राजाओं में एक अच्छा नमूना निकलते । परंतु हमें इन राजाओं की नेकी का, इसके स्वभाव का **यूरोपियन विचार** से मिलान न करना चाहिये क्योंकि इन्हें दबाने वाले बहुत कम होते हैं और इसलिये इन्हें ऐसे काम करने की उत्तेजना मिलती है । ''

इस लेख में टाडसाहबने फिर वही राग गाया है जिसे वह एक बार पहले इन्द्रगढ वाले देवसिंहजी के वध के समय गा चुके हैं । उन्होंने इस घटना को लेकर श्रीजी साहब का बिमल चरित्र चाहे कलंकित समझा है परंतु यह **इनकी भूल** है । देवसिंहजी ने उम्मेदसिंहजी के कुटुम्बी होकर इनकी तथा बूँदी राज्य की हानि में जैसे २ कुकार्य किये और जैसे वह **आस्तीन के सांप** निकले उस पर ध्यान देने से श्रीजी साहब ने कोई अनुचित कार्य नहीं किया । यदि वह **देवसिंहजी** को इस तरह मारने के बदले सेना चढाकर मारते तो एक दो के बदले एक दो हजार आदमियों का खून होता, यदि वह वानप्रस्थ बनने से पहले इन्द्रगढवाले को न मार लेते तो उनके पुत्र पौत्र सुख से राज्य न करसकते । ऐसी दशा में श्रीजी साहब ने जो कुछ किया ठीक ही किया और देवसिंहजी के अपराधों पर दृष्टि डालते हुए उन्हें जो दंड मिला वह आवश्यकता से अधिक न था । यदि उम्मेदसिंहजी का हृदय कलंकित होता तो वह अवश्य मोहकम सिंहोत दलेलसिंहजी जैसे हरामखोरों की दी हुई जीविका छीन लेते परंतु उन्होंने ऐसा न किया । वह बडे उदार थे । उन्होंने शत्रु की दान की हुई जीविका ज्योंकी त्यों बहाल रक्खी । खैर इतना होने पर भी टाड साहब श्रीजीसाहब के विमल चरित्र में कलंक का धब्बा समझें तो वह शरद पूर्णिमा के **चंद्रमा में मृगांक** है । टाड साहब इस बात को यूरोपियन दृष्टिसे नहीं देखना चाहते हैं । यह अच्छी बात है । जिस देश की घटना हो उसे वहांकी स्थिति पर नजर डाल कर ही राय देना चाहिये । यूरोपियन लोगों में चाहे जो पुरुष सैकडों आदमियों के बीचमें किसी **परिचित स्त्री का चुंबन कर** सकता है । वे लोग

इस चाल को बुरा नहीं समझते हैं किन्तु भारतवासियों की दृष्टि में यह स्पष्ट व्यभिचार है । ऐसी दशा में देशी आंख से विलायती चाल को देखना अच्छा न होगा। यदि टाड साहब इस घटना को अंगरेजी आंख से भी देखें तो भारतवर्ष में राज्य स्थापित करने के समय लार्डक्लाइव ने और वारेन हेस्टिंगुसने कैसे २ कार्य किये थे उन्हें भी देखना चाहिये। खैर इन बातों से कुछ मतलब नहीं । टाड साहब ने इनको अच्छे राजाओं का नमूना बतलाया है और यह वास्तव में थे भी ऐसे ही। टाड साहब ने इनकी असाधारण प्रशंसा कर बडे धन्यवाद का काम किया है। वह बडे बेलाग और अनुभवी लेखक थे। उन्होंने जैसा सुना वैसा लिखा और उसीपर अनुमान बाँधा है।

महाराव राजा उम्मेदसिंहजी ने पिता का खोया हुआ राज्य अपनी तलवार के बल से, अपनी बुद्धि की शक्ति से, अपनी राजनीति के पेचों से और अपने शरीर का रक्त बहाकर संपादन किया। खोया हुआ राज्य लेकर उसे भीतरी और बाहरी शत्रुओं से निष्कंटक किया, निष्कंटक करके राज्य सुख भोगने के समय, सांसारिक सुख भोगने के बदले पुत्रको राज्य देकर इससे इस तरह अलग होगये जैसे उमर भर तक बडे परिश्रम से कमाये धन को कोई एक दिन में दान कर दे। राज्य छोडकर तीर्थ यात्रा करने में, भगवत् स्मरण करने में भी वह बूँदी को न भूले और जबतक जिये तबतक उन्हों ने बूँदी की रक्षा से बढकर धन न समझा, स्त्री न समझी, संतान न समझी और कुछ न समझा। टाड साहब कहते हैं कि उनका अंतिम समय रंज में बीता परंतु उन्हीं के लेख में और बूँदी के इतिहास में कहीं पर एक अक्षर भी ऐसा नहीं मिलता है जिससे सिद्ध हो कि उन्हें राज्य छोड देने का अथवा इन्द्रगढ की घटना का किंचित् भी दुःख था। अवश्य ही मरने से पहले राज्य छोडदेने का, अधिकार त्याग देने का अनेक पश्चिमी लोगों को कष्ट होसका है क्योंकि उनके समाज में तीसरे आश्रम और चौथे आश्रम का नाम तक नहीं है। वे लोग अस्सी पचासी वर्ष के हो जानेपर भी, मरते दम तक भी, पेन्शन लेने पर भी बाह्य प्रपंच में और राज्य प्रपंच में पड़े

रहते हैं इस लिये टाड साहब यदि ऐसा मान बैठें तो उनको अधिकार है परंतु भारतवासियों के लिये यह **नई बात नहीं** है । हिन्दुओं के इतिहासों में, पुराणों में एक नहीं : एक सो एक उदाहरण ऐसे निकलेंगे जिन में तीसरे आश्रम में, बुढापे में पुत्र को राज्य देकर **राजाओं ने बनवास** किया है, तप किया है । श्रीजी साहब का भी उस समय के अनुसार **तप था** और साधुओं के वेश में रहकर तप करने की अपेक्षा टाड साहब ने भी **तीर्थ यात्रा का तप** बढकर माना है ।

श्रीजी साहब का देहान्त **७९ वर्ष ४ मास १९ दिन** की उमर में हुआ था । वह जन्म से लेकर मरण पर्यन्त अपना कर्तव्य पालन करते रहे, उनके कर्तव्य में **लेश मात्र भी शेष** न रहा और इस कारण उनके लिये, उनकी मृत्यु के लिये शोक न करना चाहिये । यही लोगों की चाल है । जब कोई बूढा आदमी मरजाता है तब लोग ऐसा ही कहा करते हैं, किसी २ जाति में तो बूढे के मरने पर हर्ष किया जाता है । ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी ने चक्रवर्ती राजा दशरथ के स्वर्गवास होने पर रामभक्त भरत से यही कहा है:—

चौपाई—"तात विचार करहु मन मांहीं, शोच योग दशरथ नृप नाहीं ।
शोचिय विप्र जो वेद विहीना, तजि निज धर्म विषय लवलीना ।
शोचिय नृपहि जो नीति न जाना, जेहिं न प्रजा प्रिय प्राण समाना
शोचिय वैश्य कृपण धनवानू, जो न अतिथि शिव भक्ति सुजानू ।
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी, मुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी ।
शोचिय पुनि पतिवंचक नारी, कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ।
शोचिय वटु निजव्रत परिहरई, जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ।
दोहा—शोचिय गृही जो मोहवश, करै धर्मपथ त्याग ।
शोचिय यती प्रपंचरत, विगत विवेक विराग ॥

चौपाई—वैखानस सोइ शोचन योगू, तप विहाय जेहिं भावै भोगू ।
शोचिय पिशुन अकारण क्रोधी, जननि जनक गुरु बंधु विरोधी ।
सब विधि शोचिय पर अपकारी, निजतनु पोषक निर्दय भारी ।

शोचिय लोभ निरत रत कामी, सुर श्रुति निन्दक पर धन स्वामी।
शोचनीय सबही विधि सोई, जो न छांडि छल हरिजन होई। ''

ऊपर की कविता जो महात्मा तुलसी दासजी की रामायण से उद्धृत की है उस से मालूम होता है कि श्रीजी साहब की **मृत्यु शोचनीय नहीं** थी क्योंकि उनके चरित्र में ऐसी कोई बात नहीं है जो इनके विरुद्ध हो। उन्होंने कभी कोई कार्य वेद विरुद्ध—**क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध** न किया। **राजनीति** इतनी अधिक जानते थे जितनी कदाचित् उस समय के और राजा कम जानते होंगे। उन्होंने सदा **प्राण से भी बढकर प्रजा** को समझकर उसका पालन किया और प्रजा की उनपर भक्ति इसीलिये अटल बनी थी। उन्होंने गृहस्थाश्रम में रहकर कभी **वर्णाश्रम धर्म** का त्याग नहीं किया और उन्होंने वैखानस होकर कभी **तपसे मुँह** न मोडा। उन्होंने कभी अकारण क्रोध न किया। उन्होंने कभी माता पिता और गुरु बंधु का **विरोध न किया**। उनके हाथ से कभी दूसरे का **अपकार न हुआ**। उन्होंने कभी लोभ न किया और वह कभी भोग विलास में—राजमद में न फँसे। उन्होंने उस समय के और राजाओं की तरह कभी पराया-धन तथा पराई दारा का **हरण न किया**। वह अपना कर्तव्य पालन करते हुए सदा ईश्वरभक्ति में दृढ़ रहे इन कारणों से श्रीजी साहब का देहान्त शोचनीय नहीं था परन्तु मेरी समझ में यह बात नहीं है। मेरी रायमें युवा मनुष्य के मरनेपर जितना शोक किया जाता है उतना वा उससे अधिक **बूढे की मृत्यु** पर होना चाहिये। किसी मनुष्य की मृत्युपर जो शोक किया जाता है उसमें थोडा बहुत **स्वार्थ अवश्य** होता है। युवा के देहान्त पर शोक इसलिये करना होता है कि वह यदि जीता तो अमुक काम करता, हमें उससे अमुक सुख होता और उसके मरने से हमें अमुक दुःख हुआ किन्तु **बूढे का शोक** इससे बढकर होता है। उसके मरने से **अनुभव का विशाल खजाना** लुट जाता है, **उपदेश का दिवाला निकल** जाता है और रक्षा का छत्र टूट जाता है। श्रीजी साहबके स्वर्गवास होने से उनके पौत्र को, उनकी प्रजा को और उनके

परिवार को येही प्रबल हानियां हुईं । उनकी मृत्यु से **बूँदी का उद्धारक** चला गया । जिस ने जयपुर जैसे बलवान् **हाथी का पेट फाडकर** बूँदी निकाल लेने का काम किया था वही पराक्रमीसिंह परलोक को प्रयाण करगया । उम्मेदसिंहजी मरे अवश्य परन्तु अपना नाम **अमर छोड मरे** । पंडित वर गंगासहायजी ने "वंशप्रकाश" में बहुत ठीक लिखा है कि "इस वंशमें यह सबसे बढकर हुए ।" इनका देहान्त अवश्य हो गया किन्तु इनके **चलाये हुए नियम** अबतक ज्योंके त्यों विद्यमान हैं । इन्हों ने नये शिरे से राज्यस्थापन करके बूँदी को **नये साँचे में** ढाला था । यही सांचा अबतक है । उन्होंने जिस तरह की **पगडी बाँधने का** प्रचार किया था उसी तरह की पगडी (लपेटा) यहां के नरेश, राज कुटुंब धारण करते हैं ।

टाड साहब ने श्रीजी साहब के स्वर्गवास की घटना का जिस तरह वर्णन किया है उसे मैं इस अध्याय के आरम्भ में लिख चुका हूँ अब उसी बातको कविराजा सूर्यमल्लजी के "वंशभास्कर" से लेकर लिखता हूँ । ऐसा करने से यद्यपि यहां थोडासा **पुनरुक्ति का दोष** आ जायगा परंतु एक दोनों का अन्तर पाठकों को विदित होगा और दूसरी जो वातें उसमें रहगईं हैं उनका भी यहां उल्लेख हो सकैगा । बूँदी के इतिहास में लिखा है कि संवत् १८९१ में जब श्रीजी साहब का रोग असाध्य होगया तब विष्णुसिंहजी उन्हें केदारेश्वर से **महलों में ले आये** । यदि उन्हें चेत होता तो वह न आते । महलों में पधारने के अनंतर दो दिन तक वह जीवित रहे । मार्गशीर्ष कृष्णा ४ को उनका **शरीर छूट** गया । विष्णुसिंहजी ने शास्त्रविधि से उनकी अंत्येष्टि क्रिया करने में खूब दान पुण्य किया । उन दिनों इस प्रान्त में **दारुण दुर्भिक्ष** था इस कारण दूर २ के लोगों के झुंड के झुंड द्वादशाह के दिन उलट पडे । विष्णुसिंहजी ने सब को **भोजन कराकर** संतुष्ट किया और भोजन की जो सामग्री बच रही थी उसे दूसरे दिन अकाल पीडितों में **लुटा दिया** । इस तरह उनकी उत्तर क्रिया समाप्त हो गई ।

जिसका इस लोक में यश है, जिसका जीवन धर्म में और कर्तव्य पालन में बीता है उसे **परलोक में भी** अवश्य सुख मिलता है। लोग कहते हैं कि यह कलियुग नहीं **करयुग** है! यहां "इस हाथ ले उस हाथ दे" का हिसाब है। इस न्याय से यदि परलोक में भी **उन्हें** सुख मिला हो तो आश्चर्य क्या है। वह सच मुच नर रत्न थे। वह सच मुच **हाडाओंके सूर्य** थे। वह सच मुच ही शरीर छोडकर स्वर्ग को गये परंतु अपना यश **छोडगये** । उनकी कीर्ति अमर है और उनका चरित्र आजकल की प्रजा के **उपदेश लेने योग्य** है। उनके चरित्र को सामने रख कर समय के अनुसार थोडी बातों का परिवर्तन करने के सिवाय उचित कामों में उनका **अनुकरण करैं तो आजकल के राजा** वास्तव में अच्छे राजाओं का नमूना बन सकते हैं। उनके पीछे उन्हीं के पौत्र महाराव राजा **श्रीरामसिंहजी** बहादुर :जी. सी. एस्. आई. सी. आई. ई. भी वैसे ही होगये हैं। उनका चरित्र भी पुस्तकाकार में यदि प्रकाश किया जाय तो पाठकों का बडा उपकार हो सकता है।

अध्याय १२.

बलवन्तसिंहजी का उपद्रव।

इस चरित्र के नायक महाराव राजा उम्मेदसिंहजी की जीवन लीला समाप्त होने के साथ ही यह **पुस्तक भी समाप्त** होनी चाहिये थी क्यों-कि इसका नाम ही "उम्मेदसिंहचरित्र" है परंतु उनके चरित्र के साथ ही इस पोथी में उनके पूर्वजों का संक्षेप से इतिहास है, उनके पिता का चरित्र है, उनके पुत्रका चरित्र है और उनके **पौत्रके चरित्र** का भी अबतक बहुत हिस्सा लिखा जा चुका है। ऐसी दशामें उनके स्वर्गवास होने का वर्णन देकर इसको पूरा कर देनेसे श्रीजी साहबके पौत्र विष्णुसिंहजी का चरित्र **अधूरा रह जायगा** और **बूंदीका इतिहास भी** अधूरा रहैगा इस

कारण विष्णुसिंहजी के चरित्र का शेष भाग इन अध्यायों में लिखकर मैं इस पुस्तक को पूरा करना चाहता हूँ ताकि यदि ईश्वर शक्ति देकर राजर्षि रामसिंहजी का चरित्र लिखने में मुझे समर्थ करे तो दो महानुभाव नरेशों के **विस्तृत चरित्रों के** साथ संक्षेप से बूँदी राज्य का **सारा इतिहास** आजाय ।

जिस वर्ष श्रीजी साहब का स्वर्गवास हुआ उसीके फाल्गुन मास की शुक्ला द्वितीयाको **विष्णुसिंहजी ने अपना पांचवाँ विवाह** किया। विवाहके लिये आप को बारात सजाकर कहीं बाहर न जाना पडा क्योंकि आपके श्वशुर भाटी रत्नसिंहजी अपनी कन्या लाड कुँवरिजी को बूँदी आकर ही परना गये इस चाल को राजपूत लोगों में "सामाडोला" कहते हैं । इसका मतलब यही है कि दूलह बरात चढकर दुलहिन के गांव न जाय बरन दुलहिन का पिता दुलहिन को साथ लाकर दूलह के यहां ही उसकी शादी करजाय ।

राजपूताना के नरेश आपुस में लडते झगडते, मुसलमानों और मरहटों में से युद्ध करते २ पहले ही निर्बल पडगये थे परन्तु इन वर्षोंमें एक **नया बखेडा** खडा हुआ । उदयपुर के महाराना भीमसिंहजी ने अपनी कन्या **कृष्ण कुमारी** की सगाई जोधपुर नरेश भीमसिंहजी से कर दी थी । विवाह से पहले ही बरका देहान्त होगया । तब **रानाजी** ने अपनी कन्या का संबंध जयपुर नरेश जगत्सिंहजी से ठहराया । इस तरह जब **जयपुर में विवाह की** तैयारी होनेलगी तब जोधपुर नरेश के उत्तराधिकारी ने कहा कि "मांग हमारी है । जांघ जावै पर मांग न जावै । " इस कहावत के अनुसार हम मरैंगे और मारैंगे परंतु लडकी जयपुर न विवाह ने देंगे । "—इस बात पर जयपुर जोधपुर में विवाह के बदले युद्ध की तैयारी होगई तब महाराना साहब ने लडकी के लिये **विष प्रयोग करके** इस खून खराबी को बचाया । बंगाली पुस्तक के आश्रय से हिन्दी में "कृष्ण कुमारी" नाम की जो पोथी बनी है उसका मूल यही है । पंडित गंगासहायजी "वंशप्रकाश" में लिखते हैं कि—"संवत् १८६१ में जब जयपुर नरेश जगतसिंहजी और जोधपुर महाराज मानसिंहजी से

लडाई ठल गई तब बूँदी नरेश विष्णुसिंहजी ने इन दोनों से कहलाया कि—"हमारे कहने से लडाई बंद कीजिये। यदि आप लोग स्वीकार करें तो मैं दोनों में मेल कराने के लिये स्वयं आऊँ। इसका उत्तर जगत्सिंहजी ने यों दिया कि—"हम आपके कहने से लडाई बंद करते हैं परंतु मानसिंहजी की ओर से उनके उमरावों को यह संदेह होगया है कि वह उन लोगों को बिगाडा चाहते हैं" बात यह सत्य थी और इसी लिये मानसिंहजी के उमराव जगत्सिंहजी में जा मिले। विष्णुसिंहजी की सलाह को भूलकर जगत्सिंहजी जब लडने को तैयार हुए तब बूँदी नरेश ने मानसिंहजी की ही सहायता के लिये दो हजार सेना भेजना उचित समझा। इनकी सेना अवश्य गई परंतु उमरावों के निकल जाने से मानसिंहजी निर्बल पडगये थे इसलिये जयपुर की सेना के सामने उनके पैर न टिक सके। मानसिंहजी भागने लगे तब बूँदी की सेना के अफसरों ने उनसे प्रार्थना की कि—" यदि हमें आज्ञा हो तो हम लडने को तैयार हैं। हमारे होते हुए आपका हटजाना अच्छा नहीं। हम बिना लडे लौटेंगे तो बूँदी सरकार में हमारी निन्दा होगी।" परंतु मानसिंहजी अपने उखडे हुए पैरों को न जमा सके। वह भाग निकले और इसलिये बूँदी की सेना लौट आई।

अबतक महाराव राजा विष्णुसिंहजी के पांच विवाह हो चुके थे। अब इन्हों ने एक ही महीने में दो शादियां और कर लीं। संवत् १८६१ में इनका छठा विवाह राणावत (सीसोदिया) अमानसिंहजी की बाई खुमानकुँवरिजी से फाल्गुन कृष्ण ६ को और उसी पखवाडे में सातवां विवाह कृष्णा ११ को सीसोदिया भावतसिंहजी की कन्या नन्दकुँवरिजी से हुआ। दोनों रानियोंके डोले आये। एक का विवाह बूँदीमें और दूसरीका नेनवांमें हुआ। इस तरह सात विवाह होजानेपर भी आपने आठवां और किया। आपका आठवां विवाह इनसे ठीक नौ महीने बाद मार्गशिर कृष्ण २ को संवत् १८६४ में कृष्णगढ में कृष्णगढ नरेश प्रतापसिंहजी की कन्या और कल्याणसिंहजी की बहन से हुआ। पहले सात विवाहों में जितनी सन्तानें हुई थीं उनमें से

कोई बचा नहीं । आठवें विवाह से श्रीमान् महाराव राजा **रामसिंहजी का** जन्म हुआ । जिस का वृत्तान्त आगे चलकर लिखा जायगा । इनका नाम अमान कुंवरिजी था ।

इस अवसर में अंगरेजों की **ईस्ट इंडिया** कंपनी का प्रतापादित्य बढते २ मध्याकाश को पहुंचने लगा । पहले लिखा जा चुका है कि और सब राजा महाराजाओं के परास्त हो जानेपर और पस्त हो जाने पर केवल दो ही की ओर से अंग्रेजों को खटका था । एक लाहोर नरेश महाराजा **रणजीतसिंह** और दूसरे **यशवन्तराव** होलकर । संवत् १८६४ में रणजीतसिंहजी को लुधियाने के जंग में जनरल आक्टरलोनी से तंग आकर अंगरेजों से संधि करनी पडी और संवत् १८६७ में यशवन्तराव का देहान्त होगया । सूर्यमल्लजी कहते हैं कि भारत के अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराजजी के बाद इस देश में **यशवन्त राव जैसा कोई वीर न हुआ** । अवश्य ही इनके मरने से कितने ही अंशमें अंग्रेज लोग निष्कंटक होगये परंतु उस समय तक भी सेंधिया का दबदबा कुछ कम न था । उसने **शिवपुर** नरेश राधिकादासजी को गद्दी से उतार उनका राज्य छीन लिया और उन्हें केवल एक लाख रुपया वार्षिक आयका बडौदा देकर **राघवगढ** और **नर वर** के राज्य भी दबा लिये ।

जिस अवसर में देशभर में अराजकता फैल रही थी, "जिस की लाठी उस की भैंस" के न्याय से प्रबल निर्बलों को मारकर अपने २ राज्य बढा रहे थे यदि **विष्णुसिंहजी** अपना राज्य न बढा सके तो न सही परन्तु उन्होंने अपने राज्यकी एक **इञ्च धरती भी न जाने दी** । यह बात कुछ कम नहीं है परन्तु बाहरी आक्रमणों से बचकर निष्कंटक रहनेवाले नरेश के लिये उनकी ही आस्तीन में एक सांप और पैदा हो गया । गोठडा के जागीरदार बहादुरसिंहजी के पुत्र, विष्णुसिंहजी के सगे चचेरे भाई **बलवन्तसिंहजी** वास्तव में बडे बहादुर थे उस देश विप्लव के समय यदि यह जोर दिखाते तो टौंक के नव्वाब अमीर अली की तरह कहीं न कहीं अपना छोटा मोटा राज्य बना लेते परन्तु शक्ति में और बल में बहादुर होने पर भी

ह सच मुच **कायर निकले**। उन्होंने बूँदी राज्य की सीमा के बाहर निकलकर अपने पराक्रम से राज्य लेने के बदले अपने स्वामी से, अपने **अन्नदाता से द्रोह किया** और अपने ही कुलपर कुठार चलाने की कायरता की। वह मेवाड का वीझोलियां और मांडलगढ तथा जयपुर का नगर लेकर वहां से निकाले जाने बाद और तर्फ बढने का साहस न करसके इसलिये कायर बलवन्तसिंहजी ने अपने अन्नदाता स्वामी विष्णुसिंहजी के राज्य का नैनवां लेनेके लिये जी ललचाया। उनकी इस खोटी वासना में वहां का एक सरदार साथी हुआ और इस तरह उन्होंने स्वामिद्रोह करके और कुटुंब द्रोह करके नैनवां में अपना अधिकार संवत् १८६७ में करलिया। इस बात की खबर सुनकर विष्णुसिंहजी को बडा क्रोध आया। संग्राम में हाथ दिखाने के लिये उनकी **नसें फडक उठीं** और उनके मन में जोश की तरंगें उठ उठ कर बाहर निकलने लगीं। इस बात से उनके सुभटों ने उन्हें रोका। उन्होंने निवेदन किया कि:—

"हुजूर के पधारने की कौन आवश्यकता है? बलवन्तसिंहजी का बल तोडकर उन्हें पकड लानेके लिये तो हम लोग ही बहुत हैं।"

उन लोगों की प्रार्थना स्वीकार करके विष्णुसिंहजी स्वयं न गये किन्तु अपनी सेना के मुख्य २ सरदार, बडे २ जागीरदार सेना लेकर **नैनवा पर चढे**। जिस समय इनकी सेना नेनवां पर चढी उससे पूर्व ही **बलवन्त-सिंहजी** ने भजनेरी वाले शंकरसिंहजी के मेल से **किले में घुसकर** वहांके किलेदार धाभाई गुमान को छलसे मारडाला था। इस तरह बलवन्त सिंहजीने नैनवा में अपना पूरा २ दबदबा जमालिया था और इसी कारण बूँदी की सेना को चार महीने के घेरेमें नेनवां लेनेका अवसर मिला। कार्तिकी अमावास्यासे फाल्गुन कृष्ण ९ तक खूब लडाई हुई। इस समय कृष्णगढ आदि कई एक रजवाडों ने भी सहायता भेजी। अंतमें बलवन्तसिंहजी नेनवां से **निकाल दिये गये**। वहांसे निकाल देनेबाद वह बूँदीके राज्यमें लूट खसोट करने लगे, डाके डालने लगे परंतु फिर न मालूम किसतरह उनके मन को **लज्जा आई**। वह स्वयं विष्णुसिंहजी की सेवामें उपस्थित हुए और जब

उन्होंने आकर अपने अपराधों के लिये **क्षमा मांगी** तब भाई का अपराध जान श्रीमान् ने उन्हें क्षमा दी । इसी वर्षमें गणगौरी के दूसरे दिन अर्थात चैत्र शुक्ल ४ को श्रीमान् के **तीसरे पुत्र** बलदेवसिंहजी का जन्म हुआ किन्तु यह भी अपने दो भाइयों की तरह **बचे नहीं** ।

अध्याय १३.



बडे हुजूरका जन्म ।

अंगरेजों से संधि ।

इस तरह तीन महाराज कुमारों के बाद आठ पत्नियों के पति पुत्र हीन होकर अधिक समय तक दुःख से दिन न बिताने पाये । भगवान श्रीरंगनाथ-जी ने और उनके इष्टदेव रामभक्त हनुमानजी ने उनकी सुनी । आठ पत्नि-यों में आठवीं रानीजी साहब श्री जोधपुरीजी (कृष्णगढवाली) के गर्भ से संवत् १८९८ की पौष शुक्ला २ बुधवार को एक **पुत्ररत्न का जन्म** हुआ । शास्त्रकारोंने लिखाहैः—

"गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य, तस्याम्बा यदि सुतिनी वद वंध्याकीदृशी भवति ।" वास्तव में यह पुत्रोंमें रत्न था, मनुष्यों में रत्न था और राजाओं में रत्न था । जो मनुष्य संसार में जन्म लेकर अपनी भलाई से, अपने गुणों से अपना नाम न अमर कर जावै वह माता के यौवन रूपी वृक्षके लिये सच मुच ही कुठार है । इस लोकोक्ति के अनुसार वही माता **सच्ची पुत्रवती** है जिसके पुत्र ने दुनियां में आकर गुणवानों के नामों की गणना करते समय अपना नाम **उनमें गिनवाया** । वही पुरुष संसार में धन्य है जिसने गुणवानों में नाम पाया । यदि बुरे मनुष्यों की माता पुत्रवती कहलावे तो वंध्या किसे कहैं ? केवल यही नहीं सची पुत्रवती तो वह है जो इस श्लोक को चारितार्थ करसकै । जैसेः—

"आदौ कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासा,
अन्यस्य तत्तुल्य कवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।"

बस इसतरह गुणवानों की गणना में अपने नाम को ' छोटी अंगुलीपर आसन देकर वास्तव में महाराव राजा **रामसिंहजी राजर्षि** की उपमा पाने में समर्थ हुए और जिस माता के उदरसे आप उत्पन्न हुए उसने अपने शरीर को, अपने कुलको पवित्र किया। बस इन्हीं महाराजाधिराज का इस दिन जन्म हुआ था। ऐसे पुत्ररत्न के—नररत्न के उत्पन्न होनेसे, ऐसे समय में प्रसव होनेसे, जब पिता तीन पुत्रोंको खोकर दुःखित होगये थे पिता को, माताओं को, परिजनों को, परिवार को और प्रजा को जो हर्ष हुआ उसका कहना ही क्या ? नगर में, राज्य में आनंद छागया। राजा के महाराज कुमार होनेसे केवल राज परिवार कोही हर्ष नहीं हुआ बरन "लाखों का पालने वाला" पैदा होनेसे प्रजाके **घर २ में बधाइयां** बजने लगीं। पिताने मन खोलकर, बित्त विसारकर उत्सव किया, दान किया, इनाम दिया और इस तरह आनंद सागर बढ २ कर हिलोरें लेने लगा।

मैं पहले लिख आया हूँ कि महाराजा उम्मेदसिंहजी बूँदीका उद्धार करने को पैदा हुए थे और अब लिखताहूँ कि **उनके परपोते** महाराव राजा रामसिंहजी **बूँदी का सुधार करने को**। उन्होंने बूँदी को शत्रुओं के फंदेसे निकाल कर पिता का खोया हुआ राज्य फिरसे स्थापित किया और इन्होंने उस राज्य की उन्नति करके, उसका सुधार करके अपने यशका विस्तार किया। उनका चारित्र पाठक इस पुस्तक में पढचुके और इनका चारित्र पुस्तकाकार में प्रकाशित होना अभी **होनहार की गोदी** में है।

---

१ यही वर्तमान बूँदीनरेश श्रीमान् महाराव राजा सर रघुवीरसिंहजी जी. सी. आई. ई. जी. सी. वी. ओ., के. सी. एस. आई के पिता थे। बूँदीकी प्रजा इन्हें बडे हुजूर अथवा बडे दरबार कहतीहै।

इन महाराज का जन्म बहुत ही अच्छे मुहूर्त में हुआ था। इनके जन्मसे बहुत ही थोडे अर्से बाद बूँदी राज्यकी **ईस्ट इंडिया कंपनी** से संधि हुई। बंगाल में अपनी इकडंकी बजाकर और युक्त प्रदेश में अपना राज्यस्थापित कर लेने पर भी अभी तक अंगरेजों की ईस्टइण्डिया कंपनी **बनिया कंपनी** बनी हुई थी परंतु अब संवत् १८६९ में इन्होंने देशी रजवाडे को अपने अधीन करने का संकल्प कर राजापन ग्रहण किया। संवत् १८७० में **नेपालने** शिर उठाकर नगर कोट तक लेलिया था। अँगरेजोंने: उससे दांत तोड लडाई कर काली नदीके पार कर दिया। **पेशवा** को पेन्शन देकर विठूर में रख दिया और **नागपुर** नरेश भोंसला ने भी भयभीत होकर जोधपुर की शरण ली। ऐसे समय में अंगरेजों ने लाग पाकर **राजपुताने के रजवाडों** में प्रवेश किया। भारतवर्ष के गवर्नर जनरल मार्किस आफ् हेस्टिंगस ने संवत् १८७४ में "टाड राजस्थान" के रचयिता कर्नल जेम्स **टाड साहब को** जिनका इस पुस्तक में सैंकडों जगह नाम आया है रजवाडों से संधि करने के लिये भेजा। किस रजवाडे से किस तरह कब २ संधि हुई सो यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है परंतु बूँदी के छुटभैया कोटेवालों ने और वहांके दीवान **जालिमसिंहजी ने** जाजपुर आदि जो परगना **मेवाड से छीन लिया** था उसे टाड साहब ने मेवाडवालों को, (उदयपुर के महाराना साहब को) **दिलवा दिया**। साहब बहादुरने इस तरह के सुन्याय से जाजपुरका परगना अवश्य ही मेवाड को दिलवा दिया परंतु झाला **जालिमसिंहजी अंगरेजों के शिरपर** हाथ फेरने से भी न चूके। बूँदीके प्रतिनिधियों के टाड साहब के पास पहुंचने में देरी होने से जालिमसिंहजी का जोर चलगया। उन्होंने **धोखा देकर** संधिपत्र में (अहदनामें में) इन्द्रगढ, बलवन, खातोली, आंतरदा, करवाड, पूसोद, पीपलदा आदि **ठिकानों** को जो तब तक बूँदीके आश्रित थे, बूँदीनरेश की सेवा करते थे और इन्हें कर देते थे **कोटे के अधीन** करवा लिये। जालिमसिंहजी ने इन जागीरदारों को और इन कोठरियों को बहकाकर कोटे से फिर जागीर

ोलवाई, बूँदीकी अपेक्षा उनका सत्कार बढाया और इसतरह की बातोंसे न्हें अपने वश करलिया। परंतु अंत में साहब के निकट जालिमसिंह- जी का कपट खुलगया फिर वह बहुत पछताये। यह बात उन्होंने अपनी किताब में लिखी है सो आगे चलकर मालूम होगी। वह पछताये अवश्य परंतु "अब पछताये का होत है जब चिडिया चुग गई खेत" जब ... लिखचुके थे तब अपने फैसले को न बदल सके। खैर जो कुछ ...ना था सो हो चुका परंतु भारतवर्ष में अंगरेजों का प्रताप बढता देख कर ...हले हीसे श्रीजीसाहबने अपने पौत्र विष्णुसिंहजी को इनसे संधि करने की ...लाह देदी थी। उनकी सलाह से संवत् १८४३ से ही टामस सरों से ...हीम, कर्नल मेन, और गवर्नर जनरल मि. मकफर्सन आदि स्यफ- ...विष्णुसिंहजी का पत्राचार होने लगा था। संवत् १८६१ ...े मुकंदरे के पास अमझार नदी के किनारे अंगरेज सेनानायक मान- सन के साथ जब होलकर की सेना का सामना हुआ तब बूँदीकी ओरसे सरदार और सेना उनकी सहायता के लिये जाचुकी थी, इस सेना ने अच्छी सहायता देकर कर्नल मानसन से प्रशंसा पाई थी। फिर आवश्यकता पडने पर कर्नल लेक (लार्डलेक) और डंकन साहब को रसद बराही- दी थी और होलकर तथा सेंधिया की सेनाका मार्ग भी रोका था। इसलिये बूँदीनरेश संधि होनेसे पूर्वभी अवश्य ही ब्रिटिश सरकार के शुभचिंतक थे किन्तु ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ, (ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ) बूँदी नरेशकी संधि संवत् १८७४ की माघ शुक्ला ५ (बसंत पंचमी) के शुभ मुहूर्त में हुई। उस संधिपत्र में (अहद नामे में) लिखा है कि:-

"यह संधि माननीय अंगरेजी ईस्टइंडिया कंपनी और बूँदी नरेश महाराव- राजा विष्णुसिंहजीके बीच हुई। श्रीमान् परमोदार गवर्नर जनरल मार्किस आफ् हेस्टिंग्स के. जी. से पूरे अधिकार पाकर कप्तान (फिर कर्नल) जेम्स टाडने माननीय कंपनी की ओरसे और नरेश से पूरे अधिकार पाकर ...नकी ओरसे बहुरा तुलारामने संधि की।"

"**प्रथम नियम**–एक ओरसे ब्रिटिश गवर्नमेंट और दूसरी ओरसे बूँदी नरेश, उनके वारिस और उत्तराधिकारी के परस्पर सदा मित्रता रहैगी, मेल रहैगा और एक का लाभ दूसरे का और दूसरे का लाभ एकका समझा जायगा ।"

"**दूसरा नियम**–ब्रिटिश गवर्नमेंट बूँदी नरेश के राज्यकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेती है ।"

"**तीसरा नियम**–बूँदी नरेश सदाके लिये ब्रिटिश गवर्नमेंट का बडप्पन स्वीकार करते हैं और सदा उसके सहायक रहैंगे । वह किसी पर चढाई न करैंगे । ब्रिटिश गवर्नमेंट की राय विना वह किसी दूसरे से मेल न करैंगे । यदि संयोग वश किसीसे झगडा खडा होजाय तो वह ब्रिटिश गवर्नमेंट के पास फैसले के लिये भेज दिया जायगा । राजा अपने राज्यके स्वतंत्र अधिकारी हैं उसमें अंगरेजों का अधिकार न घुसने दिया जायगा ।"

"**चौथा नियम**–ब्रिटिश गवर्नमेंट स्वेच्छासे राजा और उनके उत्तराधिकारियों को वह खिराज जो राजा, होलकर महाराजा को दिया करते थे और जो अब होलकर से ब्रिटिश गवर्नमेंटने लेलिया है छोड देती है । और नकशा नंबर १ के अनुसार ब्रिटिश गवर्नमेंट बूँदी राज्यका वह भाग जो उस राज्यके भीतर होलकर के अधिकार में था बूँदी राज्यको देदेती है ।"

"**पांचवां नियम**–राजा जो खिराज और आमदनी नकशा नम्बर २ के अनुसार अबतक महाराजा सेंधिया को दिया करते थे उसे ब्रिटिश गवर्नमेंट को देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं ।"

"**छठा नियम**–बूँदी नरेश अपनी शक्तिके अनुसार ब्रिटिश गवर्नमेंट को आवश्यकता पडनेपर अपनी सेना देंगे ।"

सातवाँ नियम–यह सात नियमोंकी संधि बूँदीमें तै हुई और इसपर कप्तान जेम्स टाड तथा बहुरा तुलाराम ने हस्ताक्षर किये तथा मुहरें कीं । आजसे एक महीने के भीतर परमोदार गवर्नर जनरल और बुँदीके महाराव राजाके तसदीक करने पर यह अमल में लाई जायगी ।"

"यह बूँदी में १० फरवरी सन् १८१८ को अर्थात् ४ र वी उस्सानी सन् १२३३ हिजरी और विक्रमादित्य के संवत् १८७४ की माघ शुक्ला ९ को लिखीगई।"

इस तरह अंगरेजी सरकार और बूँदी राज्यके बीचमें बूँदी नगरमें संधि हुई। टाडसाहिब ने कोठरियां कोटे में चली जाने पर बडा खेद किया। मेरे इतना लिखने बाद उन्होंने महाराव राजा विष्णुसिंहजी के विषय में, इस संधिके विषय में, कोठरियों के विषय में जो कुछ अपनी किताब में लिखा है उसका भावार्थ भी यहां लिखदेना आवश्यक है। वह लिखते हैं कि:—

("उम्मेद सिंहजी का देहान्त हुआ) उस जमाने में अभागे (?) मानसन की सेना प्रथमवार राजपूतों के और विशेष कर बूँदीके बडे शत्रु होलकर का दमन करनेके लिये इन प्रान्तों में आपहुंची थी। हम नहीं जानते हैं कि उस समय बूढे नरेश जीवित थे या नहीं और उन्हींने उस नीति के लिये जिसका अंगरेजोंने धन्यवाद पूर्वक बदला देदिया सलाह दीथी वा नहीं किन्तु जो कुछ बूँदीके लिये किया गया उसके नरेश के बीर जंगलों (वीरराज्य) को देखते हुए बहुत कम हुआ। हमारी सेना की चढाई पर नहीं जब कि हमारा झंडा सफलता के लिये फहराता हो वरन मान-सन की सेनाके तुच्छता के साथ भागने के अवसर पर राजा ने अपनी शक्तिसे अधिक मानसन की सहायता दी और उस समय अपने सुखका और अपने लाभका किंचित् भी विचार न किया। परंतु हम नहीं जानते हैं कि इस कृपाका उस समय कुछ बदला दिया गया। अथवा उस जमाने की कायर नीतिसे इसपर ध्यान ही नहीं दिया गया। परंतु इतना ही कहना बहुत है कि सन् १८१७ में जब हमने इस प्रान्त की अंधाधुंध मेटने के लिये राजपूतों से हथियार पकडकर हमारा साथ देनेकी सहायता मांगी तब इस काममें संयुक्त होने में बूँदी सबसे बढकर निकली। उसे होना भी ऐसा ही चाहिये था क्योंकि उससे पहले राजधानी के भीतर बूँदी के झंडेके साथ मरहटों का झंडा उडता था और राज्यकी आय

इतनी कम थी जिससे **राजा की शारीरक रक्षा** का खर्चा भी कठिनता से निकल सकता था ! यह विशेष कर इसलिये हुआ कि हमने सन् १८०४ में बूँदी छोड दी । सन् १८१७ के संग्राम में जो **हमारी इच्छा थी वही बूँदी की** थी । हमने बूँदी से अपनी इच्छाके अनुसार काम लिया । बूँदी के नरेश और वहांकी सेना हमारी आज्ञा पालन करने में लड़ाई भर **तलवार लेकर** तैयार रही । और जब सब ओरसे हमारा विजय होकर शान्ति स्थापित हुई हम महाराव राजा विष्णुसिंहजी को **भूले नहीं** । जो परगने आधी शताब्दीसे होल्कर के अधिकार में थे और उसका विजय करनेसे जिनपर हमारा स्वत्व होगया था वे किसी तरह की शर्त किये विना **बूँदीको लौटा दिये गये** । इसी तरहसे जो परगने पहले सेंधिया के अधिकार में थे उनकी दशवर्ष की आयका परता फैलाकर नियत रुपया हमारे द्वारा (सेंधिया को) देनेकी शर्तपर बूँदीवालों को लौटा देनेका हमने प्रबंध कर दिया । इन बातोंपर राजाने जो अहसान माना वह उनके इन प्रभावशाली शब्दोंसे प्रकट होताहैः—

"मैं केवल **बातें बनाने वाला** आदमी नहीं हूँ किन्तु **मेरा शिर आपका** ही है । जब चाहे ले लीजिये ।"

"राजा का यह वाक्य केवल हमारा सत्कार करनेही के लिये नहीं था । यदि हम उनकी सचाई की जांच करते तो राजा हमारे लिये अपनी **जान अवश्य झोंकदेते** और जिन हाडाओंने उनका **नमक खाया** था तब अपनी अपनी जान अपने मालिक की आज्ञा पर दे डालते । तो भी बूँदीपर हमारे द्वारा बहुत कुछ लाभोंकी वृष्टि हुई और उनका नरेश पर असर भी बहुत हुआ किन्तु उनकी **एक हानि भी होगई** । कोटेवाले बूढे जालिमसिंहने संधि करनेके लिये बूँदी से पहले अपना **मतलब गाँठ** कर अपने हस्ताक्षरमें फिदवीय सरकार अंग्रेज (अंगरेज गवर्नमेंट का ताबेदार) लिख दिया और इस तरह इन्द्रगढ, बलवन, आंतरदा और खातोली ये **बूँदी की मुख्यें कोठीरयां** बूँदी से उन्होंने **अपने** अधिकार में लेलीं ।

"उदार (स्वतंत्र) और बहादुर रावराजा को इस से गहरा रंज हुआ। उन्होंने कहा कि-"मेरे पर काट डाले गये"-यह व्यवस्था अच्छी नहीं है और न्याय और राजनैतिक पेन्नों से इसका सुधार होना चाहिये और चाहिये कि भारतवर्ष का यह छोटासा चित्ताकर्षक और लायक (योग्य) राज्य उससे उचित न्याय प्राप्त करै।"

उक्त वाक्यके अंतमें एक चिन्ह देकर टाडसाहबने यहां अपनी किताब में नीचे अपनी ही ओरसे एक टिप्पणी दी है। उसका आशय यह है कि-"सन् १८१७ में इस ग्रंथके रचयिता ही को बूँदीके साथ संधि करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इन जंगलोंका जो मुझे पहलेसे ज्ञान था उससे बूँदीके लाभमें कोई क्षति न हुई। मैंने उन साधारण सिद्धान्तोंपर जो युद्ध आरंभ होनेके समय हमारी होनहार राजनीति के लिये स्थिर हुएथे, बूँदी के साथ संधि करने का भार अपने ऊपर लिया। ये साधारण सिद्धान्त यही थे कि राजपूताना की भूमि में मरहटों की एक फुट भी धरती न रहे, वे चंबलसे पश्चिम की ओर बिलकुल न रहने पावैं और इसीलिये मैंने पाटण और दूसरा इलाका जो इस प्रकार का था सदाके लिये बूँदी में मिलादिया।"

टाड साहब फिर अपनी किताब में लिखते हैं कि-"हमने जो ध्यान बूँदीके लाभोंपर दिया था उसका फल होगया क्योंकि जब सब ही राज्यों में किसी न किसी तरह पर अपनी २ शक्तिकी रक्षा करने में गड़बड़ वा कष्ट रहा तब बूँदी ने चुपचाप, शनैः २ फलने फूलने की ओर उन्नति की। वह अपनी स्वतंत्रता का सुख भोगती रही और उस पर किसी तरह हस्तक्षेप न हुआ।"

जैसे पाठक पहलेसे बूँदीके इतिहास से, टाडसाहब के लेखका मिलान करते आये हैं वैसे उन्होंने यहां भी कर लिया। उन्हे इससे मालूम होगया होगा कि टाडसाहब बूँदीके बड़े शुभचिन्तक थे। बूँदीकी कोटरियां कोटेको दिला देनेमें उनकी जो भूलहुई अथवा उन्होंने जो जालिमसिंहजी से धोखा खाया उसे स्पष्ट स्वीकार किया है। यह उनकी उदारता है। महाराव राजा

विष्णुसिंहजी ने उस समय जो गवर्नमेंट की **जी जानसे सहायता** की थी उसे भी टाड साहबने अच्छे शब्दोंमें स्वीकार किया है और उनकी वीरता पर तो **साहब लट्टू होगये** हैं। उनके हाथसे बूँदीकी कोठरियां कोटे में चली जाने की जो भूल होगई उसे सुधारने का भी उन्होंने अपनी किताब में उचित संकेत किया है। यह उनकी उदारता है। आज कल ऐसे अंग्रेज कम होतेहैं जो इस तरह अपनी भूल स्वीकार करलें। आदमी लडाई में अपना शिर कटा सकता है परन्तु **भूल स्वीकार** करना उससे भी कठिन काम है। **बडी वीरता है** ।

अध्याय १४.



महाराव राजा विष्णुसिंहजी का देहान्त ।

जिस समय टाडसाहब ने कोटे को और जालिमसिंहजी को दबाकर जहाजपुर आदि परगने कोटे से मेवाड को दिलवादिये तब जालिमसिंहजी ने बूँदी के राज्य में लूट मचाकर दामाद को सताने में अपने **श्वसुरपन का** परिचय दिया। उन्होंने कोटा नरेश महाराव उम्मेदसिंहजी को इतना तंग किया— इतना काबूमें कर लिया कि उन्होंने जिस तरह **महारावजी को नचाया** वैसे ही वह नाचे। वह केवल देवता की मूर्तिकी तरह राजसिंहासन पर बैठे रहते किन्तु **राज्य केवल झालाजी करते थे** । उम्मेदसिंहजी के मरने के बाद उनके पुत्र किशोरसिंहजी को कोटे का महाराव बनाया तो सही परंतु उन्हें भी जालिमसिंहजीने बहुत तंग किया। उस समय कोटे की क्या दशा थी सो लिखने की यहां आवश्यकता नहीं है परंतु झालाजी के सताने से, उनके डरसे तंग आकर महाराव किशोरसिंहजी कोटेसे विना सवारी और विना नौकर अकेले ही पैदल **भागकर बूँदी आगये** । विष्णुसिंहजी को उनके आगमन की खबर हुई तब उन्होंने दो कोस तक महारावजी के सामने जाकर उनकी पेशवाई की। उन्हें बडे सत्कार से अपने महलों में अपनेही पास रक्खा और उनसे कहाः—

"भाई साहब आप क्यों घबडाते हैं? यह घर आपका ही है। यहां प्रसन्नता से रहिये। आप निश्चय जानिये कि **जहां धर्म है वहां अंतमें जय** अवश्य होजाता है। आप चिन्ता न कीजिये। अंग्रेजों की सहायता लेकर कोटेसे झाले निकाल दिये जायँगे। यदि अवसर हुआ तो उन्हें मार डालैंगे और नहीं तो उन्हें इस तरह कीले देंगे जिस तरह गारुडी सांप को कील कर कीडा बना देता है। कोटा आपका है और अवश्य ही आपको **मिलैगा**। मैं, मेरा राज्य, मेरा खजाना और मेरी सेना आपकी सहायता करनेके लिये **तैयार** है किन्तु त्वरा न कीजिये। "उतावला सो बावला" उतावल से काम बिगड जायगा। जरा धैर्य पकडिये। घबडाइये मत।"

इस तरह विष्णुसिंहजी ने किशोरसिंहजी को बहुतेरा समझाया, बुझाया, बहुतेरा ढाढस दिलाया और अपने तन मन धनसे सहायता करनेका प्रण किया किन्तु घबडाये हुए महारावजी बूँदी न ठहर सके। वह यहांसे अपने लिये उचित सामग्री लेकर **दिल्ली चले गये**। इसके बाद उनका क्या हुआ सो कहने की यहां आवश्यकता नहीं है क्योंकि उसका संबंध कोटे के इतिहास से है। यह घटना संवत् १८७७ की है।

अब महाराव राजा विष्णुसिंहजी के चरित्र में कोई ऐसी विशेष बात नहीं रही जो यहां लिखने योग्य हो। **इनका देहान्त** संवत् १८७८ की आषाढ शुक्ला १५ को होगया। यह संवत् १८२९ में साढे चार मास की उमर में बूँदी के सिंहासन पर विराजे थे और संवत् १८७८ में इनका शरीर छूटा इसलिये उनकी **उमर ४८ वर्ष** से कुछ ऊपर हुई और लगभग इतने ही वर्ष इन्होंने बूँदीका राज्य किया। यों तो इनके आठ विवाह से पांच पुत्र और एक कन्या हुई थी परंतु जिस समय इनका देहान्त हुआ इनके केवल दो महाराज कुमार विद्यमान थे। एक बडे **रामसिंहजी** जिनका वय इस समय ९॥ वर्षका था और दूसरे इनसे कुछ छोटे **गोपाल सिंहजी**। महाराव राजा विष्णुसिंहजी की खवासोंमेंसे एक के महाराजा **विजयसिंहजी** हुए जो बहुत वर्षोंतक जीवित रहे।

महाराव राजा विष्णुसिंहजी को **हनुमानजी का इष्ट** था इसलिये उन्होंने नगर से पश्चिम की ओर वज्रांग विलास बाग बनवाने की नींव डाली। राज प्रासाद में इन्होंने छत्र महल के उत्तर की ओर अखाडा बनवाकर **हनुमानजी की स्थापना** की। तारागढ किले में दो जीवरखे नामक स्थान, चांवड (चामुंडा) दर्वाजे से लेकर महलों तक और भैरव दर्वाजे से लेकर निर्भय बुर्जतक कोट, बडकी र वास, गोपाल बुर्ज, सुख महल और नैनवांमें गुमान सागर तालाव बनवाया। इनके कृष्णगढवाली रानीजी साहवाने बूँदीपे दक्षिणमें **धर्मशाला** बनवाकर उसमें हनुमानजी पधराये और वहां गरीबों को खानेके लिये मिलने का प्रबंध किया। इनकी खवास सुंदर शोभाजीने सुंदर घाट वनवाया।

महाराव राजा विष्णुसिंहजी के विषय में **टाड साहबने** जो कुछ लिखाहै उसे यहां उद्धृत कर मैं अब इस पुस्तक को समाप्त करूंगा। वह लिखते हैं कि:—

उन्हें अपने राज्यकी स्वतंत्रता मिलने (अंगरेजों के साथ संधि होजाने) से पीछे महाराव राजा केवल **चार वर्षतक** जीवित रहे। तब उन्हें **हैजा इस दुनिया से उठा लेगया**। उनके अंत समय की बीमारी में, जो दृढ चित्त और दृढ शरीर काभी दिल तोड डाला करती है, वह शांत और **स्थिर रहे**। उन्होंने अपनी रानियों से कहदिया कि कोई भी हमारी चितामें अपने प्राण विसर्जन न करो। उन्होंने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी को ब्रिटिश गवर्नमेंटके प्रतिनिधि की रक्षा में छोडकर **युवावस्था ही में परलोक** को प्रयाण किया।"

"विष्णुसिंहजी का चरित्र थोडे ही शब्दोंमें लिखा जा सकता है। वह ईमानदार थे और उनकी **नस नसमें रजपूती** भरी हुई थी। उनकी बाहरी बातें चिकनी चुपडी न होनेपर भी उनका **हृदय उदार** था और उनके विचार दृढ थे। उनकी समझ में किसी तरह की कसर न थी। वह अपने काम काजका अच्छा ज्ञान रखते थे। जब **मरहटों** ने धीरे २ उनके राज्यकी आय घटा ली और उनकी शक्तिको **चारों ओर से घेर लिया**

उन्होंने शिकार खेलने से, जो राजपूतों के योग्य खेल है, जी बहलाया। वह **सिंहकी गुफामें** घुसपडते और जब तक वनके राजाको मार न लेते तब तक वहांसे न हटते। उन्होंने इसी तरह की शिकार अपने योग्य समझी थी। उन्होंने अपने ही हाथों से **एकसो से ऊपर सिंहों का** शिकार किया था। इनके सिवाय बहुत से बघेरे मारे और कितने रीछ उनके भाले की शिकार हुए सो गिनती नहीं। यह काम भयसे खाली न निकला और साथही यह परिश्रम आनन्द वर्द्धक भी था। उनकी एक हड्डी इसी काममें टूटगई और इससे वह सदा के लिये **लंगडे होगये**। पहले वह साधारण कदसे कम थे किन्तु अब उनकी लंबाई और भी कम होगई। परन्तु जब वह घोडे पर सवार होकर अपने शिर पर माला फेरते थे तब **वीरता और प्रताप** विष्णुसिंहजी में टपकने लगते थे। यदि हम उनकी शक्तिको अपने काममें लाते तो वह हमारी सहायता में वैसाही काम देते जैसा उनके पुरखाओंने जहाँगीर अथवा शाह आलम के लिये दिया था। वह अपने छोटेसे राज्यके शासन करनेमें स्वतंत्र थे। वह समझते थे कि शासितों से अपना सम्मान कराने के लिये भयही एक आवश्यक उपाय है और विशेष कर अपने राज्य शासन के कामों में सेवा करनेवाले **नौकरों को तो भयभीत** रखनाही चाहिये और यदि बूँदीके लेखोंपर भरोसा किया जाय तो उनके अमात्य अथवा खजानचीके साथ उनका वर्ताव बाहरवालों के लिये हास्यास्पद हो सकता है। राजाके पास एक फंड था। उनकी अपने दीवान से आज्ञाथी कि **नित्य सौ रुपये** के हिसाब से उसमें जमा करता रहै। वह इस काम के लिये यदि किसी तरह का उज्र करता तो नहीं सुनाजाता था और "**इन्द्रजित**" की धमकी उसके शिरपर सवार रहती थी। "इन्द्रको जीतनेवाला" कोई देवता न था किन्तु मनुष्यके जूतेसे बडे आकारका एक जूता था। यह एक खूंटीपर लटका रहता था जहां पूर्व देशके राजा अपना राजदंड लटकाया करते हैं किन्तु यह जूता उनके बडे २ आदमियोंके लिये था और यह अपराधी मंत्रियों को **सुधारने की सामग्री** थी।"

इसतरह टाडसाहबने महाराव राजा विष्णुसिंहजी की प्रशंसा में उनकी वीरता के विषय में, उन्होंने गवर्नमेंट की सेवाके लिये जो अपनी शक्ति अर्पण कर रक्खी थी उसके लिये जो कुछ लिखा है उसपर मुझे कुछ नहीं कहना है क्योंकि साहब ने जो कुछ लिखा है **सब ठीक है** और यही बूँदी के इतिहास का निचोड है। ऐसी दशा में यहां के इतिहास का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है परंतु टाड साहब के लेखमें से मुझे यहां केवल **दो बातों के लिये** विचार करना है। एक यह कि उन्होंने विष्णुसिंहजी का **मरहटों से बिलकुल दबजाना** लिखा है और दूसरे उन्होंने **"इन्द्रजित"** जूतेका उदाहरण देकर यह दिखलाया है कि वह **बडे कठोर** थे। जिस तरह उन्होंने मरहठों के दबाव के विषय में यहां लिखाहै उसी तरह एकबार पहले भी लिखा है परंतु न तो उन्होंने कहीं पर इस बातका **स्वरूप दिखलाया** है, न कहीं **बूँदीके इतिहासों में** इस बातका पता है और न बूँदी के लोग इस बातको **जानते कहते** हैं। ऐसी दशामें मैं नहीं कहसकता कि बूँदी की राजधानी में मरहठों का झंडा उडने की बात कहांतक सत्य है। टाड साहब सहसा अनहोनी बात लिखने वाले मनुष्य न थे परंतु इसके साथ ही वह अपने **कथन का प्रमाण** देते तो उसपर विश्वास किया जासकता था। हां उन्होंने पहले केशवराय की पाटन के हिस्सोंके विषय में लिखा सो ठीक है परंतु पाटनमें बूँदी, होलकर और सेंधिया **तीन राज्योंका बराबर हिस्सा** होने से यह सिद्ध नहीं होसकता है कि बूँदी राजधानीमें **मरहटोंका झंडा** उडता था और विष्णुसिंहजी नाममात्र के राजा रहगयेथे जिन्हें गवर्नमेंटकी राजभक्ति करने के बदलेमें अंग्रेजोंने राज्य दिलवाया। यदि विष्णुसिंहजी **मरहटों से दबगये** होते तो टाड साहब ही के लेख के अनुसार कर्नल **मानसन को सहायता** देकर होलकर का सामना कैसे करसकते इन बातोंसे निश्चय होताहै कि जैसे **बूँदी की कोठरियाँ** कोटेको दिलादेनेमें साहबने **धोखा खाया** वैसेही ऐसा लिखने में वह भूलेहैं अथवा उन्होंने गवर्नमेंट का बूँदी राज्यपर अधिक अहसान जतलाने के लिये

इस तरह लिख दिया है। उनके लेखमें दूसरी बात विष्णुसिंहजी की **कठो-रता के** विषय में है। बूँदीके इतिहास लेखक कवि राजा सूर्य्यमल्लजी स्वतंत्र पुरुष थे। खुशामद उनके पासभी नहीं फटकने पाती थी। ऐसी दशामें यदि विष्णुसिंहजी कठोर होते तो वह अवश्य ही इस बातको प्रकाश करने से न चूकते किन्तु उन्होंने न तो कहीं विष्णुसिंहजी की कठोरता का संकेत किया है और न "इन्द्रजित्" जूते वाली घटना का उनके **ग्रंथमें उल्लेख** है। इतने परभी यदि वह किसी अंशमें कठोर भी हों तो यह बात समय के अनुसार अनुचित नहीं है। मेरा बनाया काबुल के **अमीर अब्दुर्रहमा-नखां** का चरित्र जिनलोगोंने पढा है वे अवश्य स्वीकार किये बिना न रहेंगे कि अब्दुर्रहमानखां की कठोर प्रकृतिने ही काबुल की सिंहके समान खूँख्वार, भयानक प्रजा को **मोम बना दिया** था। जिस समय विष्णुसिंहजी इस राज्य के शासक थे **भारतवर्ष भरमें अराजकता** फैल रही थी। हाथ को हाथ खाता था। खूब लूट खसोट होती थी, डाके पडते थे और जिस तरह बूँदीके **प्रधान** कर्मचारियों ने झालाओं से मिलकर आस्तीन के सांप की तरह राज्यका नाश किया उसी तरह रजवाडों के कर्मचारी और **राज्यों से मेल रखकर** रजवाडों का सर्वनाश कर रहे थे ऐसी दशामें यदि **विष्णु सिंहजी कठोर** न होते तो टाड साहब को यह लिखनेका समय न मिलता कि—"जब और राज्योंमें किसी न किसी तरह अपनी २ शक्ति की रक्षा करने में गडबड और कष्ट था तब बूँदीने चुपचाप शनैः २ फलने फूलने की और उन्नति की।" अवश्य ही प्रजा जैसी प्रेमके वशीभूत होतीहै वैसी भयके नहीं परंतु "भय बिन होत न प्रीति" इस लोकोक्ति के अनुसार कहीं २ **भय भी प्रेमका पिता** हो पडता है। महाराव राजा **उम्मेदसिंहजी** ने बडे २ पराक्रमी शत्रुओं के पेट से, तलवार के बलसे, भारी २ लडाइयां लडकर पसीने के बदले अपने शरीर का रक्त बहाकर **बूँदी ली** और अपने कर्म-चारियों को, प्रजाको कभी भयसे और कभी प्रेमसे दबाकर विष्णुसिंहजी ने शांति स्थापित की। और इनके बाद महाराव राजा **रामसिंहजीने** अपने

सुन्यायसे, अपने सद्गुणोंसे और अपनी दयासे प्रजाको इतना वश में करलिया कि वह इन्हें ईश्वर का अवतार समझने लगी ।

महाराव राजा विष्णुसिंहजी के स्वर्गवास होनेकी घटना प्रकाशित करके मैं अब इस **पुस्तक को समाप्त** करताहूँ क्योंकि आगे महाराव राजा उम्मेदसिंहजी के चरित्र से कुछ संबंध नहीं रहा । इस ग्रंथमें **मुख्य रूपपर** श्रीजी साहब का विस्तृत चरित्र और **गौण रीति से** बूँदी का ठेठसे इतिहास लिखा गया है । यदि भगवान ने शक्ति दी, यदि शरीर विद्यमान रहा और इस तरह यदि अवकाश मिला तो मैं महाराव **राजा रामसिंहजी** का जब चरित्र लिखूंगा तब पाठक इस ग्रंथके बादका इतिहास उसमें पावेंगे । ये बातें सर्व शक्तिमान परमेश्वरके अधीन हैं । महाराव राजा रामसिंहजी का चरित्र बहुत रोचक है और बडा उपदेश पूर्ण है क्योंकि बूँदीकी प्रजा उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा करती है । **ब्रिटिश गवर्नमेंट** उनका बडा आदर करती थी **अंग्रेज कर्मचारी** उनका बडा संकोच रखते थे, देशी राजाओं की उनपर बडी पूज्य बुद्धि थी और इसलिये वह **सर्व प्रिय** थे । उनके ७८ **वर्ष** के जीवन में, उनके ६८ वर्षके शासनमें बूँदी राज्यकी कितनी उन्नति हुई, उन्होंने सनातनधर्म की, विद्या की, संस्कृत की **कितनी सेवा की** और प्रजा का कितना **उपकार** किया सो सब उनके चरित्र से मालूम होगा । उससे सर्व साधारण को विदित हो जायगा कि क्योंकर वह **राजर्षि** कहलाने योग्य थे ।



पुस्तक मिलनेक ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस–बम्बई.

क्रय्य पुस्तकें–(भाषाइतिहास–ग्रन्थाः)।

———⊳○⊰⊱○⊲———

नाम.	की० रु० आ०
अध्यात्मरामायण–केवल भाषामात्र, सुन्दर जिल्द बँधीहुई इसके अभ्याससे भलीप्रकार अध्यात्मज्ञान और भक्ति प्राप्त होतीहै। अमूल्य होनेपरभी दाम थोडा रक्खा है ग्लेज	२–०
" तथा रफ कागज...	१–१२
अध्यात्मरामायण–गुलाबसिंहकृत–पद्यात्मक भाषा....	२–८
अब्दुर्रहमानखाँ–काबुलके अमीरका ओजवर्द्धक जीवनचरित्र	०–१२
आनन्दमठ.	०–८
इतिहासगुरुखालसा–(ओजवर्द्धक सिक्खोंका पूर्ण इतिहास) इसमें–गुरु नानकसाहबसे लेकर दशों बादशाहीतकका जीवनचरित्र भलीप्रकार वर्णित है....	२–०
औरंगजेबनामा–अर्थात् मुगलसम्राट् महीउद्दीन मोहम्मद औरंगजेब आलमगीरबादशाहका सचित्र इतिहास प्रथम भाग	०–६
" तथा द्वितीय भाग	०–६
जापानका उदय–उत्साह और एकतापूर्वक उद्योग करनेसे मनुष्य असाध्य कार्य भी शीघ्र करसक्ता है। किन्तु प्रत्येक बातमें विद्याहीकी मुख्यता मानीगई है। जापानियोंने उक्त उपायोंकी दृढता तथा दया, धैर्य और राजभक्तिसे आशातीत जो उन्नति कीहै उन्हीं बातोंका संग्रह इस पुस्तकमें है....	०–४
जैमिनीयअश्वमेध–भाषा–परममनोहर दोहा, चौपाईमें छन्दबद्ध भाषा अतीव मनोहर है ग्लेज कागज	१–१२
" तथा रफ कागज	१–८

BOOK-POST

भारत सरकार सेवार्थ

ON INDIA GOVERNMENT SERVICE



To,

Lib

PRINCIPAL
BANASTHALI VIDYAPEETH GYAN
VIGYAN MAHAVIDYALAYA
BANASTHALI
TONK
RAJASTHAN

D.A.V.P. ... of Information & Broadcasting

'बी' ब्लाक, ... मार्ग, नई दिल्ली ।

'B' Block ... Gandhi Marg, NEW DELHI-110001

V2

16 A